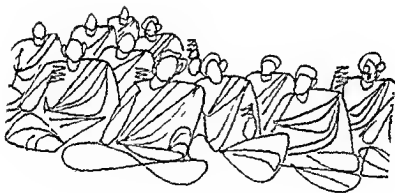




पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२



अक्सर

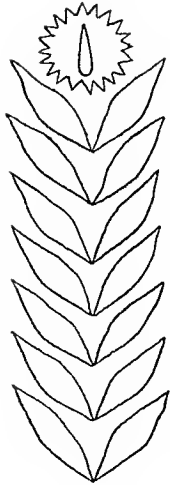


गैरफ कोहली

मूल्य सोलह रुपये/ दूसरा संस्करण १९७८/ प्रकाशक पराग प्रकाशन
३/११४ कण गली विश्वासनगर गाहदरा दिल्ली ११००३२/मुद्रक भारती
प्रिंटर्स दिल्ली ११ ०३२

लखनऊ के तीन महानागरिको—
अमृतलाल नागर
यशपाल
तथा
भगवतीचरण वर्मा
को सादर

अवसर



सम्राट की चढ़ाई का मसला मसला फूटवार था।

हूँ।”

यस एक 'हूँ'। उससे अधिक दशरथ कुछ नहीं कह सके।

ऐसा क्रोध उह कभी-कभी ही आता था। किंतु आज। क्रोध कोई भीमा ही नहीं मान रहा था। आखें अन रही थी नयुने फडक रहे थे, और उस सनाटे में जैसे तज सासों की साय-साय भी सुनाई पड़ रही थी।

नायक मानुमित्र दोना हाथ बाधे सिर झुकाए स्तब्ध खड़ा था। सम्राट की अप्रसन्नता की आसना उस थी। वह बहुत समय तक सम्राट के निकट रहा था और उनके स्वभाव को जानता था। किंतु उनका ऐसा प्रकोप उसने कभी नहीं देखा था। सम्राट का यह रूप अपूर्व था। जैसे वह यह भी समझ नहीं पा रहा था कि सम्राट की इस असाधारण स्थिति का कारण क्या था। उसे विलंब अवश्य हुआ था, किंतु उससे ऐसी कोई हानि नहीं हुई थी कि सम्राट इस प्रकार भ्रमक उठें। वह अयोध्या के उत्तर में स्थित सम्राट की निजी अश्वशाला में कुछ श्वेत अश्व लेने गया था, जिनकी आवश्यकता अगले सप्ताह हाने वाले पशु-मेले के अवसर पर थी। यदि अश्व प्रातः राजप्रासाद में पहुंच जाते, तो उससे कुछ विशेष नहीं हो जाता, और संध्या समय तक रुक जाने से कोई हानि नहीं हो गयी किंतु सम्राट

वह अपने अपराध की गंभीरता का निणय नहीं कर पा रहा था।

सम्राट के कुपित रूप ने उसके मस्तिष्क को जड़ कर दिया था। सम्राट के मुख से किसी भी क्षण उसके लिए कोई कठोर दंड उच्चरित हो सकता था उसका इतना साहस भी नहीं हो पा रहा था कि वह भूमि पर दडबत लेटकर सम्राट से क्षमा-याचना कर

सहसा सम्राट जैसे आप में आए। उन्होंने स्थिर दृष्टि से उस देखा और बोले जाओ। विधाम करो।'

भानुमित्र की जान में जान आयी। उसने अधिक-से-अधिक झुककर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और बाहर चला गया।

भानुमित्र के जाते ही दशरथ का क्रोध फिर अनियंत्रित हो उठा मस्तिष्क तपने लगा आभास तो उन्हें पहले भी था, किंतु इस सीमा तक

क्या अब है इसका ?

दशरथ ने अश्व भगवाए थे। अश्व रात में ही अयोध्या के नगरद्वार के बाहर विभ्रामालय में पहुँच गए थे, किंतु प्रातः उन्हें अयोध्या में घुसने नहीं दिया गया। नगरद्वार प्रत्येक आगंतुक के लिए बंद था—क्योंकि महारानी ककेयी के भाई केकय के युवराज युधाजित अपने भाजे राजकुमार भरत और शत्रुघ्न को लेकर अयोध्या से केकय की राजधानी राजगढ़ जान वाले थे। नगरद्वार बंद पथ बंद हाट बंद—जब तक युधाजित नगर द्वार पार न कर लें तब तक किसी का कोई काम नहीं हो सकता

किसी का भी नहीं।

दशरथ का काम भी नहीं।

तब तक सम्राट के आदेश से घोड़े लेकर आने वाला नायक भी बाहर ही रुका रहेगा।

सम्राट का काम रुका रहेगा क्योंकि युधाजित उस पथ से होकर नगरद्वार से बाहर जान वाला था। अपनी ही राजधानी में सम्राट की यह अवमानना !

किसने किया यह साहस ? नगर रक्षक सनिक टुकड़ियो ने। कस कर सके वे साहस ? इसलिए कि वे भरत के अधीनस्थ सनिक हैं। वे सनिक जानते हैं कि भरत राजकुमार होते हुए भी सम्राट से अधिक महत्त्वपूर्ण

है क्योंकि वह कैकेयी का पुत्र है। युधाजित सम्राट से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह कैकेयी का भाई है

कैकेयी।

कसा बाधा है कैकेयी ने दशरथ को।

सम्राट की आँखें वहीं अतीत में देख रही थी

कासल की सेनाएँ राजगृह में जा चुकी थी। राजप्रासादों का घेर लिया गया था, और कैकेय का राज-परिवार का प्रत्येक सदस्य बाघवर दशरथ के सम्मुख लाया गया था। कैकेय का राज-परिवार दुबल था, इसलिए दशरथ ने उन्हें बाघकर अपने सम्मुख धमकाया था—पर कैकेयी को देखते ही दशरथ दुबल पड़ गए थे, और तब कैकेयी ने उन्हें बाध लिया था। दशरथ कैकेयी की प्रसन्नता पाने के लिए कुछ भी देने का तैयार थे कुछ भी कर गुजरने को—और तब दशरथ को कैकेय-नरेश ने बाधा दी। 'कैकेयी का पुत्र ही कोसल का युवराज होगा।' दशरथ बर्धे थे प्रसन्नता-पूवक। पर तब दशरथ ने उस पक्ष पर विचार नहीं किया था।

कैकेय-नरेश अपनी पराजय को कभी न भूल होंगे। युधाजित का अपनी किशोरावस्था की एक एक बात याद हागी। उसने उन बातों को सायास याद रखा होगा। अपने मन में दशरथ के विरुद्ध विष को जीवित रखने उस पापित और विकर्मित करने का प्रत्येक प्रयत्न किया होगा। उसने वपों स्वयं को उभी ताप में तपाया होगा, ताकि अवसर आते ही वह दशरथ को अपमानित करे।

आज अयोध्या में कैकेयी महारानी है। भरत युवराज नहीं, युवराज प्राय है। सेना की अनक महत्त्वपूर्ण टुकड़ियाँ उसके अधीन हैं। कैकेयी का मन्त्री पुष्पल सचिव है। कैकेय का राजदूत अयोध्या में विनेय आदर सम्मान तथा स्थिति का स्वामी है। उसके पास सम्राट की अनुमति से अग रक्षकों की विशाल सेना है—कितनी शक्तिशालिनी है कैकेयी। उसकी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-स्थाया मात्र पान वाला मैत्रिक भी दशरथ के नायक की रात भर अयोध्या के बाहर रोके रख सकता है।

ऐसा नहीं है कि दशरथ ने आज पहली बार कैकेयी की शक्ति का अनुभव किया है—उसका जाग्रम उन्हीं विवाह के पश्चात् अयोध्या लौटते

ही मिलने लगा था। और वह शक्ति कम-ग बढ़ी ही है कम नहीं हुई। अनेक बार दशरथ का अपन सम्मुख ही नहीं दूसरी व सम्मुख भी अपमानित होना पड़ा है किंतु उन्होंने आज तक कवेयी की शक्ति का अपनी पत्नी की शक्ति मानने का भ्रम पाया है—पर आज वे देख रहे हैं कवेयी की शक्ति युधाजित की बहन की शक्ति है। भरत की शक्ति दशरथ के पुत्र की नहीं, युधाजित के भाजे की शक्ति है—और युधाजित को अयोध्या में इतना शक्तिशाली नहीं होना चाहिए।

युधाजित से उनका सबध, कवेयी से सबध होने से पहल का है। वह सबध राजनीतिक सबध है—विजयी के लोह शृंगलाभा और पराजित की कलाइयों का सबध। बड़े हुए हाथा और भुङ्ग हुए सिर वाल अपमानित विशोर युधाजित को दशरथ कैसे भूल गए? वे कैसे भूल गए कि नय सबधों के बन जाने से पुराने सबध मिट नहीं जाते। कवेयी से दाम्पत्य का नया सबध हो जाने से, युधाजित से पुराना सबध कैसे गमाया ही सकता है। दशरथ भूल भी जाए पर युधाजित कैसे भूलगा?

दशरथ को पहले देखना चाहिए था कि अयोध्या में उनकी आत्मा के सम्मुख, सत्ता हथियाने का कसा मेन सला जा रहा है। वे कवेयी के मोक्ष और जीवन-सपन की ओर लोलुप दृष्टि से ताकत रह। लोलुप दृष्टि अपना विवेक छो बैठती है। वे कैसे देखत कि कवेयी को प्राप्त करने की प्रश्रिया में उनके हाथों में से क्या खिसकता जा रहा है।

और अभी तो दशरथ सम्राट हैं—चाह बटे हुए हाथा वाल। पर कवेयी के पिता को दिए गए वचन के अनुसार यदि उन्होंने आधिकारिक रूप से सत्ता भरत को सौंप दी, तो? भरत की शक्ति का अर्थ है, युधाजित की शक्ति। जब शक्ति दशरथ के हाथ में थी और युधाजित बाधकर उनके सामने लाया गया था, तो दशरथ ने उसके कंठ पर खडग रखकर, उससे अभद्र व्यवहार किया था। यदि उनकी इच्छा हुई होती तो वह खडग दबा कर युधाजित के कंठ में छिद्र भी कर सकते थे। यदि भरत के हाथा में सत्ता आने पर, युधाजित भी उतना ही शक्तिशाली

दशरथ का कंठ सूख गया। कंठ में स्थान-स्थान पर खडग की नोकें उग आयी थी। कंठ की नलियां जैसे जल रही थी, और रक्त भरने का फट

कर बाहर आने को था

दशरथ के हाथ-पैर ठंडे हो गए। वण पीला पड़ गया। उन्होंने माथे पर हाथ फेरा—माथा ठंडा और पसीन से भीला था। उन्हें लगा कि वे एक भयंकर स्वप्न देख रहे हैं—वे पहाड़ की एक ऊँची चोटी से नीचे फेंक दिए गए हैं। वे बड़ी तीव्र गति से सहसा हाथ गहरी खड्ड में गिरते जा रहे हैं। वे देख रहे हैं कि नीचे गिरते ही उनकी एक एक हड्डी चूर हो जाएगी। पर वे कुछ नहीं कर सकते। उनका शरीर जड़ ही चुका है। वे हाथ-पैर हिलाना चाहते हैं पर हिला नहीं पाते। वे चीखना चाहते हैं किंतु उनके कंठ से ध्वनि नहीं निकली। सारा शरीर जड़ हो गया है बस आँखें घुली हैं और देख रही हैं। मस्तिष्क सन्निय है और अनुभव कर रहा है

यही देर तक दशरथ उसी स्तब्ध दशा में बठे रहे, और सहमा के सजग हुए—निश्चित रूप से यह बहुत घटनाएँ हुए ही नहीं, डरे हुए भी थे। मन बार-बार कह रहा था कुछ कर दशरथ! यही अवसर है नहीं तो बहुत देर हो जाएगी।' पर उनका मन उन छोटे बालक के समान था जो हाथ में पूरी इट लिये हिंस्र भेड़िए के सम्मुख खड़ा सोच रहा था—इंट न मारू तो यह मुझे खाने में कितनी देर लगाएगा और मारू तो यह मर जाएगा था कुपित होकर मुझे और भी जल्दी खा जाएगा? भेड़िए की आँखों में क्रोध था उनकी लाल-लाल हिंस्र तथा नोलुप जीभ मुँह से बाहर लटक रही थी, बड़े बड़े तीखे श्वेत दाँत भी चमक बत्ती जा रही थी

भेड़िया मुझे खाएगा जबदप, मैं इट मारू या न मारू

दशरथ की चिंता बढ़ती जा रही थी

इट मारू?

न मारू?

सम्राट् को राज-सभा में आने में विलंब हुआ था।

विलंब से आना सम्राट् का नियम नहीं था। अपवादस्वरूप ही ऐसा होता था। जब कभी ऐसा होता था, सम्राट् जल्दी जल्दी लंबे लंबे डग उठाते हुए, सभा में आते थे और सिंहासन पर बैठते ही बड़ी शालीनता से खेद प्रकट करते थे। उनका सारा व्यवहार अतिरिक्त रूप से विनीत और

नम्र होता था। विलंब से आने के कारण सभासदा को हुई अमुविधा की क्षतिपूर्ति का प्रयत्न अत तक चलता रहता था।

आज वैसा कुछ भी नहीं हुआ। सम्राट विलंब से आए थे, पर न कोई जल्दी थी न कोई सकोच। वे स्थिर ढंग से दृढ़ चाल चलते हुए आए और जब सिंहासन पर बैठकर उन्होंने आगे उठाई तो सबने दम्भा उनकी आँखें ढकीं किंतु गतक थी—समभवत अपनी किसी चिंता के कारण सम्राट रात भर सो नहीं पाए थे।

किन्हीं कारणों से सम्राट को विलंब हुआ महामंत्री ने सम्राट को चिंतित देखकर बड़ नम्र ढंग से अपनी बात आरंभ की। अपना थी कि सम्राट कहें हा महामंत्री। चिंतित था रात भर सो नहीं पाया

किंतु सम्राट ने महामंत्री की ओर दृष्टि उठाई तो उनका चेहरे का आवरण बहुत कठोर था। उन्होंने ही कठोर स्वर में उहाने कहा सम्राट मैं हूँ। राज परिषद का समय भरी इच्छा से निश्चित होता है।'

महामंत्री ने आश्चर्य से सम्राट को देखा, और फिर उनकी दृष्टि गुरु कमिष्ठ पर जम गई—जस कह रहे हो दण्ड की राज-सभा की ता यह परिपाटी नहीं है किंतु गुरु ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे भी ऐसी ही दृष्टि से सम्राट को देख रहे थे जैसे कुछ समझ न पा रहे हों

राज-सभा में एक अटपटा मौन छाया रहा।

किंचित् प्रतीक्षा के पश्चात् महामंत्री ने स्वयं को मतुलित कर पुन साहस किया सम्राट की अनुमति हो तो आवश्यक सूचनाएँ निवेदित की जाएँ।'

आरंभ कीजिए। सम्राट के शब्द सहज थे, किंतु उनका स्वर अब भी सहज नहीं हो पाया था।

महामंत्री के मकेत पर पहले चरण सूचना दी सम्राट। मैं राज सायों के संग यात्रा करने वाला दूत सिद्धाथ हूँ। मैं राजकुमार भरत तथा शत्रुघ्न का समाचार लेकर आया हूँ। राजकुमार अपरताल तथा प्रलंब गिरियों के मध्य बहने वाली नदी के तट से होते हुए हस्तिनापुर में गंगा का पार कर सकुशल आग बट गए हैं।'

सम्राट ने पूरी तमयता से समाचार सुना। उनके मन में उल्लास का

एक स्वर फूटा, भरत अयोध्या से दूर हो गया।' उनकी आकृति की कठोर रेखाएँ शिथिल हो गई। आखी म सतोष झकने लगा और होठों के कोना म हल्की-सी मुसकान उभरी।

सभा धैर्यपूर्वक सम्राट के उत्तर की प्रतीक्षा करती रही किंतु सम्राट् पूण आत्म-सतोष व साथ अपने अधरों की मुसकान पीते रहे।

अत म फिर महामंत्री ही बोले दूत 'तुम्हारा समाचार शुभ है। सम्राट राजकुमार का कुशल समाचार जानकर सतुष्ट हैं। तुम जाओ। विश्राम करो।'।

दूत प्रणाम कर चला गया।

तब महामंत्री स सकेत पाकर 'याय-समिति के सचिव आय पुष्कल उठकर खड़े हुए 'सम्राट का स्मरण होगा कुछ दिन पूर्व सम्राट के अग-रक्षक दल के सैनिक विजय की, केकय राजदूत के रथ व घोड़ों से टकरा उनके खुरी के नीचे आकर कुचले जाने के कारण मर्यु हो गयी थी। सम्राट ने इस घटना की जाच 'याय-समिति को सौंपी थी। 'याय-समिति ने उस दुघटना की सम्पक खोज की है। अपनी खोज के पश्चात् समिति इस निष्कय पर पहुंची है कि वह दुघटना मात्र आकस्मिक थी। उसमे केकय राजदूत की न इच्छा थी, न असावधानी। अत समिति केकय राजदूत को निर्दोष पाकर अभियोग मुक्त घोषित करती है। सम्राट मे प्रार्थना है कि वे इस निणय को अपनी मा-मता प्रदान करें।'।

दशरथ का सस्तिष्क नामों पर अटक गया। जिस सैनिक की हत्या हुई वह दशरथ के अग रक्षक दल का था। जिसने हत्या की, वह केकय का राजदूत है, अर्थात् युधाजित का राजदूत। अपराधी पर अभियोग लगाने वान सैनिक भरत ने अधीन हैं। जाच करन वाला पुष्कल है—कैकेयी का मवधी। तो केकय राजदूत निर्दोष क्या नहीं होगा ।

दशरथ के हाठों के दोनों पर फिर मुसकान उभरी, किंतु यह सतुष्टि की मुसकान नहीं थी। बोले वे अब भी कुछ नहीं।

सम्राट को मौन देख महामंत्री ही बोले 'याय-समिति की जाच स सम्राट सतुष्ट हैं और समिति व निणय की मा-मता देते हैं "।

सहना महामंत्री की बात काटकर दशरथ बोल, किंतु न्याय-समिति

ने मतव के परिवार की क्षतिपूर्ति का कोई सुझाव नहीं रखा। यह अनुचित है। सनिक विजय के परिवार को क्षतिपूर्ति के रूप में उसके वतन का दुगुना भत्ता प्रति मास दिया जाए।”

महामंत्री ने आश्चर्य से सम्राट को दखा।

आय पुष्कल ने भी उसी मुद्रा में सम्राट की देखा किंतु वे महामंत्री के समान मौन नहीं रहे “याय-समिति के सचिव के रूप में मेरा यह कृतव्य है कि मैं सम्राट को स्मरण दिलाऊँ कि ऐसी स्थितियाँ में व्यक्ति के वतन का आधा भत्ता देने का विधान है।

किंतु “याय-समिति के सचिव को कौन स्मरण दिलाएगा” सम्राट का स्वर अतिरिक्त रूप से तीव्र था कि विधान में सम्राट के अपने कुछ विशेषाधिकार भी हैं। सम्राट का भत्ते की राशि को घटा बढ़ा सकने का पूर्ण अधिकार है।’

आय पुष्कल के मन में अनेक आपत्तियाँ थी—सम्राट को विशेषाधिकार तो हैं, किंतु वे विशेष परिस्थितियों के लिए हैं। इस घटना में ऐसी कोई विशेष बात नहीं है।

किंतु सम्राट की भविष्य ऐसी नहीं थी कि आय पुष्कल या कोई अन्य पापद कुछ कहने को प्रोत्साहित होता। सम्राट अप्रसन्न है यह साफ-साफ दीख रहा था किंतु क्या? किममें? क्या वे स्वयं पुष्कल से अप्रसन्न हैं?

आय पुष्कल ने अपनी बात कठमही रोक ली।

सभा में फिर मौन छा गया। सम्राट के इस प्रकार खोभने के अधिक अवसर नहीं आते थे, और जब आते थे उनका टल जाना ही उचित था। किसी का साहस नहीं था कि सम्राट की ओर देखे। सबकी दृष्टि भूमि पर गड़ी हुई थी।

ऐसी स्थिति से परिपद को राज-गुरु तथा अन्य ऋषि ही उबार सकते थे। उन पर सम्राट का अनुशासन अनिवार्य लगू नहीं होता था। किंतु सामान्यतः सम्राट द्वारा याचना होने पर ही गुरु तथा अन्य ऋषि अपना अभिमत देते थे अथवा बहुत असाधारण स्थिति होने पर ही वे लोग सैद्धांतिक हस्तक्षेप करते थे—किंतु आज की बात तो सामान्य-सी वैधानिक बात थी।

सबका मोन देख, सम्राट् ने इस विषय का यही समाप्त मान लिया।
वे सभा में आन के पश्चात् पहली बार स्वयं सक्रिय हुए, 'नगर रक्षा के लिए कौन-सी सेना नियुक्त है महाबलाधिकृत ?'

साम्राज्य की तीसरी स्थायी सेना, सम्राट् ।'

'कितने समय से यह दायित्व इस सना के जिम्मे है ?'

'उन्हें यह काय ममाल केवल छह मास हुए है सम्राट् ।'

उसका महानायक कौन है ?'

स्वयं राजकुमार भरत ।' महाबलाधिकृत ने सूचना दी किन्तु अयोध्या से उनकी अनुपस्थिति में सना उपनायक महारथी उग्रदूत की आत्मा के अधीन है ।'

दशरथ ने कुछ क्षणा तक चिंतन का नाटक किया और फिर अपना पूर्व निश्चित निणय सुना दिया महाबलाधिकृत । साम्राज्य की तीसरी स्थायी सना के उपनायक को आदेश में कि वे अपनी सना को लेकर उत्तरी सीमात पर स्थित स्वर्धावार में चले जाएं। वहां उनकी आवश्यकता पड़ सकती है। यह प्रयाण कन प्रात ही हो जाना चाहिए ।'

'जो आता, सम्राट् ।'

और अयोध्या की रक्षा का दायित्व मेरे अग्न रक्षक दल के महानायक चित्रसेन को सौंप दिया जाए। सम्राट् का स्वर पहले से भी ऊंचा हो गया था ।

महाबलाधिकृत जो आता न कह सके। तीसरी स्थायी सेना का स्थानान्तरण मद्यपि अनियमित था, क्योंकि नियमित एक सेना को एक स्थान पर साधारण परिस्थितियों में प्रायः तीन वर्षों तक रखा जाता है— फिर भी सम्भव है कि सम्राट् के मन में कोई असाधारण बात हो सम्भव है उनके उक्त आदेश के पीछे कोई तर्क हो। यद्यपि ऐसे आदेशों के कारण महाबलाधिकृत से गुप्त न हो रहे जाने चाहिए, और ऐसे आदेशों का पालन महाबलाधिकृत से उसकी सहमति नियम बिना नहीं होना चाहिए, फिर भी सम्राट् कभी-कभी विनाधिकार का उपयोग कर लेते हैं। अतएव ऐसे निणय सामंदायक ही होते हैं। किन्तु नगर रक्षा का दायित्व सम्राट् के निजी अग्न रक्षकों को सौंप देना क्या हो गया है सम्राट् की बुद्धि को ?

क्षमा हो, सम्राट् । ” महाबलाधिकृत बहुत साहस कर बोले “नगर-रक्षा का दायित्व सम्राट् के अंग रक्षक दल को सौंप देना अपूव निणय है । अंग रक्षका की मर्या इतनी अधिक नहीं है कि वे सम्राट् की निजी रक्षा राज-सभा राज-कार्यालया तथा राजप्रासादा की रक्षा के साथ साथ नगर रक्षा का दायित्व भी सभाल सकें । सम्राट् विचार करें यह आदेश अ-यावहारिक है । यह तब तक यावहारिक नहीं ही सकता जब तक कि अंग रक्षकों की सहा एक पूरी सेना तक न पहुँचा दी जाए । ’

सम्राट् न अर्धसूचक महाबलाधिकृत की बात सुनी और पुन बड़े कटु स्वर में उत्तर दिया महाबलाधिकृत का कटाक्षित पात हा कि सम्राट् ने अपनी आयु इस सिंहासन तथा राज-सभा में ही व्यतीत नहीं की है । मैंने सेनाएँ स्थावर तथा सना-व्यवस्थाएँ ही नहीं देखी—बड़े-बड़े युद्ध अभियानों में एकाधिक सनाओं का सफल नेतृत्व भी किया है । महाबलाधिकृत मुझे यह सीख न दें कि कौन सी सेना किस क्त में के लिए उपयुक्त है ।

विचित्र स्थिति थी—व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी व्यवस्था-संबंधी तक सुनने को प्रस्तुत नहीं था । अनुभवों की बात कहकर उ होने महाबलाधिकृत का मुख बंद करने का प्रयत्न किया था । सम्राट् का व्यवहार देख महाबलाधिकृत हतप्रभ हो चुके थे । महामंत्री आरभ स ही निरस्त-स्थ । गुरु न भी अपूव चुप्पी धारण कर रखी थी

अंत में आय पुष्कल ही उठे सम्राट् यदि अनुमति दें, तो मैं उनके विचाराय विधान की परंपरा का उल्लंघन करना चाहूँगा जिसके अनुसार नगर रक्षा का काय अंग रक्षकों के कृत्य संपन्न

और सहसा जस विस्फोट हो गया ।

सम्राट् अमर्यादित रूप से क्षुब्ध हो गये । उनका चेहरा तमतमा गया था । नधुना के साथ अधर भी पड़क रहे थे । उनका स्वर धीमा होता तो सप का फूटकार लिय होता ऊँचा होता तो फटने फटने का होता

प्रत्येक सभासद को स्पष्ट रूप से पात हा कि अभी दशरथ ही सम्राट् है और इस सिंहासन पर विराजमान ही नहीं है सत्ता संपूर्णत उसके अधिकार में है । मैं सम्राट् की सत्ता की अवहेलना अथवा उसके अवमूल्यन

की रचना अनुमति नहीं दूंगा। सम्राट का आदेश। पर विचार विमर्श अपवा
वा विवाह नहीं होगा। मैं यह निर्णय लेना नहीं दे रहा हूँ कि मछाद का
विरोध करने वाला न केवल पञ्चुन होंगे, बरन् दलित भी होंगे। मछाद
का विरोध राज-द्रोह माना जाएगा जिसका परिणाम भयंकर होगा।"

परिषद् जड़ हो गयी। सम्राट के निष्पत्ति तब तक थी, उनका
व्यवहार भा पर्याप्त चर्चित करने वाला था। सम्राट अपने इस वयम,
अपना नम्रता ही नहीं शिथिलता का मध्य इतना बटार तथा परपरा-
विरोधी व्यवहार करें—अल्पनीय बात थी।

सभा से उठकर आ जाने का पश्चात् भी मगरम की मन क्षणभर की शांत
नग हुआ। उनका मन में आज राज-परिषद् में हुई एक-एक बात बर्द-बर्द
बार पुनरावृत्ति कर चुकी थी। एक-एक पाप उनका मल्पना की आँखों
का सामने था। एक एक व्यक्ति की कही हुई एक एक बात जैसे उनकी
स्मृति पर छा दी गयी थी और अंत में उनका विचार का व्यक्तियों पर
आ जाने थे—महाबलाधिकृत तथा पाप-ममिति-मधिव पुनस्त।

क्या महाबलाधिकृत मेरा विरोधी है ?

यदि है तो क्यों ?

किंतु महाबलाधिकृत ने कभी राजनीति में विरोध रचि नहीं ली।
किसी का पक्ष अपवा विपक्ष लेने नहीं पाया। वह सैनिक परपरा में पला
हुआ अधिकारी के सम्मुख मित्र मुका देने वाला मध्य-व्यवसायी है। उसका
न कर्मों से विशेष संबंध है न मरत से, न केवल राजदूत से, न युधानित
से। उसने जो कुछ कहा वह केवल सैनिक काय पदति की दृष्टि से कहा
होगा। उस व्यक्ति को इतना बसा है ही पर्याप्त होगा कि वह अपने काम
में काम रहे। राज-परिषद् का पदपत्रों अपवा पक्ष विपक्ष में न पड़े।
विश्लेषण बड़ी अच्छी बात है—किंतु राज की परिस्थितियाँ में सजते
अच्छी बात है—मौन। यदि वह सम्राट का अपमान करने का प्रयत्न
नहीं करेगा, तो सम्राट उसे अपमान नग्राह्य

राजनीति के सारे सिद्धांतों, जादशों तथा नैतिकता का एकमात्र सूत्र है—विरोध उ मूलन । विरोधो का उ मूलन भी

दशरथ का मन हुआ जार से खिलखिलाकर हस पड़े—ऐसी हसी जिसकी क्रूरता लोगों के कलेजे दहला ने । उनके विरोधिया को मालूम हो कि सत्ता का विरोध क्या अव रखता है और उसका कितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है

आय पुष्कल को लिये हुए, उनका रथ स्थिर गति से उनके भवन की ओर चला जा रहा था ।

उनका मन खिन्न था । पिछले कुछ दिनों से राज मभा से निकलत हुए उनका मन रोज़ ऐसा ही खिन्न होता था । सम्राट प्रतिदिन नियमित रूप से अभद्र व्यवहार कर रहे थे । क्या हो गया है सम्राट को ? रोज़ कोई न कोई आकस्मिक निश्चय करते हैं । एक से एक विविध निश्चय और तदनुकूल आदेश । अब तो जसे परंपरा ही चल पड़ी है । और प्रायः निणय एकमत से होत हैं । मभा थ कोई इसका विरोध नहीं करता । किसी प्रस्ताव पर विचार विमश अथवा वाद विवाद नहीं होता । बस प्रस्ताव स्वीकार भर कर लिये जाते हैं । पिछले कुछ दिनों से उनका स्वभाव कितना चिड़चिड़ा हो गया है । बात बात पर अप्रसन्न हो जात है जसे खीभन का कोई बहाना खोज रहे हो । राज-काज में मनमानी कितनी बढ़ गयी है । छोटी छोटी बातों पर आशक्ति हो उठत है ।

क्या करे कोई ? किसो में न तो इतना साहस है कि सम्राट के सम्मुख बोले न किसी को अधिकार । गुरु कह सकते हैं कि गुरु ने जसे राजनीति से बराय्य ले लिया है । वे कुछ कहते ही नहीं

राजकुमारों में राम पिता को समझा सकते हैं, किंतु वे अयोध्या से बाहर गये हुए हैं । भरत और शत्रुघ्न भी अपनी ननिहाल चले गये हैं । वसे भी वे अभी छोटे हैं । सम्राट का न तो विरोध कर सकते हैं न उन्हें समझा सकते हैं । लक्ष्मण अवश्य अयोध्या में बतमान हैं किंतु एक तो वे छोटे हैं दूसरे भयकर उग्र । उन्हें कुछ कहना व्यर्थ है । कहना ही हो तो राम के माध्यम से कहलाना चाहिए । उन्हें या तो राम की सच्चाई का विश्वास है

या अपनी मा सुमित्रा की

हा महारानी कँकेयी से बात की जा सकती है। वे मेरी बात सुन भी लेंगी, और सम्राट का अनुशासन भी वे कर सकती है। उनसे अवश्य बात की जानी चाहिए वही से यह सूचना भी मिल जाएगी कि राम कब अयोध्या लौट रहे हैं। राम लौट आए और वे महारानी कँकेयी के साथ मिलकर प्रयत्न करें तो सम्राट को अवश्य ही समझाया जा सकता है।

यह ठीक रहगा

मन कुछ हल्का हुआ नहीं तो वे अपनी खिन्नता से ही पागल हुए जा रहे थे

वे वहिमुखी हुए। उनका रथ अपने भवन के निकटतम चौराह पर पहुँच रहा था। सहसा उनका ध्यान विपरीत दिशा से आते हुए एक अरथ रथ की ओर चला गया। रथ असाधारण तीव्र गति से भागा चला आ रहा था। नगर के मुख्य पथो पर रथो को इस गति से नहीं दौड़ाना चाहिए—वे सोच रहे थे—दुघटनाएँ ऐसे ही तो होती

पर वह ता उही के रथ पर चढ़ा चला आ रहा था सहसा इतने अकस्मात रूप से, इतने निकट आकर वह रथा कि भ्रम हुआ, जैसे दोनो रथ परस्पर भिड़ गये हो।

ऐसी ही एक दुघटना म पिछले दिनों में सम्राट के अग रक्षक दल का एक सैनिक मारा गया था—आय पुष्कल सोच रहे थे—य दानो रथ टकरा गये होत तो आज अधिक यकिनवा के प्राण भय होत। उनके मारपी ने बड़ी सावधानी से काम निभा था। तीव्र चालक अच्छा सारथी नहीं होता, अच्छा सारथी तो अच्छा नियंत्रक होता है।

दूसरे रथ के रुकते ही, उसमें से कूदकर, चार हृष्ट पुष्ट युवक नीचे उतरे। उनके वस्त्र साधारण नागरिको के—स थे—जो इतने बहुमूल्य रथ में यात्रा करने के उपयुक्त नहीं थे। वस्त्रो को देखकर उनके व्यवसाय अथवा स्थिति के विषय में कुछ कहना कठिन था। उनकी आकृतियों पर होती होती रह गयी दुघटना का कोई प्रभाव नहीं था। वे तो जमे किसी काम के लिए उद्यत थे

वे सीधे उनके रथ की आर बढ़ आए। उहोने बिना एक भी शब्द

कह आय पुष्कल के दानों अग रक्षकों तथा सारथी को रथ से नीचे धसीट लिया ।

आय पुष्कल की आँखें फट गयी—यह क्या हो रहा है ?

अग रक्षक असावधानी में पकड़े गए थे । फिर भी वे शस्त्र-व्यवसायी थे । उन्होंने अपने शस्त्र निकाल लिये थे । युवक भी निशस्त्र नहीं थे । उन्होंने कदाचित् अपन बस्त्रों में शस्त्र छिपा रक्खे थे । और कुछ निमित्तों में ही स्पष्ट हो गया कि उनका शस्त्र-वीरता जसाधारण था ।

दिन-दहाड़े नगर के मुख्य पथ पर इस प्रकार शस्त्र प्रहार हो रहा था, जैसे युद्ध हो रहा हो ।

आय पुष्कल ने आगे बढ़कर कुछ कहना चाहा, किंतु घटना जिस गति से घटी थी उसमें कहने-सुनने का कोई अवकाश नहीं था । वे कुछ कहते और कोई कुछ सुनता—उसमें पहले ही युवक ने अग रक्षकों को हताहत कर भूमि पर डाल दिया था । सारथी को अग रक्षकों के साथ ही नीचे पथ पर धसीटा गया था जो अब भी भूमि पर पड़ा, पथराई हुई आखा से सब कुछ देख रहा था ।

अगने ही क्षण उन्होंने आय पुष्कल के मुख पर हाथ रख, भुजाओं से पकड़कर सधे हाथों से ऊपर उठा लिया । उस वृद्ध उनका नित्य का काम हो । बड़ी दक्षता और स्फूर्ति से उन्होंने आय पुष्कल को ल जाकर अपने रथ में पटक दिया । उनके पटके जाते ही रथ बिना किसी आदेश की प्रतीक्षा किए, स्वतः चल पड़ा । जैसे एक एक कृत्य पूर्व नियोजित हो ।

चलते हुए रथ में उनके हाथ-पर अच्छी तरह बांध दिए गये । न उनसे कुछ पूछा गया न कुछ बताया गया । युवक ने परस्पर भी कोई बात नहीं की थी । उनके हाथ कायरता से मुख बंद—“तसे गुने हो ।

आय पुष्कल के मुख पर कसकर पट्टी बांध दी गयी । जाने उन्हें क्या सुझाया गया । क्रमश उनकी चेतना लुप्त हो गयी, और वे अधकार में खा गये ।

राज-परिषद् की कामवाही दूत की सूचना से आरम्भ हुई ।

‘सम्राट ! मैं राज सारथी के साथ यात्रा करने वाला दूत विजय हू । मैं

राजकुमार भरत तथा शत्रुघ्न का समाचार लेकर आया हूँ। राजकुमार पाचान नेश से होते हुए कुम्भागल प्रदेश का पीछ छोड़ते हुए सकुशल पुण्य सलिला इक्षुमतो के उस पार उतर गये हैं।'

प्रत्येक सभामन्त्र ने देखा उद्विग्न सम्राट् को इस समाचार से कुछ प्रमत्तता हुई।

भरत अयोध्या में दूर होता जा रहा है—दशरथ सोच रहे थे—दूत ने अयोध्या लौटने तक के समय में वह और भी दूर हो गया होगा। किंतु अयोध्या में बड़े भरतो का क्या हो ?

महामन्त्री ने बिना औपचारिक भूमिका के अपनी बात आरम्भ की, 'क्षमा करें सम्राट् ! परिपद की अन्य कायवाहिया को स्थगित कर बीच में एक आवश्यक सूचना देना को बाध्य हूँ।

अवश्य पुष्कल का समाचार होगा।' सम्राट् ने आश्चर्य मान लिया।

राज-परिपद के प्रमुख पापद तथा पाप समिति के सचिव आय पुष्कल का, कल साय दिन-दहाड़े, नगर के प्रमुख पतुष्पय सदस्यों द्वारा अपहरण हो गया है। यह घटना अपने-आप में ही अयोध्या की शांति तथा सुरक्षा-व्यवस्था के नाम पर कलक है। इतने प्रमुख नागरिक के साथ ऐसा अघटनीय घट जाए। ऐसी स्थिति में कोई भी सामान्य नागरिक स्वयं को सुरक्षित कैसे मानेगा ? किंतु, आय पुष्कल के पुत्र चिरजीव विपुल का वक्तव्य इससे भी भयंकर लज्जाजनक, त्रासद एवं आनकंपूण है। राज-व्यवस्था "

महामन्त्री । " सम्राट् ने बीच में ही टोक दिया, "जिस राज-व्यवस्था की आप धारा प्रवाह निंदा कर रहे हैं उसके आप महामन्त्री हैं।

सम्राट् ठीक कहते हैं।' महामन्त्री उसी आवग में बोले 'किंतु यह दुघटना अगर रणक दल को नगर रक्षा का भार सौंप देने की व्यवस्था से संबंधित है जिसके लिए मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। "

अर्थात् मैं उत्तरदायी हूँ। दशरथ पुन बोले : इस बार उनका स्वर शांत नहीं था। उसमें आवेश की स्पष्ट झलक थी 'तब तो महामन्त्री को और भी सोच-समझकर मुख से शब्द निकालने चाहिए। व्यवस्था का

अपमान सम्राट का अपमान है, और सम्राट का अपमान

सम्राट अपने ही आवशम मौन हो गये। शेष बात उनका तमतमाता चेहरा कह रहा था।

‘मुझे अपनी ओर से कुछ नहीं कहना है सम्राट। महामंत्री के स्वर में वह प्रवाह था न तब आप चिरजीव विपुल का वक्तव्य सुन लें।

सम्राट मौन रहे।

विपुल ने झुककर सम्राट को प्रणाम किया। उसे देखते ही लगता था कि वह रातभर सोया नहीं है। शायद किसी समय थोड़ा बहुत रोया भी था। उसकी वशभूया राजमभा में उपस्थित होने के लिए उपयुक्त नहीं थी—कदाचित्त उस इसका भी अवसर नहीं मिला था।

सम्राट। कम संध्या समय हमारा सारथी जब आहत तथा अचेत अग रक्षकों को रथ में डालकर भवन में पहुँचा तो हम सूचना मिली कि पिताजी का अपहरण हो गया है। हमारे लिए यह सूचना जितनी अप्रत्याशित थी उतनी ही घातक भी। मैंने अपने अग रक्षक और निजी सैनिकों को तत्काल चांगे और दोड़ाया और स्वयं निवृत्त सैनिक चौकी की ओर बढ़ा। भाग में मैंने देखा कि यह समाचार सार नगर में फैल चुका था। जगह जगह विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ हो रही थीं। अयोध्या जैसे नगर के लिए यह अकल्पनीय घटना थी। राज्य के इतने प्रभावशाली व्यक्ति का इस प्रकार दिन दहाड़े राजपथ से हरण हो जाए और नगर रक्षक कुछ न कर सकें। अविश्वसनीय। नगर में शोक फैल गया था। हाट बढ़ हो गये थे। व्यापार ठप्प हो गया था। लोग स्वैच्छा से अपने घरों में बंद हो गये थे। सत्ता की शिथिलता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है सम्राट।

युवक। ‘दशरथ के स्वर में बतावनी थी।

क्षमा हा सम्राट। दुखी व्यक्ति के मुँह से कोई अनुपयुक्त बात निकल जाए तो क्षमा करें। विपुल ने अपनी बात आगे बढ़ाई। नगर में इतना कुछ हुआ था और सैनिक चौकी का सूचना तक नहीं थी। पहले तो उन्होंने आयुष्मन्त को ही पहचानने से इनकार कर दिया। जब पहचानने का वाध्य हुए तो उनके अपहरण की बात को यह कहकर उड़ा दिया कि व

अपने मनोरंजन के लिए कही चले गए होंगे। मैंने अपने सारथी तथा आहत अग रक्षका से प्रमाण दिलाए तो उत्तर मिला कि वे मदिरा पीकर आपस में लड़ पड़ होंगे इत्यादि। यह सोचकर कि ये सैनिक इस प्रकार के परिवाद के लिए उपयुक्त पात्र नहीं हैं मैं उच्चाधिकारियों से भी मिला। किंतु मुझे अत्यंत दुःख से सम्राट के सम्मुख निवेदन करना पड़ रहा है कि उन अधिकारियों ने मेरे साथ ही नहीं, मेरा पक्ष लेने वाले प्रत्येक नागरिक व साथ दुर्व्यवहार किया, हम सबका अपमान किया। मैं रातभर इस सब में विभिन्न अधिकारियों के पास भाग दौड़ करता रहा हूँ, किंतु उन्होंने न इस विषय में कोई सूचना दी और न उन्हें खोज निकालने का कोई प्रयत्न किया।' विपुल ने एक क्षण रुककर सम्राट को देखा और पुन बोला किंतु सम्राट! मैंने अपने निजी सूत्रों से पता लगाया है कि वे दस्यु न तो अयोध्या के बाहर से आए थे न अयोध्या के बाहर गए हैं। वे सशस्त्र थे और उनका गुट-बोशल अच्छे प्रशिक्षित सैनिकों का-सा था। सम्राट मुझे यह कहने की अनुमति दें कि वे दस्यु स्वयं सम्राट के अग रक्षक दल के सैनिक थे जिन्होंने सैनिक वेश उतारकर

सावधान।' सम्राट ने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया किसी भी घटना की आहलकर इस प्रकार का अनगल प्रलाप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।'।

'अनन्ता।' महामंत्री ने सम्राट की बात पूरी होते ही कहा चिरजीव विपुल को अपनी बात पूरी करने के पश्चात् प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा जाए। यदि वे अपनी बात प्रमाणित नहीं कर सकें तो निराधार आरोप लगाने के अपराध में वे दंडित किए जाए

नहीं।' सम्राट का अधय मुखर हो उठा। वे फिर आवश की स्थिति में आ गए थे इस प्रकार के दूषित प्रचार के लिए राजमभा का प्रयोग नहीं हो सकता। मैं इस विषय में विचार विमर्श की अनुमति नहीं दे सकता।

किंतु सम्राट की इच्छा के अनुकूल विपुल मौन नहीं रहा यदि मेरे पिता ने कोई अपराध किया था तो सम्राट उन पर खुला अभियोग लगाकर उन्हें बंदी कर सकते थे

इस वदी किया जाए।' सम्राट ने मनुजित आवश में कहा।

दो प्रतिहारियों ने आगे बढ़कर विपुल को भुजाओं से पकड़ लिया । वह अपने आप ही मौन हो गया ।

दशरथ उसे घूरत रहे । मितु जब वह कुछ नहीं बोला तो सम्राट ने एक एक शब्द पर बल देते हुए स्थिर स्वर में कहा 'इस प्रकार के उत्तर दायित्वपूर्ण आचरण को मैं साम्राज्य के लिए हानिकारक मानता हूँ । अतः आदेश देता हूँ कि इस तथाकथित घटना की आद लेकर साम्राज्य तथा सम्राट के व्यक्तित्व के विरुद्ध प्रचार अपराध माना जाएगा । इस प्रकार का घातक प्रचार करने वाला व्यक्ति दंडनीय होगा ।

सहसा विपुल छिटककर प्रतिहारियों के हाथों से निरन्त गया और घोखार के स्वर में बोला 'पहन ही किसी को दशरथ के शासन में आस्था नहीं थी । अब और भी नहीं रहगी ।

इसे मौन करो । सम्राट ने उच्च स्वर में कहा ।

प्रतिहारी विपुल की ओर बढ़े ।

विपुल प्रतिहारियों से बचता इधर उधर भागता रहा और साथ ही चीखता रहा अब किसी को अपनी सुरक्षा के लिए राज्य के सनिकी पर विश्वास नहीं रहा । लोग अपनी रक्षा स्वयं करेंगे । निजी अग रक्षा तथा निजी सनिकों के मुँह अयोध्या के हाट माजारों में होंगे । अयोध्या के मुख्य पथ रक्तपात के

प्रतिहारियों ने उसे पकड़कर उसका मुख पट्टी से बाध दिया था, अब केवल उसकी आँखें खुली थी ।

प्रतिहारी सम्राट के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

इसे भूनाम कारागार में डाल दो ।' सम्राट ने आज्ञा दी, और आज से किसी राजकीय बंदी के विषय में अधिकारियों से पूछताछ नहीं की जा सकेगी । साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक होने पर किसी भी व्यक्ति को बिना अभियोग बताए भी बंदी किया जा सकता ।

सम्राट उठकर चडे हा गए ।

मभा विसर्जित हो गयी ।

दशरथ की चित्ता तनिक भी नम नहीं हुई थी ।

उ होने क्या करना चाहता था और क्या हुआ। अपने अग रणका का नगर रक्षा का दायित्व सौंपा था कि नगर में भरत की शक्ति कम हो जाए। भरत की शक्ति कम कर पाए या नहीं वह नहीं सकता, हा, पुष्पल के द्वारा वैधानिक सकट अवश्य उठा दिया गया, साथ ही उत्तरा उत्पन्न हो गया कि यदि कबेयी को आभास मिल गया कि दशरथ क्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं तो उसकी आर से जवाबी आघात हो सकता है, और संभव है कि वह आघात इतना भारी हो कि दशरथ उसे समाल न पाए। उससे बचने के लिए पुष्पल का अपहरण करवाया ता बदर मच गया

क्या हो गया है उन्हें ?

क्या सचमुच दशरथ तन बूढ़े हो चुके हैं कि अब राजनीतिक गतिविधि उनकी क्षमता से बाहर है। उनकी प्रत्येक चाल उलटी पड़ रही है। उन्होंने सत्ता का पूर्णतः हस्तगत करना चाहता था—किंतु लगता है, उनकी रही सही सत्ता को भी उत्तरा उत्पन्न हो गया है।

इस प्रकार का बल प्रयोग दमन, लोगों के अधिकारों को सीमित करना—बस तक उनकी महायत्ना कर पाएगा। हर बात की सीमा होती है

इतना रोकने पर भी पुष्पल का घेरा क्या बह गया राजसभा में किसी को दशरथ के शासन में आस्था नहीं है। अब कोई अपनी सुरक्षा के लिए राजकीय सैनिकों पर निर्भर नहीं रहेगा। सभी धनवान और शक्तिशाली लोग निजी सैनिक और अग रक्षक रखेंगे। स्थान स्थान पर निजी सेनाओं में युद्ध होगा रक्तपात होगा

कैसे होगा अयोध्या का शासन ?

और सबसे बड़ी निजी सत्ता आज किसके पास है ?

वक्त्र के राजदूत के पास।

अब तक निजी सेनाएं अपने स्वामियों के अग रणकों का काम करने की औपचारिकता निभाती रही है। उनके पास किसी भी प्रकार का राजकीय अधिकार नहीं है, किंतु यदि निजी सत्ताओं के युद्ध आरंभ हुए तो फिर राजकीय अधिकारों की आवश्यकता किसकी रहेगी। विरोध मतधर्मों की मायता दन हुए वक्त्र के राजदूत को संपूर्ण बड़ी निजी सेना रखने की अनुमति दी गयी थी। वह सेना वक्त्र की निजी सत्ता हो जाएगी—तो

कवेयी की शक्ति कम होगी या बढ़ जाएगी ?

किस भेले में फँस गए सम्राट ?

संभव है उस लड़क विपुल न निरर्थक प्रलाप ही किया हो उसकी बात के पीछे कोई ठोस आधार न हो, किंतु संभावनाओं की ओर स जाख नहीं मूदी जा सकती ।

अब तो एक ही रास्ता है कि साम्राज्य में निजी सनाओ का निषेध कर दिया जाए किंतु यह कैसे संभव है ? वासल व प्रत्येक सामंत के पास अपनी निजी सेना है जो युद्ध व अवसर पर साम्राज्य की ओर स लड़ती है । प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के पास अपने अग र तक है । प्रत्येक राज्य के राजदूत के पास अपनी निजी सेना है उन सब पर प्रतिरोध लगाया जाएगा, तो सामंतों की सेना का अर्थ साम्राज्य पर आ पड़ेगा अर्थ निजी अग रक्षकों तथा सैनिकों की आजीविका का क्या होगा ? क्या साम्राज्य इतने कमधारियों का बोझ उठा सकेगा ? और अंत में विभिन्न राज्यों के राजदूतों की सुरक्षा का प्रबंध अयोध्या की सेना को करना पड़ेगा । फिर वे स्वतंत्र राज्य हैं दशरथ का शासन उन पर नहीं है । दशरथ उन राज्यों की पुछताछ प्रश्न जिज्ञासा पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकत

उ ह क्या उत्तर देंगे सम्राट ?

कोई उत्तर उनके पास हा या न हो किंतु केकय के राजदूत के पास इतनी बड़ी निजी सेना दशरथ किसी स्थिति में नहीं रहने दे सकते

बल ही उ ह राजसभा में धापणा करनी पड़ेगी कि अयोध्या में स्थित प्रत्येक राजदूत को अपने अग रक्षकों तथा निजी सनाओं को वासल के सनापति के आजादीन मानना होगा । और बल ही उ ह केकय के राजदूत की निजी सेना को निश्चय कर अयोध्या की सेना के अधीन असैनिक पदा पर भेज देना होगा ।

इतना तो उ ह करना ही होगा—चाहे कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न ।

यह वे कर देंगे । किंतु उसके पश्चात् ?

अब स्थिति यह नहीं थी कि वे सोचें कि भडिँ को इट मारें या न मारें । आधी इट वे मार चुकें थे और शेष आधी उ ह मारनी ही होगी उससे पश्चात् भडिँया चाहे झपट ही पड़े अब कवेयी स यह छिपा भी

नहीं रह सकता कि उन्होंने आघात कर दिया है। ककेयी प्रत्याघात भी अवश्य करेगी।

वात अब केवल ककेयी की नहीं है। देश के भीतर का विरोध और बाहरी आक्रमणों की संभावनाएँ वह बबडर उठेगा कि मत्ता दशरथ के हाथों में नहीं रह पाएगी। यदि बाहर से कोई न भी आया और विभिन्न दबावों में पिसकर, उन्हें अपने वचनानुसार सत्ता भरत को सौंपनी पड़ी तो पिछले मंत्रियों के इन सारे प्रयत्नों में घर्षों आघातों का क्या होगा। भरत कुल अठारह वर्षों का तम्रण है। वह स्वतंत्र रूप से राज नहीं कर सकता। राज युधाजित ही करेगा। दशरथ का भरत विराघ खुलकर सामने आ चुका है। ऐसी स्थिति में भरत के हाथ में सत्ता गयी तो दशरथ का स्थान क्या होगा—भूगर्भ कारागार में? गुप्त यंत्रणालय में? युधाजित के चरणों में? अथवा खड्ग की नोक पर?

ककेयी की ओर से किसी प्रकार की दया, सहानुभूति अथवा कोमलता की अपेक्षा वे नहीं कर सकते। ककेयी के साथ वे काफी लंबे समय तक रहे हैं। वे उसकी धातु पहचानते हैं। होने पर आता वह कठोर भी हो सकती है और क्रूर भी। ककेयी की माँ ने हठ के पीछे अपने पति के प्राणों तक की चिन्ता नहीं की थी जबकि वह पति सप्रेम भी करती थी। दशरथ जानते हैं ककेयी को उनसे रचनात्र भी प्रेम नहीं है—फिर वह दया क्या करेगी?

तो?

दशरथ स्वयं को ककेयी की दया पर छोड़ दें?

नहीं।

ता?

दशरथ का ध्यान राम की ओर चला गया—शबर युद्ध के पश्चात् भी दशरथ को राम ने ही सहारा दिया था। तब भी दशरथ ने साचा था—कितना बड़ा धेटा है उनका और कितना समर्थ। और अब तो राम अपनी सेवा अपने शौर्य और अपने चरित्र की उदात्तता के कारण सारे आर्यावर्त में श्रद्धेय हो चुका है। दशरथ का ध्यान इस ओर पहले क्या नहीं गया? उन्होंने सदा ही राम और राम की माँ की अपेक्षा की है। कभी

समय से उन्हें उनका देय नहीं दिया।

यदि राम को युवराज घोषित कर सत्ता उम सौंप दी जाए तो किस आपत्ति होगी ? राम सम्राट की ज्येष्ठ रानी का पुत्र है। भाइयाँ म सबसे बड़ा है। योग्य, शक्तिशाली और वीर है, सबम बटकर नोकप्रिय है। प्रजा मन से उनका स्वागत करेगी। कोई यह नहीं कहगा कि दशरथ न धवरावर राज छोड़ दिया कोई नहीं कह सकेगा कि दशरथ, कैबयी जयवा युधाजित से पराजित हुए। प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि दशरथ न उचित समय पर उपयुक्त पात्र को सत्ता सौंप दी। राम के हाथ में सत्ता पूरी तरह सुरक्षित रहेगी—युधाजित अपनी तथा अपन मित्रों की मपूर्ण बबर सनाए लेकर भी अयोध्या पर चढ़ दौड़े तो राम तनिक भी विचलित नहीं होगा।

धवराहट और जल्दी में उठाए गए इन सारे बबडरा को राम भैल लेगा। राम साम्राज्य को सभाल सगा, और राम से दशरथ को कोई भय नहीं है। दशरथ की आँखें चमक उठी। दशरथ का यह पहन क्यों नहीं सूझा ? चारों भाइयों में से दशरथ यदि किसी को अपनी रक्षा का दायित्व सौंपकर निश्चित हो सकते हैं, तो यह केवल राम है। अपनी तीनों पटरानियों में से दशरथ किसी की निरीहता अथवा प्रेम पर विश्वास कर सकते हैं तो वह केवल कौसल्या है।

दशरथ को तत्काल राम का युवराज्याभिषेक कर देना चाहिए।

और यह भी बसा सुखद संयोग है कि राम बल वापस अयोध्या लौट रहा है। बल ही राजपरिषद में राम के अभिषेक का निणय हो जाना चाहिए, और यथाशीघ्र अभिषेक भी। किसी का तनिक-भी भी सूचना मिल गयी तो विघ्न उठ खड़े होंगे। बनेयी अपन मभयका की सहायता से इस अभिषेक को रोकने का प्रयत्न करेगी। संभव है राम की हत्या का प्रयत्न हो। संभव है स्वयं सम्राट के प्राण लन का पडयत्र हो—राज्याधिकार के लिए क्या नहीं होता।

दशरथ का शरीर एक बार फिर ठंडे पसीने से नहा गया। मृत्यु जैसे उनके सामने खड़ी उनकी आँखों में देख रही थी—बस हाथ बढ़ाने की बात है। यदि उन्होंने राम की बाह पकड़ ली तो राम अपने खडग की नोक मृत्यु

के बदा म हल देना

किंतु केकय नरेश का दिया गया दशरथ का वचन ?

रघुवश म जम लेकर कोई अपना वचन नहीं तोड़ता। ता क्या वग की प्रसिद्धि बनाए रखन के लिए दशरथ अपने बठ म मृत्यु का फदा डान लें ?

जीवन बड़ा है या वचन ?

वचन की रक्षा कर मर जाना अच्छा है या जीवन की रक्षा के लिए वचन को तोड़ देना ?

दशरथ के मन म वहीं कोई सदेह नहीं था कि उनके मन मे जीवन की अदम्य लालसा थी। व जीना चाहत थे। न सही सत्ता, किंतु जीवन की रक्षा ता हो

वचन की रक्षा धर्म है

पर ज्येष्ठ पुत्र का उसका देय देना भी ता धर्म है

पहल धर्म के पालन से उह मिलगी मृत्यु।

और दूसरे धर्म के साथ जुड़ा है उनका सुखद और सुरक्षित जीवन। उनकी रक्षा कोई कर सकता है तो केवल राम। राम उनकी रक्षा करने को तत्पर न हुआ तो फिर मृत्यु

दशरथ ने अपने मन को पहचाना। भरत के नाना को दिए गए वचन की पूर्ति की कोई इच्छा उसम नहीं थी। वहा तो जीवन की सुख-कल्पना थी। और जीवन का अर्थ था राम।

किंतु क्या राम अपना युवराज्याभिषेक स्वीकार कर लगा ?

राम जानता है कि दशरथ, भरत को युवराज बनाने के लिए वचनबद्ध हैं। फिर वह क्या चाहगा कि पिता अपना वचन तोड़कर अपयश लें दशरथ भली प्रकार जानत हैं कि राम की राज्य का रचमान भी मोह नहीं है। उसने आज तक केवल वम किया है—उसका फल कभी नहीं चाहा। उसने दायित्व निभाए हैं, अधिकार कभी नहीं माग।

उसे समझाना होगा कि उसका अभिषेक उसके पिता के प्राणा की रक्षा के लिए कितना आवश्यक है। उस तत्काल अभिषेक करवाना हागा—

जीवन, मात्र कम हो गया है। करन को इतना कुछ हो, ता सामाजिक दायित्व के प्रति सजग पति पत्नी अपने जीवन को पुलकित प्रेम की कहाना नहीं बना सकत।

फिर भी राम का भोजन कराए बिना स्वयं खा लेने की बात सीता आज तक स्वीकार नहीं कर सकी। वे जानती हैं राम पर राज्य की ओर से सौंप गये दायित्व तो है ही उनके अपने भीतर की आग भी उह निष्क्रिय बठने नहीं देती। जब घर से बाहर जात हैं वही न-वही शासन की कोई अनीति शिथिलता कत-यहीनता अथवा उपेक्षा देखकर या पिघल जाते हैं या जल उठत हैं। मग्राट नि प्रति दिन बढ और शिथिल होत जा रहे हैं। शासन क सूत्र उनके हाथो से फगलते जा रह हैं। बहुत सतक रहने पर भी उनम कोई-न-कोई प्रमाण होता ही रहता है। राम की अनुपस्थिति म पिछले निो यहा क्या कुछ नहीं हुआ। वमे भी वही-न वनी से किसी राजरुपुष के अमर्यादित अथवा अभीतिपूण व्यवहार की सूचना राम को मिलती ही रहती है, ओर फिर राम शात नहीं बठ सकत। दूड आत्म नियंत्रण के कारण उनम आवेश का उबार नहीं उठता, किन्तु हल्की-हल्की आच उह तपानी ही रहती है।

व्यस्त राम को बिलव हो जाता है और वे भोजन क समय घर नहीं पहुच पात तो स्वयं भी भूखी रहकर सीता उह शक्ति नहीं पहुचाती। वे जानती हैं वे स्वयं को अनावश्यक पीडा दे रहा हैं। सीता के लिए यह सस्कार की बात नहीं है। अपनी बौद्धिकता के बल पर यथ के सस्कारा को तोडने म वे पूणत सक्षम हैं। किन्तु जब पति बाहर से आता है और उमे मालूम होता है कि पत्नी उसक लिए भूखी बठी है तो उस कामकाजी जीवन म भी दोनो के बीच कुछ कोमल क्षण जाग उठत हैं। सबधों की इस कोमलता न इस कत यपूण जीवन म भी हरीतिमा बना रखी है। सीता उस हरीतिमा को कस छोड दें ?

वे कितना चाहनी है कि सामाजिक तथा प्रशासनिक कामो म राम का हाथ बटाए पर अभी तक राम का व्यक्तिगत देखभाल के साथ स्त्रियो तथा बच्चो के कल्याण मबधी कुछ हल्क कामा के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर पायी हैं। इस परिवार का ही नहीं सारे समाज का ढाचा ही कुछ ऐसा है

वि नारी वही शोभा की वस्तु है वही भोग की। वही वह उत्पन्न शोपित है, वही परजीवी। अमरबल होकर रह गई है नारी, जो अपने पति के माध्यम से समाज का रस खींचती है। समाज से उसका सीधा काँइ संबंध ही नहीं है। घर की व्यवस्था में तो फिर भी उसका स्थान है सामाजिक उत्पन्न में वह एकदम निष्प्रयोजन वस्तु है। निधन किमान की पत्नी उसके साथ सत पर जाकर उसका हाथ बटाती है, श्रमिक की पत्नी पति के साथ या स्वतंत्र रूप से श्रम करती है किन्तु धनी वर्ग की स्त्रियाँ मात्र जोकें हैं। चुम्बने के लिए उन्हें रखना चाहिए। उनकी सामाजिक उपयोगिता पूरी तरह शून्य है और उनकी आवश्यकताएँ आसमान की छू रही हैं। उन्हें भंडकील वस्त्र चाहिए, चमकील आभूषण चाहिए, प्रसाधन के लिए चन्दन-वस्तु की बछकड़े या उनके लिए अर्पण हैं, चर्बी चटान के लिए दुनिया भर का गरिष्ठ और स्वादिष्ट भोजन चाहिए।

इन निरुम्भी, मोटी बुद्धि वाली, निरपेक्ष वस्तुओं का देखकर सीता का खून जल उठता था। उनमें घड़ी-आप घड़ी बात कर सीता का दम पुनर्जन्म होता था। रानिया मन्नालिया सामंत-परिनिया, आवाय-पत्निया—सब ही पुराने पड़े विषय के बराबर-सी वस्तुएँ थी जिनकी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं थी।

पर सीता स्वयं भी मन्त्रिय होकर अभी तक कोई बहुत महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर पायी थी। इस प्रायः निष्क्रियता में सत्ता आश्रित रहती थी कि वहीं वे भी साधक परिश्रम के अभाव में उसी चमकीले बजाह का अंग बन जाएँ। पिछले चार वर्षों में किन्ती बार पति-पत्नी में इस विषय पर बहस-मुनी हुई थी। साधारण बातचीत हुई थी, तक हुए थे तनावतनी और भगड़े भी हुए थे। पर अंत में दोनों ने यही पाया था कि यह कुछ व्यवस्था नारी शून्य पुरुष समाज में काम करने की शक्ती अभ्यस्त है। चुकी थी कि नारी का अपने मध्य पाने ही, जस उसे भोग्य माननी थी। यह व्यवस्था नारी की उमका उत्ति माननीय स्थान में के लिए किंचित भी इच्छुक्त नहीं थी। नारी का पुरुष की बराबरी का स्थान दिवान के लिए लवा और चारभार मध्य अपक्षित था।

सीता के छोटे मोटे स्फुट प्रयत्न, कुछ-कुछ व्यवस्था के विरुद्ध साह की दीवार

पर हाथ के नाखूनो से लगाई गई खरोचें मात्र थी—जो दिखाई भी नहीं पड़ रही थी। वस्तुन व प्रतीक्षा भी कर रही थी और तैयारी भी। उनका शरीर घर और बाहर की नियमित मित्य-व्यवस्थाओं में लगा रहता था, किंतु मन भविष्य की कल्पनाएं करता रहता था—आने वाले समय के लिए योजनाएं बनाता रहता था। कहीं ऐसा न हो कि जब अवसर आए तो सीता को करने के लिए कोई काम ही न सूझे

व्यक्तिगत जीवन अपनी जगह है। उसका सुख सबको जाकाक्ष्य है। किंतु सामाजिक लक्ष्य रहित जीवन भी कोई जीवन है? मीता जब राम की जन-मामाया की मुविधाओं की व्यवस्था में अपने प्राणों को खपात देखती थी तो उनके मन में तपति और स्पर्धा की भावनाएं एक साथ ही अकुरित हो उठती थी। धन्य है राम जो बिना कोई राजनीतिक अधिकार पाए भी अपने कर्तव्य में लगे हुए थे, यदि कभी ऐसे ही वे चारों भाई होते। और स्पर्धा होती थी सीता को राम से—क्यों नहीं वे भी उही के समान अपना जीवन कम में खपा पाती?

इस स्पर्धा में सीता का एक ही सहयोगी है—शेखर लक्ष्मण। जितनी तडप है लक्ष्मण में स्वल्प साहसी साधारण कार्य के लिए। अनीति देखकर लक्ष्मण रुक नहीं सकता। और फिर अपने भैया राम का एक सचेत उनके लिए पर्याप्त है। जब तो वे सतरह वर्षों के हो गए हैं। चार वर्ष पूर्व जब वे राम के साथ सिद्धाश्रम गए थे तब मात्र एक किशोर ही तो थे। किंतु किसी कम में किसी जाखिम में लक्ष्मण पोछे नहीं रहे।

भरत और शत्रुघ्न भी नास्तिक प्रवृत्ति के हैं और अयाय देखकर विरोध उनके मन में भी जागता है किंतु उनमें राम और लक्ष्मण जसी जान और तडप नहीं है। वे दोनों ही आत्मवेदिन हैं। समाज की गतिविधियां और प्रवृत्तियों से उनका कोई विरोध मणक नहीं है। यही कारण है कि याय के प्रति पूर्णतः समर्पित होने पर भी उन्हें अपने पड़ोस में होता हुआ अयाय दिखाई नहीं पड़ता। उनकी अपनी दीवार की छाया में अमानवीय आचाराचरण पनपता है और उन्हें वह तब तक दिखाई नहीं पड़ता जब तक कोई अयाय यवित उसकी ओर इंगित न कर दे। उन दोनों का ममस्व स्वल स्वयं चरित्रवान बनने पर है परिवेश की गंदगी दूर करने की और उनका

ध्यान नहीं है। ऐसे लोग अनीति के समर्थक तो नहीं हात किंतु अनीति को उनसे कोई विरोध भय भी नहीं होता।

कदाचित् यही कारण था कि भरत और शत्रुघ्न का संबंध अयोध्या और अयोध्या के आम-साम हान वाली सामाजिक और राजनीतिक हवचलों से कम भरत के ननिहास से ही अधिक था। एक ही माता के पुत्र होने पर भी लक्ष्मण और शत्रुघ्न कितने भिन्न थे। मुमित्रा का सारा प्रशिक्षण शत्रुघ्न का भरत के प्रभाव से मुक्त कर लक्ष्मण जमा नहीं बना सका था।

परिचारिकाओं की हवचल से सीता को राम के आन का आभास मिला।

राम ने कदा म प्रवेश किया। उनके चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान थी किंतु मुस्कान की उस परत के नीचे छिपी कलाति सीता की दृष्टि में ओमन नहीं रह सकी।

प्रवास की यत्न कम थी कि फिर स्वयं को इतना पता चला।

राम की आँखों ने सीता की निरीक्षण गति की प्रणमा की 'तुममें कुछ भी छिपाना कठिन है सीता।'

अभी तक भूते हैं। वहीं भाजन भी नहीं किया होगा।

राम मुसकराए भर कुछ बात नहीं।

सीता ने परिचारिका को भोजन लाने का संकेत किया 'देखती हूँ, सारे कार्यों के लिए अयोध्या में केवल एक ही व्यक्ति सुलभ है।

राम संपत से मुसकराए 'ऐसा नहीं है प्रिय। भजने को तो मैं अन्य लोगों को भी भेज सकता हूँ किंतु अपने अनुभव से त्रमश जान गया हूँ कि सामान्य राजपुरुष जब शासकीय कार्य के लिए जाता है तो प्रजा जयवा शासन का भला कम करता है अपना भला ही अधिक करता है।

'कोई विरोध बात?'

बहुत नहीं। पर कुछ-कुछ ता होता ही रहना है। आज तो स्वयं सम्राट् क उठाए हुए ही अनेक बवडर थे। जैसे भी प्रजा के हित का ध्यान रख स्वयं राम का ही जाना उचित है। राम मुसकराए आशा है मरी प्रिया न तो आपत्ति करेगी न वादा देगी।

परिचारिकाएँ भोजन ल आयीं।

न आपत्ति न बाधा। सीता बोली किंतु आपका जिनभर व काय के पश्चात् भूखा तथा बन्नात घर लौटत देखकर मुझे कष्ट अवश्य होता है। यदि आपका कायस्थान पर भोजन तथा घाड़े आराम की व्यवस्था हो पानी तो अपने पति को सत्काम करने देय मुझ अमीम तृप्ति हाती।'

व्यवस्था तो हो सकती है पर भोजन के लिए राम लौटकर सीता के पास ही आना चाहता है। राम व बहर पर कौतुक का भाव था और सीता व साहाय्य के बिना विश्वास है वहाँ।

तो मुझे पक्का काय देने व स्थान पर अपन ही साथ गया कीजिए। मैं भी थक-हारकर मध्याह्नक भूखी लौटू तो साथवत्ता का मुझ पाऊ। मुझे तो हल्के और सक्षिप्त काय देकर बहना दिया जाता है जग में किसी योग्य ही नहीं। काय केवल राम के लिए है या बच जाए ता देकर सक्षमण के लिए।'

राम गंभीर हो गए ठीक कहती हो सीता। तुम्हें अपन योग्य काय अवश्य मिलना चाहिए अथवा तम्हारी समस्त ऊर्जा निष्क्रिय रहकर सड़ जाएगी। पर कठिनार्थ यह है कि इस समाज न मान लिपा है कि रत्नी घर से बाहर तभी कोई काय करेगी जब पुरुष मृत पशु अथवा अनुपस्थित हागा। प्रयत्न म हू कि श्रीघ्रातिशीघ्र तुम्हें तुम्हारा उचित स्थान द सकू।'

सत्सा राम चुप हो गए। उनकी दृष्टि सीता के चेहरे पर ठहरकर कुछ दूढ़ रही थी। उन्हें लग रहा था सीता अब पहले जसी स्वस्थ सतृलित नहीं रह गई थी। वे कुछ असहज था।

'क्या बात है सीते?'

समाज में मेरा जो स्थान और उपयोगिता है वह समझाने पिछल अनेक दिनो से कुन बढ़ाए भरे पास आ रही है।'

राम का समझने में देर नहीं लगी।

उन वचारियों पर दया ही करनी चाहिए सीता! उनका मानसिक क्षितिज इससे अधिक 'यापन' नहीं है "

किंतु '

किंतु क्या ?

अब माता कौमल्या न भी इंगित किया है। वे गोत्र में पौत्र सतान को उत्सुक हैं।'

राम सीता को देखत रह गए। वे सीता की पीड़ा समझ रह में। यह वान आज पहली बार नहीं उठी थी। चार वर्षों के दाम्पत्य जीवन में ऐसे प्रसंग अनक बार आए में। माता कौमल्या की पीठ के प्रति उत्सुकता भी व समझत थे—जिस समाज में मनुष्य पुत्र-पौत्र के जन्म से ही मौभाग्यशाली माना जाता है जहां व्यक्ति अपने कर्मों से अधिक महत्त्व अपनी पुत्र परंपरा का आग बलाने को देता है, वहां यदि माता कौमल्या पौत्र मुद्यन्धन का व्याकुल हो ता आश्चर्य की बात क्या है। आश्चर्य तो यह था कि अभी तक पिता की ओर से उन्हें ऐसा कोई संकेत नहीं मिला था और न ही उनके दूसरे विवाह की बात उठ आई गयी थी।

कनाचित् ये सारी बुद्ध-बढ़ाए, इतन अंतराल के पश्चात् भी, सतान न हाने का दोष सीता की अक्षमता की देती होंगी। जिनके विचार-मनोरम विवाह के एक वर्ष के भीतर सतान उत्पन्न न करना वध्या हात का प्रमाण-पत्र हा वे सीता का चार वर्षों के पश्चात् भी कुछ न महगी—इतनी अपना उनसे नहीं की जानी चाहिए। आशेष तो होंगे ही—सीता पर हा या राम पर हों। उनमें वचना समझ नहीं है। किन्तु यदि राम आशेषों से वचन के लिए ही काम करने लगे तो वे एक काम भी अपनी इच्छा से, स्वतन्त्र रूप में नहीं कर पाएंगे। आशेषों से वचने के प्रयत्न में वे समाज की सबसे पिछड़ी हुई मानसिकता के दास हो जाएंगे। नहीं। राम को अपने चित्तन के अनुसार, अपनी इच्छा में चलना हागा। किसी के कुछ कहने के कारण वाक्य अथवा प्रतिक्रिया में राम कोई निषेध नहीं लेंगे

सतान के जन्म से पहले उनके स्वागत के लिए माता पिता की परिस्थितिया अनुकूल होनी चाहिए। वे भौतिक सुविधाओं शारीरिक तत्परता तथा अनुकूल मानसिकता के साथ प्रस्तुत हा तो ही सतान के साथ वाय हा सकता है। सतान को जन्म देने के पश्चात् माता पिता को लगे कि उनके पास सतान के लिए समय नहीं है उनके पास अपनी अग्रगामीर चिन्ता या गृहस्वपूर्ण लक्ष्य हैं वच्चे उन्हें अपने माग की बाधा लगन लगे और वे उन पर महराते रहें तो यह सतान के साथ वाय नहीं होगा। उन्हें पूजित

दासियों को सौंपकर गतान के मन में प्रियया पदा करने और उचित व्यवहार न कर पाने पर दासियों के प्रति मन में कटुता पालन से क्या लाभ? धन के बल पर दास-दामियाँ निश्चय आचाय उपलब्ध करा दें भर स, सतान के प्रति माता पिता का दाविस्व पूरा नहीं हो जाता। गतान को माता पिता की भौतिक सुविधाओं के साथ, उनका समय, उनका शरीर उनका मन, उनकी आत्मा—प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता होती है।

राम की मानसिकता अभी सतान के लिए अनुकूल नहीं है। अयाध्या की स्थिति स्थिर नहीं है। इन दोनों मझाट की काय-नीति सदा अप्रत्याशितता की ओर प्रवृत्त रहती है। प्रतिदिन कुछ न-कुछ नया पटित होता रहता है जिससे कोई-न कोई बबडर उठना ही रहता है। जबुड़ीप का राजनीतिक भूगोल रोज मई राय-सीमाएँ बना बिगाड़ रहा है। ममथ जन मानवीय आदर्शों से पतित हो रहे हैं। अनेक पिछड़ी जातियाँ भूखी नगी रुण, अमहाय और अवग पड़ी याननाएँ गह रही हैं। बहुत प्रयत्न करने पर भी ऋषि उन सब अपना ज्ञान जागरूकता और मस्कार नहीं पहुँचा पा रहे हैं और राशगा के हाथों प्रतिदिन बय-यगुओं के समान मारे जा रहे हैं।

राम ने विवाह किया है यद्यपि विश्वामित्र ने उन्हें रघुवशियों के पत्नी मोह के अतिरेक के विषय में स्पष्ट चेतावनी दी थी। पर पत्नी सदा माग की बाधा ही नहीं होती। वह सह-यात्री है—माग की सहायिका भी हो सकती है। सोच-समझकर ही सह-यात्री चुना जाए तो सहायक होता है बिना सोच-समझे चुना जाए तो स्थायी सिर न। सीता से उन्हें विघ्न की कोई आशंका नहीं है।

तो क्या गतान सदा विघ्न-स्वरूप ही होती है ?

राम का मन कहता है सतान माग की बाधा नहीं है किंतु माता पिता की पूर्व-पस्तता तथा अय-अव्य सिद्धता अवश्य सतान के माग की बाधा हो जाती है। मित्राश्रम से मिथिला जात हुए माग में पूछा गया ऋषि विश्वामित्र का पण बहुधा उनमें सम्मुख आ खड़ा होता है ऐसा क्यों है राम ! कि अपना घर फूँके बिना यकिन परमाय की राह पर चले ही नहीं सकते ?

स्वाथपरक सामाजिक व्यवस्था की इस द्विधात्मकता को राम ने सदा मन में रखा है। इसमें परिवार तथा समाज का स्वाथ प्रायः विरोधी है एक के लिए दूसरे का त्याग करना पड़ता है। राम नहीं चाहते कि उनके द्वारा बहुत सामाजिक दायित्व के पालन के कारण उनके सगे होने का दंड उनकी सतान को मिले। वह नहीं चाहते कि उनकी सतान बड़ी होकर यह कहे कि उनका दुर्भाग्य यह है कि उनका पिता सामाजिक जीवन में ईमानदारी से मग्न है या यह कि अपने जन-आयक पिता की ओर से सदा उन्हें उपेक्षा ही मिली है या यह कि उनके पिता के पास सब के लिए समय है, केवल अपनी पत्नी और बच्चा के लिए नहीं है।

इसका क्या अर्थ—क्या राम समझते हैं कि जब जीवन में अर्थ कोई काम नहीं रहेगा जब वे सब आर से अवकाश प्राप्त कर लेंगे तो ही सतान की बात सोचेंगे? क्या ऐसा समय भी आएगा? जीवन में कुछ न-कुछ तो लगा ही रहता है। जब जीवन में इतना कुछ—परस्पर समान और विरोधी साध-साध चलता रहता है, तो सतान भी उसी बहिष्कृत जीवन का एक अंग बनकर क्या नहीं चल सकती! नहीं राम जीवन के महत्त्वपूर्ण कामों से अवकाश प्राप्त कर, बद्धावस्था में सतान को जन्म देने की बात नहीं सोचते। सतान के जन्म का भी उचित समय होता है ताकि व्यक्ति ठीक समय से उनका पालन-पोषण कर उन्हें उनके अपने पैरो पर खड़ा कर दे। हाँ राम कुछ अधिक मानसिक अनुकूलता तथा परिस्थितियों की स्थिरता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। विवाह के पश्चात् पालन-साध के सतान न होता कोई असमान नहीं गिर पड़ेगा। यदि वे विवाह ही स्वीकार करते तो? कई लोग पतीम चालीम वय के वय में विवाह करते हैं। वे तो अभी कुल जननीय वय के हैं। वे सतान के लिए दो बार वय और प्रतीक्षा कर सकते हैं।

और फिर, सतान को इतना अधिक महत्त्व देने का भी क्या अर्थ कि जीवन के प्रत्येक घटक में सतान अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाए। मनुष्य का जीवन स्वयं कम करने के लिए है अथवा वय-परंपरा की आग बढान का माध्यम मात्र? राम का जीवन कम के लिए है। शब्दों में भी अच्छे लगते हैं—व्यक्तित्व उनके मन में भी है किन्तु अपने उत्तराधिकारी की

प्राप्ति ही उनके जीवन का एकमात्र सध्य नहीं है। उन्होंने अपने लिए कोई संपत्ति अर्जित नहीं की है, जिसके लिए उन्हें उत्तराधिकारी की निपट आवश्यकता हो। संपत्ति व्यक्ति की नहीं समाज की होती है। साम्राज्य स्थापित करने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है। अयोध्या का राज्य उन्हें ही मिलना—यह भी निश्चित नहीं है। अधिक मभावना नहीं है कि राज्य उन्हें नहीं मिलना। पिंडदान इत्यादि के लिए पुत्र की कामना उन्हें नहीं है। स्वर्ग जिसने देखा है, और पुत्र म का ही क्या प्रमाण है। यदि स्वर्ग है और वह व्यक्ति की मिसता भी है तो वह उन्हें अपने कर्मों से मिलेगा इनके लिए उन्हें सतान की आवश्यकता नहीं है।

मतान यदि उन्हें चाहिए तो वह अपने वात्सल्य की तृप्ति के लिए। वे प्रतीक्षा कर सकते हैं।

किंतु सीता सीता की क्या इच्छा है? वही वे अपने विचार सीता की इच्छा के विरुद्ध तो उन पर आरोपित नहीं कर रहे

हाम धो लें आयपुत्र !'

सीता समल चुकी थी। वे शांत और सुखस्थित लग रही थी।

प्रिये! कदाचित् तुम्हें मानसिक क्लेश पहुंचे किंतु राम का स्वर गभीर था समस्या का समाधान उसके साक्षात्कार से होता है'

आप निश्चित रहें।' सीता मुसकराई अब मैं दुबलता नहीं दिखाऊंगी।

ऐसा तो नहीं सीते! कि मेरी चिंतन-पद्धति के कारण तुम्हें अपना अप्राकृतिक दमन करना पड़ रहा हो? कुल-वृद्धाओं को छोड़ो। किंतु तुम्हारी इच्छा

‘आपको आज तक मेरी इच्छा का ही पता नहीं है क्या?’ सीता स्थिर ही नहीं दब रही, ‘ठीक है मुझे अभी अयोध्या में अपने मनोनुकूल काय नहीं मिला है किंतु मैं इतनी भी खाली नहीं हू कि शिशु-पालन के बिना दिन न बटता हो।

तुम्हारे जीवन में सतान का कोई महत्त्व नहीं है? राम मुसकरा रहे थे।

‘है। पर इतना नहीं कि अपने जीवन का सारा ताना-बाना उसी का केन्द्र में रखकर घुनू। मतान की ऐसी भी क्या जल्दी कि फिर उसके पालन के लिए किसी सम्राट सीरध्वज का भेत ढूँढ़ना पड़े। मैं अभी प्रतीक्षा कर सकती हूँ।

राम मौन हो गए। घात विचारा तब ही नहीं रही थी, अचानक ही सीता की छिपी वेदना बोल उठी थी। राम भीग उठे किंतु उन्हें भावुकता में बचना हागा। उन्होंने स्वयं का मभाला

‘प्रतीक्षा चाहे कितनी ही लंबी हो?’

“हां।”

‘फिर तो कुल-बढ़ाआ के आखेप-उपालभ भी सुनने ही पड़ेंगे।’

‘सुन नहीं रही क्या?’

राम मुमकरा पड़े।

परिवारिकाने बाधा दी, ‘आप की अनुमति हो तो राजगुरु को सूचित करूँ कि आप उनसे मित्रन को प्रमूत हैं। वे आपके भोजन कर लेन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।’

सीता सावधान हो गयीं।

राम वं गमीर स्वर में प्रताडना का भाव था, ‘गुरुदेव प्रतीक्षा क्या कर रहे हैं मुमुक्षु? उन्हें प्रतीक्षा करान का अधिकार किसी को नहीं है।’

‘समा करें कुमार।’ मुमुक्षु ने मिर सूना लिया ‘यह उनकी अपनी इच्छा थी।’

राम ने द्वार तक जाकर अगवांनी की। गुरु को आसन पर बैठा उन्होंने हाथ जाड़ दिए, ‘समा करें गुरुदेव। कह नहीं सकता किमते प्रमाद के कारण आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी।’

गुरु मुमकराए, ‘उद्दिग्ध नहीं राम। जो कुछ हुआ मेरी इच्छा से हुआ है।’

‘पर क्यों? राम सहज नहीं ही पा रहे थे।’

‘राम।’ वसिष्ठ पूणत दांत से अयोध्या में बौन नहीं जानता कि राम जन-जाय में कितना व्यस्त है। पुत्र! मैं अयोध्या से बाहर नहीं हूँ।

यह जानकर कि तुम प्रात के गए अब लौटे हा, और उस समय दापहर का भोजन कर रह हो जब अय लोग सध्या के भोजन की तैयारी कर रहे हैं—बाधा देकर मैं पाप का भागी कभी बनता। पर इस विषय को अधिक न खींचो। मैं शुभ और महत्त्वपूर्ण सूचना लाया हूँ।

“कैसी सूचना है गुरवर ? सीता ने पूछा।

पुत्री ! आज राज-मरिच ने एवमत से निणय किया है कि बल प्रात राम का युवराज्याभिषेक किया जाएगा ।’

सीता का स्वर हर्षातिरेक से जस भर्रा उठा बल प्रात ?

हा पुत्री ! गुर घोल सामाचार अत्यन्त गोपनीय है। अभी तक राजमहल में यह सूचना प्रसारित नहीं की गयी। प्रसन्न यही है कि यथा सम्भव कम से कम लोगो की ही मालूम ही। समाचार तम्हारे महल से बाहर न जाए तो अच्छा है। तुम लोग प्रस्तुत रहो। पुत्र ! अभी जाकर सम्राट से सभा भवन में भेंट करो। मैं प्रवध करने जा रहा हूँ। रात्रि से पूर्व फिर लौटूंगा। कुछ बमकाड़ का विधान करना होगा

गुरु उठ खड़े हुए।

एक और आकस्मिक घटना—राम जैसे भाव शून्य हा गए थे। उ होने यात्रिक ढंग से गुरु को प्रणाम कर उह विदा किया।

सीता ने अपन उत्सास से बाहर निकल राम को देखा—राम न प्रसन्न थे न उदास। बगभीर थे—चित्त में मग्न प्रश्नो से जूझते हुए भीतर की उथल पुथल मलीन।

क्या हुआ राम ?

कुछ विशेष तो नहीं।’

जाय प्रसन्न नहीं है ?

प्रसन्नता स्पष्टता से आती है। मैं अपने मन में स्पष्ट नहीं हूँ।

क्या ?’

एक ओर विपरीत कतब्यो ने द्वंद्व के ज्वार उठा दिए हैं और दूसरी ओर मुझे यह युवराज्याभिषेक अत्यन्त असहज लग रहा है।’

रघुकुल में ज्येष्ठ पुत्र का युवराज्याभिषेक असहज होता है क्या ?’ सीता बोली।

“नहीं।” राम का स्वर मन की गुत्थियों से भारी था। ‘कितु गुरु का अकस्मात् आकर ऐसा महत्त्वपूर्ण नियम गोपनीयता से सुनाना और उठकर तुरत चल जाना। इतना ही नहीं आज राज-परिषद् का नियम करना और बन् प्रातः अभिषेक हो जाना। इस भगदड़ का कारण ? ऐसे समारोह महीनों की तैयारी के पश्चात् होते हैं। सारे राज्य में घोषणाएँ होती हैं। ममम्न मित्र राजाओं मन्त्रियों ऋषियों आचार्यों, सामंती श्रेष्ठियों आदि की निमन्त्रित किया जाता है। पर कासल के युवराज का अभिषेक गुप्त रीति से होगा—सत्र की दृष्टि से बचाकर ? रात रात में बल प्रातः तक बितने लोगों का निमन्त्रण जा सकेगा ? कितने लोग अयोध्या पञ्च मन्त्र ? मोक्ष तो अब मन्त्र तो दूर—सम्राट सीरध्वज तक की निमन्त्रण नहीं भेजा गया। स्वयं भरत शत्रुघ्न भी अयोध्या में उपस्थित नहीं।

आप ठीक कह रहे हैं। सीता भी गम्भीर हो उठी, ‘आप सम्राट की मिन लें। मभव है व कोई उपयुक्त उत्तर दे पाए।’

‘माँ को सूचना दे दो। मैं पिताजी से मिलकर आता हूँ।’

रथ चला तो राम ने अपने हृदय को टटोला।

गुरु के आने के बाद से उनका मन विभिन्न प्रश्नों और गुत्थियों में उलझा हुआ था—पर वान उन गुत्थियों तक ही सीमित नहीं थी। वह तो आकस्मिक प्रतिक्रिया मात्र थी—भ्रम में छलक आए, पानी के घूट-भी। गोचन की तो और भी बहुत कुछ था।

उन्हें राज्य दिया जा रहा था। राज्य शासन-द्वय प्रहण कर प्रजा का पालन नहीं करेगा तो और कौन करेगा। यह उनका कर्तव्य था। राज्य का अधिकार भोग के लिए नहीं कर्तव्य-पालन के लिए ही था। राज्यभार छोड़ना कर्तव्य से मुह्र मानता था। आज यह दायित्व उनके कंधों पर डाला जा रहा है तो राम उसका तिरस्कार नहीं कर सकते।

किन्तु राम जानते हैं कि सम्राट की विवाहा का अपना इतिहास है। कोई कि विवाह की शक्त थी कि उनका पुत्र ही भोगन का युवराज होगा। आरम्भ में किसी अपनी यात पर बहुत दृढ़ रही थी किन्तु धीरे-धीरे वह उपकुल की मानव-श्री पर पराधीन हो गई थी, और अपना

विरोध भूलती गयी थी। राम के प्रति उसका विरोध समाप्त हो गया था। कवच-नरेश द्वारा सम्राट से लिया गया वचन भी वह भूल गयी थी। अमर, राम के मामने कवची का चरित्र उदघाटित हुआ था। अद्भुत थी कवची! उसके हृदय में विष तथा अमृत के सरोवर एक साथ विद्यमान थे। प्रश्न केवल यह था कि किस मदभ में उसके हृदय का कौन सा सरोवर उद्बलित होता है। सदा होती तो वह पूरा अमृत होती तब कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि रुष्ट होने पर कवची तनिक-भी कठोर भी हो सकती। किंतु जब उसके मन का विष-सरोवर उद्बलित होता, तो वह दंतनी क्रूर हो जाती थी कि उसमें कोमलता का एक कण दूना भी अमभव हो जाता।

कवच-नरेश ने सम्राट से वचन लिया था कि उनका नाती कोसल का युवराज होगा। कवची का पुत्र भरत था राम नहीं। यह अम बात थी कि कवची ने सायास उस वचन को भुला दिया था। आरम्भिक बटुता के बीत जाने पर कवची ने एक बार जो राम को पुत्र का स्नेह दिया तो वह भरत और राम में भेद करना भूल गयी। उसने कई बार अपने मुख से राम को अयोध्या का भावी युवराज कहकर पुकारा था।

किंतु सम्राट द्वारा वरती जा रही यह गोपनीयता राम के मन में मन्द उत्पन्न कर रही थी। भरत अयोध्या में नहीं है। उसकी अनुपस्थिति में इस त्वरित ढंग से राम का युवराज्याभिषेक क्या अर्थ रखता है? सम्राट ने फिर अपनी धवराहट में बिना समझे-बूझे कोई विकट कृत्य तो नहीं कर डाला?

राम ने राज-सभा में सम्राट के निजी कक्ष में जाकर पिता के चरणों में प्रणाम किया।

सम्राट ने गदगद स्वर में आशीर्वाद दिया 'गन्तुओं पर विजय पाओ, पुत्र!'

सम्राट अत्यंत चिंतित दीख पड़ते थे—अस्त-व्यस्त और परेशान कदाचित् थोड़े-से भयभीत भी। सम्राट के निजी सेवकों को छोड़ अन्य कोई भी व्यक्ति वहां उपस्थित नहीं था। सभा विसर्जित हो चुकी थी। सारे मंत्री और सामंत जा चुके थे। अकेले सम्राट किसी चिंता में डूबे खोए

खाए-से बठे थे। राम को सम्राट की आकृति पर उस चित्तिन प्रहरी के-ने भाव दिख जो अपने मरक्षण में रखी गयी किसी वस्तु की सुरक्षा के लिए बहुत चिंतित हो और चाहता हो कि कुछ अथवा हो जान से पहले किसी प्रकार वह उस वस्तु की उचित व्यवस्था कर दे

‘सम्राट चिंतित है।’ राम ने बहुत कोमल स्वर में बात आरंभ की।

‘सम्राट नहीं एक पिता चिंतित है, पुत्र।’ दशरथ बोले, ‘आज मैंने राज-नरिपद में तुम्हारे युवराज्याभिषेक का प्रस्ताव रखा था। सभा ने एक-मत से उमका समयन किया है। मैं चाहता हू कि यह अभिषेक कल प्रातः ही हो जाए। काय जितना शीघ्र हो जाए उतना ही अच्छा।’

राम ने अपनी दृष्टि पिता की आंखों पर टांग दी पिताजी। इस अपूर्व शीघ्रता का कारण ? जिस ढंग से मेरा अभिषेक हो रहा है उसमें कुछ अनुचित होने की गंध है जिस घंके में न हुआ तो फिर यह रह ही जाएगा।’

‘मैं जानता था। इसीलिए तुम्हें बुलवाया था। दशरथ का स्वर वातर था, प्रश्न मत करो राम। इस समय कुछ मत सोचा, कुछ मत पूछो। जी कह रहा हूँ करा। पुत्र। मनुष्य की बुद्धि बहुत चंचल होती है, और परिस्थितियाँ बलवान। इससे पहले कि मेरी चित्त-वृत्ति बदल जाए, अथवा मैं परिस्थितियों के सम्मुख अवश हो जाऊँ, और यह अवसर हाथ से निकल जाए तुम अपना युवराज्याभिषेक करवा ला।

पिताजी।’

‘शका मत करो राम। मैं इस समय उत्तेजना और चिंता से विक्षिप्त हो रहा हूँ। दिन रात दुःस्वप्नी से घिरा हुआ हूँ। अवकाश नहीं है। गुरु जैसा कह सीता-सहित वैसे ही व्रत-यानन करो। जाओ।

सम्राट की इस मन स्थिति में उनसे सम्मुख खना या उनमें प्रश्न करना सम्भव नहीं था।

राम लौट पड़े।

पिता की आज्ञा थी कि राम का युवराज्याभिषेक क्वाचित् न हो पाए उठ विघ्न निखाई पड़ रहे थे। क्यों आज्ञा थी पिता की ? उन्हें कौन-सी आघाए दिखाने पड़ रही थीं ? दुःस्वप्न। पिता ने कुछ दुःस्वप्नों

की चर्चा की थी—कौन से दुस्वप्न उह सता रहे थे ? निश्चित रूप से पिछले तीन सप्ताहों में सम्राट ने जो कुछ किया था वह उन दुस्वप्नों का ही परिणाम था ।

पिता ने दुस्वप्न और राम के द्वन्द्व ! पिता के सम्मुख प्रश्न यह था कि राम का युवराज्याभिषेक हो जाएगा या नहीं—कहीं अभिषेक का यह अवसर छिन न जाए । किंतु राम के सम्मुख प्रश्न था—वे अभिषेक स्वीकार करें या नहीं ? विश्वामित्र की मूर्ति प्रश्न चिह्न बनकर बार बार उनके सम्मुख आ खड़ी होती थी 'नहीं आओगे राम ? तुम रघुवशी हाकर अपना वचन भंग करोगे ? क्या है राम तुम्हारे जीवन का लक्ष्य ? सोचा ! तुम्हारा जीवन मुख भोग के लिए नहीं है । उसके लिए अन्य लोग हैं । तुम भिन्न हो । तुम साधक हो राम ! राम ! तुम शासन भार नहीं लोगे तो भरत उस स्वीकार कर लेगा, लक्ष्मण कर लेगा । पर तुम वन नहीं गए तो कोई नहीं जाएगा—न भरत न लक्ष्मण न शत्रुघ्न ।

पिता एक बात कहता है, विश्वामित्र दूसरी । इसी ऊहापाह के मध्य किसी समय स्वयं राम के अपने मन का भय बोलने लगा—'तिहासन स्वीकार कर लिया एक बार सम्राट बनकर बैठ गया तो मेरी मानवीय दुबलताएं नहीं जाग उठगी क्या ? सुविधापूर्ण विलासी जीवन में लिप्त हो बहाना की आत्मा स्वयं को प्रवर्चित नहीं करेगा ? मोह-त्याग बड़ा कठिन होता है । जब तक मोह का रोग न लगे तभी तक ठीक यदि मोह-त्याग में मैं सफल हो भी गया तो राज्य के विभिन्न उत्तरदायित्वों से मुक्त कर कौन मुझे उन महन वना में जाने देगा ? याय और समता का मानवता और उच्च चिंतन को, ज्ञान और विद्या को एक रक्षण की प्रतीक्षा है और उम्र बढ़ने का नायित्व समालोचने का वचन राम ने विश्वामित्र का दिया था । सम्राट बन अयोध्या में बैठकर सेना की सहायता से यह काय नहीं हो सकता । बैतनभोगी सेनाओं की सहायता से मानव-जाति का भाग्य नहीं बदला जा सकता । वह तो जन उत्प्रेरण से ही संभव होगा । अभिषेक हो जाने से वन जाने का अवसर कभी नहीं आएगा ।

यह कैसे संभव होगा ?

पिता की इच्छा और ऋषि को दिया गया राम का वचन
अयोध्या के सिंहासन का दायित्व और वन के रक्षक का कर्तव्य
दो कर्तव्य और दो दिनाएँ
राम की दुविधा का कोई अंत नहीं।

राम को देखते ही सीता उठकर उनकी ओर आयी।

‘मित्र आए?’

‘हां प्रिय!’

‘किसलिए बुलाया था?’

‘यह आदेश देने के लिए कि वन अभियेन करवा लूँ। राम का
स्वयं उल्लासपूर्ण था।

‘आपने उनका सामने प्रश्न रखा?’

‘वे कुछ भी सुनने की मन स्थिति में नहीं थे।’

राम की दृष्टि सीता के चेहरे पर टिक गयी। सीता की वाणी और
आवृत्ति से ‘काशी का सारा कुहरा उड़ गया था। उनका चेहरा आवृत्त
वाणी को पोंछ दिए जाने के पश्चात् अधिक निखर आनंद वाले दण के
समान चमक रहा था। इस उल्लास के सामने क्या कोई मदहूँ टिक सकता
था। क्या राम उनके सामने अपने मन का द्वंद्व रख सकते थे। अपने
दुस्वप्ना में दूरे संग्राह्य प्रश्न सुनने की मन स्थिति में नहीं थे तो क्या पति
के सुवराज्याभियेन के उल्लास में मग्न सीता राम के द्वंद्व या विश्वासिप
के आह्वान की सुनने की मन स्थिति में थी? ऐसी बात सुनते ही उनका
उल्लास बिखर नहीं जाएगा? राम इसका पूरा बम हा।

सीता से ही नहीं कह सकने, तो राम अपने मन का द्वंद्व किसमें
करें?

सीता का ध्यान न राम की भावपूर्ण आवृत्ति की ओर था, न उनके
मस्तिष्क में विपरीत दिशाओं में सहन करने परम्परटकरात हुए सम्भावनाओं
की ओर। वे अपने उल्लास की सट्टर में सहती हुई बोली ‘मैं माँ को
समाचार दिया। प्रमत्तता के कारण उनकी अवस्थिति हुई। उनके विषय में
आपको क्या बताऊँ। पहले तो गरी-गरी देखती रहूँ। फिर

मुझे वध से लगा लिया। बीच-बीचकर प्यार करती रही और जतन मेरे कंधे पर सिर रखकर रो पड़ी। वाली सारा जीवन मैंने इसी अवसर की प्रतीक्षा की है बहू। जानती थी सम्राट की ज्येष्ठ पत्नी होने के नाते मैं साम्राज्ञी हूँ, मेरा पुत्र सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र है। राम योग्य वीर-कृतव्य परायण तथा लोकप्रिय है। फिर भी आज तक स्वयं मुझे कभी यह विश्वास नहीं हुआ कि किसी दिन मेरा राम सचमुच युवराज बनेगा। यदि मैं बताऊँ कि इस राज-प्रासाद में किस किस प्रकार मेरा अपमान और उपेक्षा हुई है, तो कोई मेरा विश्वास नहीं करेगा। किंतु आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ। मेरा राम युवराज होगा। मेरे सारे दुःख दूर हो जाएंगे। मेरी बहू इस कुल में बसी उपेक्षित नहीं रहेगी जैसी मैं रही। मेरे पाते बसे निरान्त नहीं होंगे जसा अपने शेष-वध में मेरा राम हुआ। मैं कैसे बताऊँ राम! कि कितनी प्रसन्न थी माँ। उन्होंने तुरंत माता सुमित्रा और देवर लक्ष्मण को ममाचार भिजवाया। व सब लोग अत्यंत प्रसन्न थे। माँ भगवान से निरंतर प्रार्थना कर रही हैं कि वे उनके पुत्र का युवराज्याभिषेक निर्विघ्न करवा दें ताकि इस राज-प्रासाद में युधाजित का आतंक समाप्त हो। माँ रात भर निराहार साधना करेंगी। उन्होंने मुझसे भी रात तक उपवास करने का कहा है। उनके मन में अब भी अनेक आशकाएँ हैं।

सीता अपनी बात कह चुकी। राम तब भी कुछ नहीं बोले।

क्या बात है आप अतिरिक्त रूप से मौन है?

मुझे लगता है सीता।" राम गद-स्वर में बोले इस कुटुंब में अनेक सदेह-शकाएँ आशकाएँ विरोध द्वन्द्व ईर्ष्याएँ स्वाध द्वेष और जाने क्या-क्या विषम-जीव-जंतुओं के समान मौन सो रहे थे। आज मेरे युवराज्याभिषेक की चर्चा से व मारे जीव-जंतु जाग उठे हैं। वे परस्पर लड़ेंगे। इस राज-प्रासाद में बहुत कुछ विपत्ति हो जाएगा। इधर माँ के मन में आशकाएँ हैं उधर पिताजी के मन में। और मैं कैसे कह दूँ सीते! कि मेरे मन में कोई आशका नहीं है।'

आप

हा प्रिये! आशकाएँ ही नहीं, द्वन्द्व भी

द्वार पर परिचारिका प्रकट हुई, 'पूज्य मुमत्र राजकुमार के दशनाथ उपस्थित हैं।'।

राम चौंक। मुमत्र। मुमत्र के आने का अर्थ है—सम्राट् का अमाधारण बुलावा। पर राम अभी तो सम्राट् से मिलकर आए हैं।

सीता का चेहरा भी कातिहीन हो उठा। मुमत्र क्या आए? क्या कहलवाया है सम्राट न ?

तात मुमत्र।

'हा, राम। मुमत्रने अभिवादन किया 'सम्राट ने मुझे आदेश दिया है कि मैं आपको यथाशीघ्र अपने गमीप ले चलू। मैं रथ लेकर आया हूँ।'।

राम ने एक अक्षय्य दृष्टि सीता पर डाली।

सीता स्तब्ध हो गई थी।

सम्राट न राम को अपने महल में बुलाया था।

मुमत्र द्वार पर ही रुक गए, और राम ने भीतर जाकर पिता को प्रणाम किया। इस बार दशरथ उन्हें उतते हारे हुए नहीं लग। थोड़ी देर पूर्व मभा भवन में दखे गए, और अब उनका सम्मुख बैठे सम्राट ने पयाण अंतर था किंतु पूरी तरह स्वस्थ वे अब भी नहीं लग रहे थे।

दशरथ ने राम को अपने समीप रगे गए मध पर बैठन का मन्त्र दिया।

'तुम्हें आश्चर्य होगा, राम। कि मैंने तुम्हें इतनी जल्दी क्यों पुन बुला लिया। आश्चर्य की बात तो है किंतु इस समय मैं आपसे नहीं हूँ। मैं जिन्ना भी प्रयत्न करूँ, अपने मन की उपलब्ध तुम्हें नहीं दिला सकता। अपने जीवन में दुर्बलताओं के हाथों बंधकर, मैंने अनन्त अस्वस्थता का अनुभव किया है। पर अब मैं नहीं चाहता कि किसी भी कारण से, तुम्हारे ध्यान पर किसी और का मुकराव पड़े। बस तुम्हारा पुनर्जागरण ही मेरा आकांक्षित है। मैंने थोड़ी देर पूर्व तुम्हें प्रश्न पूछा था कि क्या आप मृत्यु का अनुभव करते हैं? पर मेरी बात मानो। कुछ क्षणों के लिए अपनी माता के बड़े अनुसार, आज मैं धार्मिक

आचरण तो करो ही, किंतु राम ! साथ ही आज रात अपनी रक्षा व प्रति असावधान मत रहना । मैं चाहता हूँ तुम्हारे सुहृद, तुम्हारे शुभाकांक्षी तुम्हारे प्रिय लोग, आज रात जागकर तुम्हारी रक्षा करें या तुम्हें घेरकर साए ।’

राम ने विस्मय से पिता को देखा ।

आप इतने कातर क्यों हैं पिताजी ! वे स्थिर वाणी में बोले यदि आप किसी निश्चित सक्क के विषय में जानते हैं, तो स्पष्ट बताएं । काल्पनिक आशंकाओं से पीड़ित न हों । इस आत्मश्लाघा में मान आपका राम किसी भी भयंकर से भयंकर शत्रु के विरुद्ध अपनी रक्षा करने में समर्थ है ।

तुम्हारी क्षमता में मुझे तनिक भी संदेह नहीं । किंतु, पिता का मन असावधान नहीं रहना चाहता राम ! तुम्हारी रक्षा का पूरा प्रबंध होना चाहिए । यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो मैं अपने जग रक्षकों की एक टुकड़ी भेज दूँ । मेरी अपनी सुरक्षा के लिए तुम्हारा सुरक्षित रहना बहुत आवश्यक है । सारी जयोध्या में सिवाय तुम्हारे मुझ कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता जो मेरी कुशल चाहता हो ।

पिताजी, मुझे क्षमा करें ! राम एक नहीं सके आपकी ये आशंकाएँ मेरी समझ में नहीं आ रही और यह त्वरा भी मेरे लिए कौतुक की वस्तु है । आपका ध्यान कदाचित् इस ओर नहीं गया कि भरत और शत्रुघ्न भी नगर में नहीं हैं । क्या इस अवसर पर उनका जयोध्या में होना आवश्यक नहीं है ?’

नहीं !’ दशरथ स्त्रीभक्त बोले ‘भरत के जयोध्या में आने से पूर्व ही तुम्हारा सुवराज्याभिषेक हो जाना चाहिए ।’

किंतु क्यों पिताजी ?’

‘गुप्त कामों में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाया करत हैं पुत्र ! उनका गीघ्र हो जाना अच्छा है । विलंब उनके लिए घातक होता है ।’

राम के मन का मन्त्रेह बनवान हो उठा—निश्चय ही सम्राट को भरत अथवा ककेयी की ओर से ही आग का है । जब वे खुलकर कुछ कहना नहीं चाहते । संभव है कि पिता की आशंकाओं का कोई ठोस आधार हो

अथवा यह भी संभव है कि य वृद्ध पिता के भीत मन की दुष्प्रवृत्ति का मात्र हो।

पिता किस आवेग से यह बात कह रहे हैं ? निश्चय ही उन्होंने क्वेयी में इस विषय में विचार विमर्श नहीं किया होगा। संभव है कि चर्चा तक नहीं की हो, और उन्हें पूर्ण अघकार में ही रखा हो। रनिवास में किसी की भी यह समाचार पाल नहीं था। स्वयं माता कौमल्या का सीता न जाकर बताया था, और उन्होंने आपे माता सुमित्रा और लक्ष्मण को सूचना भिजवाई थी। जब यह समाचार उन लोगों तक सं गुप्त रखा गया है तो क्वेयी को अवश्य ही इस सदभ में कोई खबर न होगी।

दशरथ की उत्कट इच्छा को राम अपने अनुमान से समझने का प्रयत्न कर रहे थे। आरम्भिक जीवन में माना कौमल्या तथा स्वयं राम के प्रति की गयी उपमा तथा अनादर की गायद प्रतिक्रिया जागी थी सम्राट में। पहले जिम विवदता सं व उनके विरुद्ध बड़े थे अब उसी विवदता में उनका अनुकूल हो रहे थे। ऐसी मन स्थिति में पिता से राम कुछ नहीं कह सकते थे।

किंतु क्या बात इतनी भी ही थी ? क्या पिता स्वयं अपने प्राणा के लिए भयभीत नहीं है ? क्या उन्होंने यह नहीं कहा कि सिवाय राम के सारी अवोध्या में कोई उनकी कुशल नहीं चाहता ? वे राम का सत्ता सौंपना चाहत है राम की सुरक्षा चाहत है—इसलिए कि राम उनकी रक्षा कर सकें। क्या पिता इस सीमा तक डरे हुए हैं कि व भरत तथा क्वेयी की ओर से अपने प्राणों के लिए भी आग्वित हैं ? क्या है यह ?—सम्राट की दुश्चिन्ताएं ? स्वाथ ? याय की भावना ? अथवा राम के प्रति स्नेह ?—

और भरत के नाना को दिया गया सम्राट का वचन ? क्या पिता उस वचन को भी भूल गए हैं या वे सम्यास उसकी उपमा कर रहे हैं।

रघुकुल में जन्म लेकर, दशरथ अपना वचन तोड़ना चाहत हैं ? क्यों ?

राम को राज्य का अधिकार देने के लिए ?

तो राम कह दें कि व पिता से सहमत नहीं। जिस अभिप्रेक के लिए पिता नतन आतुर है कि न उन्हें धर्म सुभता है न याय—न औचित्य न मर्यादा। वह अभिप्रेक राम को तनिक भी उत्सुक नहीं कर पाता। व

अभिषेक का अभी टालना चाहते हैं। व थोड़े समय के लिए—किसी अवसर के लिए—पूति तब के लिए—इस समय की टालना चाहते हैं

पिता स्वीकार नहीं करेंगे।

राम क्या करें ?

जाओ पुत्र ! अत्र विलम्ब मत करो। दशरथ ने आज्ञा दी है। मरी बान मानने में तनिक भी प्रमाद मत करना। धार्मिक अनुष्ठानों के बीच भी अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना। इस विषय में मैं लक्ष्मण की भी सावधान करना चाहता था किन्तु यह है कि कहीं वह अनिश्चित रूप से उग्र तथा मुखर न हो उठे। उससे सारी गोपनीयता भग्न हो जाएगी।

अपने द्वंद्वों में उनका किञ्चित्त्व्यविमूढ़-ता राम अपने महल में लौट आए। वे स्वयं ही अपने-आपको पहचान नहीं रहे थे। यह राम का रूप नहीं था। राम के सम्मुख उनका माग स्पष्ट हुआ करता है लक्ष्य निश्चित होता है—दा टूक। पर आज राम के सम्मुख कुछ भी स्पष्ट नहीं था—कोई उनका मन की अवस्था नहीं समझ रहा था, कोई नहीं।

महल में उत्सव का-ना दृश्य था। सारी गोपनीयता के रहते हुए भी महल के प्रत्येक कमचारी का भाव ही खुला था कि प्रातः राम का युवराज्याभिषेक होगा। सीता के उत्साह ने गोपनीयता की चिंता नहीं की थी। वैसे भी जब प्रवेद्य आरम्भ होता है तो गोपनीयता कहा रह पाती है।

महल की सीमाओं के भीतर न केवल प्रत्येक व्यक्ति के वस्त्र बदल गए थे वरन् सबकी जाकृतियाँ भी समारोह के उत्साह से दमक उठी थी। और उन सब के मध्य सीता मन-ही मन अद्वैतिक आनंद की बूद-बूद पीती हुई तन्नि सदीप्त आयोजन करती घूम रही थी। पुरोहित लोग आकर बैठे हुए थे और राजगुरु की प्रतीक्षा थी।

अनमन-से राम अपने वक्ष में अकेले जा बैठे। क्या करें वे इन परिस्थितियों में ?—पिता ने बल देकर कहा था कि परिस्थितियाँ अत्यंत बलवान होती हैं। क्या राम भी स्वीकार कर लें कि मनुष्य परिस्थितियों के सम्मुख विवश हो जाता है ? किन्तु तब राम और दशरथ में अंतर क्या होगा ? बड़े दशरथ का हारा हुआ मन और युवक राम का असाधारण

आत्मविश्वास

क्या करें राम ?

पिता की आज्ञा इतनी सरल है कि उसे प्राण उगी में अटक
है। माँ का वह भुर्रा हृदय है। उन्होंने अनर क्यों तब—रत्न आजीवन
पत्नी जन्म की प्रतीक्षा की है। माता का आज्ञाप्रिय मर्मांगी—प्राण।
आर माता मुमित्रा, महामाया पुत्र यमिष्ठ तत्ता मुमित्र—महाराज बिने
प्रमत्त है। मुमित्र विनय नया विनय को भी ब्यापित अब तक गान हो
गया है। नहीं हुआ तो बन हा जाएगा। बन प्रजा-जन का भी पता
चरगा—कसा उत्सव मनाना वे सब। मन्नाट का शासन में अब लोग
की आज्ञा नहीं है। फिर राम कम अपन दायित्व का छाहर भाग जाए।
पदायन, राम की प्रवृत्ति नहीं है।

किन्तु विश्वासित ? उनका जिया गया वचन ? वन में उनकी प्रतीक्षा
करने हुए ऋषिगण, वानर गण मन्नाट का भी भोज भोज कराने
नाग और निपाद । उनका प्रति भी तो दायित्व है राम का। उनका
दायित्व बनन अयाध्या तक सीमित नहीं है। गवता । राजनातिक सीमा
मानवाय भावों गवन्नाओं, दायित्व और अधिकारों को गभीर छोड़ना
म बन नहीं कर सकती । राम अयाध्या का है—अयाध्या का वह पर भरपूर
अधिकार है, किन्तु अधिकार उनका भी है, जो अयाध्या में नहीं है।

अनिपय राम की प्रवृत्ति नहीं है। किन्तु आज ? राम की गण्य गति
मात्र इतनी ही है क्या ?

नहीं ! राम को निपय उना होगा। राम के जीवन में निपय
परिस्थितियाँ नहीं लती । राम सते हैं। उह बाईन कोई भाग निपातना
हा होगा—

‘मौमित्र आए थे ।’ सीता न बताया ।

‘हूँ ।’

‘वे बहुत प्रसन्न थे । इतने प्रसन्न कि क्वाचित् कोई अपन अमियेक
स मान हो ।’ सीता न बतायस राम की दया, ‘कम प्रात फिर आन का
बह गए हैं ।’

‘लक्ष्मण अवश्य ही बहुत प्रसन्न होंगे ।’ राम न जस अपन-आपसे

वहा ।

बड़े तटस्थ भाव में राम ने धार्मिक अनुष्ठान पूरे किए, और काफी गए, रात सोने के लिए बिस्तर पर आए। प्रातः जल्दी उठना है—वे जानते थे—उन्हें जल्दी सो जाना चाहिए था, पर यह मानसिक तनाव

राम अपने पलंग पर सट छत की ओर देख रहे थे। सायन पलंग पर लटी हुई सीता, अभी थोड़ी देर पहले तक उनसे बातें कर रही थी, किंतु दिन भर की थकान के कारण बातों के बीच में ही अचानक सो गयी थी। कितनी प्रसन्न थी सीता—निश्चित भी। निश्चित होम के कारण हो वे सो पायी थी। सोयी भी कैसे जस थका हुआ बच्चा भोजन करत-करत बीच में दुलक जाए—आधा बोर हाथ में और आधा मुख में। सीता भी एस ही सो गयी—आधी बात मुख में और आधा मन में लिय लिय। पर राम की अब भी नीद नहीं आ रही थी। दिन भर के कामों से न केवल गरीर बुरी तरह थका हुआ था किताओं से मस्तिष्क भी पटा जा रहा था। आँखों के पपाटे भारी थे और थकान के मारे जल रह थे—पर नीद नहीं आ रही थी।

क्या कर राम ?

युवराज पद ठुकरा दें !

कतव्य की उपेक्षा कैसे करें ?

वन न जाए !

पर वह भी कतव्य है। उसकी उपेक्षा कैसे करें ?

तो क्या करें ?

क्या ?

दोनों कतव्यो में से एक को चुनना होगा। दोनों में से अधिक महत्वपूर्ण क्या है ? निश्चित रूप से वन जाना ! तो उसे ही चुनना होगा। अयोध्या का शासन यदि सम्राट नहीं मंगल सकते तो राज-परिषद् की देख रेख में भरत मंगल सकते हैं। भरत से सम्राट का खतरा ही तो नष्टमण मंगल सकते हैं वन बचल राम हो जा सकते हैं।

भरत ! भरत से पिता आशंकित है और माता भी। क्या राम भी ? नहीं ! राम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते।

ता बन जाना ही तय रहा ?

हा ! राम की आर से तय है । किन्तु पिता माता सीता तथा अग्र लोका की इच्छा ? उनकी प्रसन्नता ? राम के अभिप्रेत न कराने में उनका दुःख ? उनकी हताशा ?

राम के मन में बैठे विश्वामित्र जोर से ठहाका मारकर हस पड़े, “इस-उस की इच्छा और प्रसन्नता की चिन्ता करत रहे तो निम्ना चुके तुम दायित्व ! प्रत्यक्ष उदात्त काय में निवृत्त के प्रियजन सग मवधी सदा ही हताश हुए हैं । तुम्हारा क्या विचार है, जब दधीचि ने अपनी अस्थिया दान की थी तो उसके माता पिता पत्नी बच्चे प्रसन्न हुए होंगे । वहाने मत दूँगे राम ! स्वयं की प्रवर्तित मत करी ।”

और सहसा जैसे राम जल उठे । एक ताप उह तपाता रहा जैसे आग बच्चे घड़े को तपाती है । क्रमशः ताप क्षीण हुआ तो राम ने पाया कि वे तप चुके हैं पक्के हो चुके हैं व निणय कर चुके हैं ।

साथ ही एक स्वर मन में गूँज रहा था— कोई नहीं मानगा, राम ! न पिता न माता न सीता, न लक्ष्मण—कोई नहीं ।’

किन्तु इस स्वर की उपेक्षा तो करनी ही थी ।

बड़ी कठिनाई से रात के अंतिम प्रहर में राम को नींद आयी । पर साते हुए भी दायित्व के तनाव का बोझ मन पर रहा । थोड़ा देर सी नहीं पाए । प्रभात के चिह्न प्रकट होते ही उनकी नींद उखट गयी । नींद में भी उखटती तो उह चारणों द्वारा जगा दिया जाता । आज युवराज्याभिषेक का दिन था, और प्रातः से ही समस्त कार्यक्रम निश्चित थे । उह क्षीघ्र ही पिता के निवृत्त उपस्थित होना था ।

स्नान कर राम जान के लिए प्रस्तुत हुए ही थे कि उन्हें सुमित्र के आने का समाचार दिया गया । राम चकित हुए—क्या हो गया है पिताजी का ! क्यों बार-बार सुमित्र को भज दते हैं ! राम को अभी तनिक भी विश्राम नहीं हुआ था । वे निश्चित समय में पूव ही पिता के पास जान के लिए प्रस्तुत थे ताकि उनमें अपनी बात कह सकें । फिर भी सुमित्र आ गए । कोई साधारण

परिचारक या सारथी जाया होता तो बात और था। पर सुमत्र—सम्राट के निजी सारथी अनेक विधेयाधिकारी से सम्पन्न। सारथी के साथ साथ उनके मंत्री सखा तथा निजी सेवक। समस्त राजनिलयी में कही भी बिना रोक टोक के आने जाने की सुविधा में सम्पन्न। उही सुमत्र को पिता ने फिर भेजा है कोई महत्त्वपूर्ण बात है या सामान्य बुलावा ही। संभव है नियत कार्यक्रम में कोई नई कड़ी जुड़ी हो पिता बिना उनकी बात सुन ही काम आगे बढ़ात जा रहा है। प्रबन्ध जितना आगे बढ़ जाएगा, राम की कठिनाई भी उतनी ही बढ़ जाएगी किंतु सम्राट की व्यग्रता तात। मैं जा ही रहा था।

राम ने देखा आज क सुमत्र पिछली मध्याह्नक के सुमत्र से बहुत भिन्न थे। उनकी आकृति पर उत्सव और समारोह का उल्लास नहीं था। उरसाहसूय बेहरा अतिरिक्त रूप में गंभीर लग रहा था। उस पर चिंता की रेखाएँ भी सहज स्पष्ट थी। उनकी आँखों में आज ममता और प्रेम नहीं था उनमें सहज निमलता भी नहीं थी। वे आज शुष्क नीरस मरुभूमि के समान उजाड़ थी जीवन-हीन—जैसे उनका जीवन स्रोत ही सूख गया हो। रात की सुख निद्रा ने पश्चात् उह ऊर्जा और स्फूर्ति से भरे-भूरे लगना चाहिए था किंतु वे प्रातः के निर्वाण। मुख दीपक के समान धके धके लग रहे थे।

समारोह ने दायित्व में दबे आप रात भर सो नहीं सक ? राम का स्वर कोमल तथा मधुर था।

सुमत्र ने कोई उत्तर नहीं दिया, अपनी अयमनस्कता में जैसे उहोने कुछ सुना ही नहीं। वे अपनी फटी फटी आँखों से प्रत्येक वस्तु के आर-मार देखते रहे। उनकी आकृति भावशून्य यात्रिकता लिए हुए थी।

एक अटपटे मौन के पश्चात् सुमत्र बोले राम ! आपका कल्याण हा। शीघ्र सम्राट के पास चलिए। सम्राट ककयी के महल में उनके पास हैं। उनका कठ अवस्था होने की सीमा तक भरपूर हुआ था।

राम का आश्चर्य बढ़ गया—इतनी सुबह सम्राट माता ककयी के महल में कैसे पहुँच गए। पिछली शाम तक सम्राट इस विषय में अत्यन्त गोपनीयता बरत रहे थे। सम्राट की आज्ञाकारी का इंगित ककयी की ओर

हो या। यह संभव नहीं कि सम्राट वहाँ घटना के लिए गए होंगे। यदि सम्राट ने गोपनीयता का व्यवहार न किया होता, तो बात और थी। कभी स्थिति में कबेयी, इस अभिप्रेक में माता कौसल्या से भी अधिक सक्रिय होती।

पर मुमत्र इतने पीड़ित क्या है ?

बात क्या है ताँ मुमत्र ?

कुमार स्वयं चक्कर देख लें।" मुमत्र ने अपने हाठ चाप लिये थे।

राम का मन सहसा एक अन्य दिशा में सोचने लगा।

सम्राट ने समाचार गुप्त रखा था, किंतु वह गुप्त नहीं रहा होगा। किसी प्रकार कैंकयी को सूचना मिल गयी होगी। कबेयी सम्राट के व्यवहार से क्षुब्ध हो गयी होगी। सम्राट दामा मागने रानी के पास पहुँचे होंगे, और अज कबेयी के चरणों पर सिर रमे पड़े होंगे। यह नई बात नहीं थी कबेयी पर सम्राट मुग्ध चाहे कितनी ही क्यों न रहे हों किंतु उस पर विश्वास उन्होंने कभी नहीं किया। अविश्वास के कारण न कैंकयी के प्रति सहज हो सके न कैंकयी के अप्रतिम तेज के सामने अपना अविश्वास प्रकट कर सके। तमश उनके मन में कैंकयी का भय बढ गया था और उसके सम्मुख उनका आत्मविश्वास अत्यन्त क्षीण हो गया था। कबेयी की अश्रमन्ता के भय से उससे पहले बिना काम कर डालना और फिर कैंकयी के हाथों अपमानित होने के भय से उस काम को छिपाते फिरना सम्राट की प्रवृत्ति हो गयी थी। उसके पश्चात् तीन घातक सम्राट और सिफरी हुई मिहनी भी कैंकयी का नाटक सबे समय तक चलता था। ऐसे नाटक राम ने इस घर में अनवरत बार देखे थे। वही ऐसा तो नहीं कि कबेयी ने इस युवराज्याभिप्रेक का विराध किया हो, और अब सम्राट स्वयं को अधम पाकर मज-बुछ कैंकयी के मुख में ही कहवाना चाहते हों ? किंतु कैंकयी का राम के प्रति स्नेह कैंकयी उनसे युवराज्याभिप्रेक का विराध कैसे करेगी ?

जब में प्रवेश करते हैं राम ने जो कुछ देखा, वह अनेक सम्भावनाओं पर विचार कर उनका साक्षात्कार करने के लिए तैयार होकर आए हुए

राम के लिए भी सवथा अग्रत्याशित था। आज तक उन्होंने माता तथा पिता को राजसी वेश में जितना गरिमापूर्ण ढंग से राजसिंहासन, मंच अथवा पंख पर बैठे हुए देखा था। पर आज वृद्ध सम्राट अत्यंत अवस्थित अवस्था में आस्तरणहीन पंख पर पड़े थे। उनकी मुद्रा पीड़ित तथा वरुण थी। सारे शरीर में कोई स्पन्द नहीं था। श्वास चलने का भी कोई प्रमाण नहीं था। नहीं वसनाग्नय नहीं था। किंतु चतय भी उन्हें नहीं कहा जा सकता। वे स्थिर शव के समान पड़े थे।

माता ककयी कुछ हटकर खड़ी थी—मीधी दडवत। चेहरे पर उपता कठोरता एवं हिंसा का भाव था। जिनके कारण वे सतुलित नहीं लग रही थी। वशभूषा भी सामान्य नहीं थी। प्रमाधन से सवथा ग्नय। रात को सोने के लिए पढ़ने गए कुचल हुए वस्त्रों में ही वे उपस्थित थी। यह शोभा प्रिय ककयी की प्रवृत्ति का अनुकूल नहीं था। शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था। सारे आभूषण पंख पर जहां-तहां बिखर पड़े थे। जस भयकर आवेश में वे हैं उतार उतारकर पटक गया है। वश बुरी तरह बिखर हुए थे जस किसी ने रात भर उन्हें नोचा खींचा हो।

दोनों की ही स्थिति राम को स्तब्ध कर देने वाली थी।

राम ने स्वयं को सभाला। उन्होंने दोनों की प्रणाम किया, किंतु आशीर्षचन किसी का मुख से नहीं निकला।

क्या हुआ?—राम सोच रहे थे—कोई भी बोलता नहीं। वस पिछले दिनों जो कुछ घटा था वह सारा कुछ इतना आकस्मिक और नाटकीय था, कि अब काई भी घटना विचित्र नहीं लगती थी।

पिताजी! मैं उपस्थित हूँ। आदेश दें।

दशरथ ने क्षण भर के लिए आखें खोलीं। राम को भरपूर दृष्टि से देखा। फिर जैसे राम को देख नहीं पाए। आखें चुरा लीं। करवट बगली और आखें मूढ़ लीं।

क्षण भर खुली उन आखों में राम ने अथाह वेदना की मूर्तिमान देखा था। उनमें क्रोध आवग क्षोभ कुछ भी तो नहीं था। उनमें राम के लिए उपेक्षा प्रताड़ना या उपालभ—कोई भाव नहीं था। उनमें तो पीड़ा का समुद्र हाहाकार कर रहा था—जस कोई भीतर-ही भीतर निरंतर कचोट

रहा हो। उनमें ग्लानि थी, हताशा थी। उग्रता तो थी ही नहीं।

राम ने कैकयी की आरंभ देखी—कैकयी अतिरिक्त रूप से सख्त नजर आ रही थी। उसके चेहरे पर दगरय की आखों की पीड़ा का एक कण भी नहीं था। सायास उद्दतः अवश्य थी। कृत्रिम और सायास लाया गया तनाव था।

माता ! '

कैकयी के लिए मोन बने रहना अधिक सरल था। बोलने के लिए उसे जो प्रयास करना पड़ा। शब्द अनाहूत नहीं आए। वह कठोर स्वर में बोली, राम ! तुम्हारे पिता तुमसे बहुत प्रेम करने लगे हैं।

प्रेम तो मुझमें आप भी करती हैं। राम बोले, 'किंतु यह रिश्ता '

कैकयी का तनाव कुछ कम हुआ। बोली तो उसका स्वर पहले की अपना कुछ कामन और सहज था। सम्राट ने एक ध्वनि में पिता का लिया था उसकी चर्चा में नहीं कर रही। किंतु मेरे उपकार के बदले, शत्रु-मुद्र के परचात उद्घातन का वर मुझे दिए थे। आज मैं व वरदान माग रही हूँ और यही भूमि सहाय वरदान देने के स्थान पर रान भर इसी प्रकार भूमि पर पड़े दीप नि प्रकाश छाड़त रहे हैं। इन्होंने अपने इस रूप से मुझ पर दबाव डालने का प्रयत्न किया है और अब भी कर रहे हैं कि मैं अपने मागे हुए वरदान फिरा लूँ।

कैकयी ने सम्राट के हृदय पर कशा का-मा आघात किया। वह सहज 'कैकयी

क्या ? कैकयी के आश्रय में ज्वार आ गया। उस बोलने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ा। आवेश की अग्नि में बाध जल गया और अवरुद्ध धारा बह निकली, 'राम ! मैं जानती हूँ कि मैं बहुत कठोर हो रही हूँ। सब लोग मुझे बुरा कहेंगे, पर मेरे मन में तनिक भी पाप-बोध नहीं है। मेरे मन में तनिक भी मेल और दुराव नहीं है। अपने पिता की आरंभ देख मुझे सग रहा होगा कि मैं बड़ी दुष्टा हूँ, जो अपने पति का इतना कष्ट दे रहा हूँ। पर सब यह नहीं है पुत्र ! तुम्हें मैंने पीड़ा भी दी है और अपने

मन की ममता भी। बोलो तुम मेरा निष्पक्ष याप करोगे ?”

राम मुसकराए पुत्र यापकर्ता की स्थिति म न भी हो तो मा के मन की व्यथा तो सुन ही सकता है।

मैं आज वह सब कहूंगी राम ! जो चाह कर भी आज तक कह नहा सकी।’ ककेयी बोली मैं देवी होने का स्वाग नही कर रही। तुम्हार प्रति विनोय प्रेम और पक्षपात भी नही जता रही ”

कहो मा !

मैं वह धरती हू राम ! जिसकी छाती बरणा से फटती है तो गीतल जल उमड़ता है, घणा स फटती है तो सावा उगलती है। दोनों मिल जाते है तो भूचाल आ जाता है ! आज मेरी स्थिति भूडोल की है, राम !” आवेश स ककेयी का चेहरा साल हो गया मैं इस घर म अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नही आयी थी। मैं पराजित राजा की ओर म विजयी सम्राट को सधि के लिए दी गयी एक भेंट थी। सम्राट और मेरे वय का भेद आज भी स्पष्ट है। मैं इस पुरुष का पनि मान पत्नी की मर्यादा निभाती आयी हू पर मेरे हृदय स इनक लिए स्नेह का उत्सव कभी नही फूटा। य मेरी मांग का तिर्र तो हुए अनुराग का मिदूर कभी नही हो पाए। मैं इस घर मे प्रतिहिंसा की आग म जलती सम्राट न मबधित प्रत्येक वस्तु से घणा करती हुई आयी थी। तुम जैसे निर्णोय निष्कनुप और प्यारे वच्चे को अपने महल म घुस जाने के अपराध म मैं अपनी दासी से पिटवाया था ।

मुझे याद है मा ! !

वह मैंने तुम्हे नही पिटवाया था मरी प्रतिहिंसा ने सम्राट के पुत्र को पिटवा कर सम्राट को पीडित कर प्रतिशोध लेना चाहा था। तब मैं तुमस घणा करती थी तुम्हारी मा से घणा करती थी वहन सुमित्रा मे घणा करती थी। मैं रघुवशियो से मानव-वश की परपराओ स प्रत्येक वस्तु स घणा करती थी। जहा तक सभव हुआ मैंने बड़ा उद्द उच्छ खल और अमर्यादित पवहार किया केवल इसलिए कि इन सब के माध्यम मे मैं सम्राट को पीडा पहुंचा सकू। पर क्रमश मैंने पहचाना कि मैं तुम्ह या वहन कोसल्या की पीडा पहुंचाकर सम्राट को पीडा नहा

पट्टा रही हूँ—उमसे ता मैं सम्राट् का मुख दे रही हूँ। तुम लोग से उनका सबध भावात्मक नहीं, अभावात्मक था। तुम लोग तो स्वयं मेरे समान पीडित थे अपमानित थे। और फिर तुम्हारे और वहन कौसल्या के गुण मेरे सामने प्रकट हुए। मुझे तुम लोग से सहानुभूति हुई, जो क्रमशः प्रेम में बदल गयी। क्या मैं झूठ कह रही हूँ राम ?'

'नहीं, मा।' राम ने स्वीकार किया, "तुमने मुझे भरत का मा प्यार दिया है।"

मैंने क्रमशः मानव-जगत् पर पराओं का विरोध भी छोड़ दिया। मैंने पहचाना कि अपनी प्रतिहिंसा में मैं न्याय-अन्याय का विचार छोड़ दिया है। मैं स्वयं राक्षसी बन रही हूँ। मैं किसी अर्थ को नहीं स्वयं अपनी आत्मा को पीड़ा दे रही हूँ। शनं शनं मैं स्वयं का सहज किया। अपना विरोध छोड़ने के प्रयत्न में पिता द्वारा लिया गया वचन भुला दिया। गबर-मुद्द का पश्चात्त में अपने वरदानों का उपयोग नहीं किया, और अयोध्या की प्रजा के समान चाहा कि राम ही सुवराज हो। तुम ही हम योग्य थे पुत्र। तुम ही हम योग्य हो। किंतु मुझे अपनी सद्भावना का पुरस्कार क्या मिला ?"

राम मौन रह। वे भारी आँखों से बबकियों को देखते रहे।

'इस राज प्राप्ति में मुझ पर कभी विश्वास नहीं किया गया। मुझे सदा चुड़ैल समझा गया। मेरे भाई का आनक माना गया। मेरे मायके की परंपराओं को हीन और धनित कहा गया। मैं सदा यहाँ अपरिचित होकर रही एक दास्य वस्तु जिसका दहा के दवा-मानी से कोई भय नहीं था। मैं वहन कौसल्या या मुमित्रा या अर्थ किसी को उनका लिए दाप नहीं देती। उनसे मेरा सबध ही ऐसा था कि मुझ पर विश्वास नहीं कर सकती थीं। मुझे और किसी में शिकायत नहीं। शिकायत है अपने इस पति से जो बलपूर्वक मुझसे विवाह कर मुझे यहाँ लाया। जिसने अयोग्य होने हुए भी मुझसे सद्भावना चाही और प्राप्त की, किंतु स्वयं मेरे प्रति धार दुवसगा का अनुभव करत हुए भी मुझ पर कभी विश्वास नहीं किया। मैं उनसे लिए आवयक किंतु भय की वस्तु रही। उमने मुझे अपने गिहामन पर तो स्थान दिया किंतु हृदय में नहीं। मैं

उस सारे समय के लिए क्या कहूँ राम ! जब जब सुना कि मेरे पति ने कोई काम किया है कोई निणय किया है, किंतु भयभीत होकर मुझसे छिपाया है। झूठ बोला है। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर फिर झूठ बोला है। अपन ऐस व्यवहार से उसने अपना आत्म विश्वास खोया है स्वयं अपन-आपको और मुझे बार-बार अपमानित किया है। राम ! तुम पुत्र हा मेरे। तुम्हें कस बताऊँ कि हमारी रातें प्यार-मनुहार में कटने के स्थान पर भगडा और लानत-मलामत में बीत जाती थी। बार-बार मकल्प करने का वाद भी झगड़े हाते रह। कलह कलेश शांत ही नहीं हुए। पति-पत्नी के इन भगडा के दुष्प्रभाव से वचान के लिए उस एक शांत और स्नेहिल वातावरण दन के लिए मैं भरत को बार-बार उसके ननिहाल भजती रही

ककेयी का स्वर रध गया। उसकी आंखों में अल और अग्नि एक साथ प्रकट हुई और अंत में मैंने क्या पाया राम ! कस रात ठले कुन्जा तुम्हारे युवराज्याभिषेक का ममाचार लायी। मैंने बहुमूल्य मोतिया की माला कुन्जा का पुरस्कार में दे डाली। किंतु उस मूर्खी, कुटिला दासी ने वह मेरे मुह पर दे मारी। किस आधार पर किया उसने यह दुस्ताहस ?

ककेयी क्षण भर रुका, और पुन वह निकली तुम्हारे पिता के मेरे प्रति अविश्वास के आधार पर। उसने भुक्त बताया कि यह गोपनीय निणय था। सम्राट को आशका थी कि कुछ लोग अभिषेक में विघ्न डालें राम को नष्ट करने के लिए रातों रात उस पर आक्रमण करेंगे। किससे था भय ? मुझसे ! मेरे पुत्र से ! मेरे भाई से ! ! ! इसीलिए मुझ बताया नहीं। भरत का ननिहाल भेज दिया। भरत की अधीनस्थ टुकड़िया को उत्तरी सीमांत की ओर स्थानांतरित कर दिया। पुष्कल का अपहरण करवा उस बंदी कर लिया। नेक्य के राजदूत की निजी सलाह का निःशस्त्रीकरण हुआ ककेयी का स्वर और ऊंचा हो गया और जाखें आक्रोश से जल उठी खुड़ी है मरी सन्भावना पर ! मेरे चरित्र के उदात्त स्वरूप पर ! यहाँ कोई मुझे देवी के रूप में नहीं देखना चाहता। सब मुझ चुड़ल समझते हैं मेरे क्रूर रूप को ही सत्य मानते हैं। तो वही ही राम ! वही हो '

। बकेयी जैसे अपने स ही अवश होकर फफक फफककर रो पटी ।

राम ने आग बढकर बकेयी के कंधे पर हाथ रखा 'मत रोओ, मा ! मुझे तुम्हारी एक एक बात का विश्वास है । मैं तुम्हारे दोनों रूपों की जानता हूँ । कोई और तुम्हें जितना भी गलत समझे, मैं गलत नहीं समझूँगा । किसलिए बुलाया था—मुझे नि सकोच आदेश दो ।"

सम्राट ने एक बार आखें खोलकर राम को देखा । कितनी आश्चर्य था उन आँखों में जैसे राम की चेतावनी दे रही हो 'सावधान, राम ! इस मायाविनी के जाल में मत फँस जाना ।" पर आँखें खुली नहीं रह सकी, तरत मुद गयी ।

'मथरा साधारण सकुचित अनुहार, मुख तथा नीच चरित्र की दामी है।' बकेयी पुन बोली उसकी बात किसी विवर्णीय व्यक्ति को नहीं माननी चाहिए । किंतु फिर भी मैं उसकी बात मानूँगी । उसकी सलाह पर चलूँगी । उसे अपनी हिनाकाक्षिणी मानूँगी । जब सम्राट के मन में है तो मैं क्यों न मथरा की यह बात स्वीकार कर लूँ कि राम की भरत से भय है, और शासन प्राप्त कर वह अपने भय के कारण को समाप्त करना चाहेगा । मैं क्यों न यह मान लूँ कि अपनी आरम्भिक प्रति-हिंसा में मैंने जा बार-बार वहन को सत्या का अपमान किया है पुत्र का अधिकार प्राप्त कर लेने पर ये अवश्य ही प्रतिशीघ्र लेना चाहेंगे । नहीं तो उनका उद्गार आज मैं बकेयी के भय से मुक्त हृदय न होता । यदि वे सचमुच मुझे सुनाना न चाहती तो उनकी दासिया यह वाक्य मथरा तक न पहुँचानी । सम्राट के अविश्वास ने मेरे चरित्र के दुष्ट तत्त्वों को उकसा दिया है मेरी प्रतिहिंसा और घणा को जगा दिया है । मैं सम्राट का इसका दंड दूँगी—एसी आग लगाऊँगी कि आग तुम भी जाए तो उसकी सहर समाप्त न हो । सम्राट को जलाऊँगी—चाहें उस अग्नि में स्वयं जल जाना पड़े । चाहे तुम अपने शरीर और मन पर टीमत हुए फफोले वहन करो । पर मेरी प्रतिहिंसा शांत नहीं होगी । मैं उस शांत हान नहीं दूँगी ।

बकेयी मीन हो गयी ।

राम का लगा, वह अपनी आरम्भ से सहन-सहन ~~बकेयी~~ दूट गयी है ।

पर उसका सघप जारी है। वह सम्राट के विरुद्ध ही नहीं, अपने विरुद्ध भी लड़ रही है।

पर यह सब क्या है ?

क्या चाहती है ककेयी ?

कसी आग जगाना चाहती है ?

बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं थी। किंतु ककेयी के वचना के पीछे निहित प्रक्रिया का कुछ-कुछ आभास राम की मिल रहा था। पति-पत्नी के इन विग्रहपूर्ण क्षणी में राम का क्या सुलाया गया था ? पिता राम से आखें क्या चुरा रह थे ? ककेयी राम को ही क्यों उपालम दे रही थी ? क्या उन वरदानों का मंत्र राम से है ?

मुझ क्या आदेश है ? ' राम ने पूछा।

पिता के वरदान पूरे करी।' ककेयी का स्वर फिर कठोर हो गया था।

मेरी क्षमता में हुआ तो अवश्य पूरा करूंगा।'

ककेयी का स्वर फिर स कोमल और करुण हो उठा मैं जानती थी कि तुम विरोध नहीं करोगे। इसे मेरी कुटिलता मत समझना पुत्र। किंतु मुझे कहने दी मैं किसी की पहचाना हो या न पहचाना हो तुम्हें पहचानने में मैंने तनिक भी भूल नहीं की है।

राम के अधरा पर मुग्धकान ही उमरी।

'राम ! मैंने दो वर मागे हैं। क्षण भर ककेयी अपने भीतर की पीड़ा से जूझती रही और फिर कठोरता का मंत्र ओढ़कर बोली पहला तुम्हारे युवराज्याभिषेक के लिए प्रस्तुत की गयी सामग्री स ही भरत का युवराज्याभिषेक हो और दूसरा तपस्वी वेश में तू आज ही चौदह वर्षों के लिए वनवास के लिए प्रस्थान करी।'

राम की अपने भीतर एक भटका सा लया। क्या यह दुःख था ? नहीं ! शायद यह पूरी तरह दुःख नहीं था—या भी नहीं भी। यह आकस्मिकता का धक्का था। पर यह आकस्मिकता कितनी अनुकूल थी

राम को समझत देर नहीं लगी कि पिता वरदानों का तिरस्कार भी नहीं कर सकते और उ ह म्बीकार भी नहीं कर सकते। यह उनका सत्य प्रेम

या, पुत्र प्रेम था या मात्र ककेयी का भय ? सत्य प्रेम तथा पुत्र प्रेम में द्वन्द्व था या मात्र अपनी सुरक्षा का अंतिम हताश प्रयत्न ? वे दुविधा में अस्त व्यस्त, अमनुलित, विभ्रान्त-सी अवस्था में पड़े हुए कष्ट भाग रहे थे, और ककेयी अपने स्थान पर पवत-सरीखी दण्ड खड़ी थी ।

सम्राट ने अपनी आत्मा का मपूर्ण दल को संचित कर, अपनी आँखें खोली । कुछ घोरन के प्रयत्न में वे थोड़ी दूर बुदबुदाते रहे, और फिर कानर बाणी में बाल 'मुझे मृत्यु के मुख में मत धकेल देंगे' । राम चला गया तो मैं जीवित नहीं बचूंगा । मैं हित करने की उत्कट इच्छा में, असंतुलित होकर अनहित कर बैठा । तू भी अपना संतुलन खो बैठी है । भरत का इष्ट करत-करते तू उसका अनिष्ट करगी ।

सम्राट की बाणी में न तो आत्मबल था, न सत्य का तज । वे ककेयी से याचना कर रहे थे उसे अपराधिनी ठहराने का साहस उनमें नहीं था । वे ककेयी से आँखें नहीं मिला रहे थे, ककेयी का कृत्य को 'अत्याचार' नहीं कह पा रहे थे । उनकी अपनी अपराध भावना ककेयी के क्रूर सत्य से पराजित हो चुकी थी । ककेयी द्वारा लगाए गए आक्षेपों को व मोन मायता दे रहे थे । उन्होंने अपने प्रमाद में ककेयी का वय, उसके महत्त्वाकांक्षी ऊँजस्वल जिजीविषापूर्ण जीवन के साथ अयाय किया था । अपने क्रम का बलुप उनके तेज को पूणत मलिन कर गया था ।

राम के सामने स्थिति पूणत साफ थी । साचने विचारने का न अधिक अवसर था, न आवश्यकता ।

प्रत्यक्ष जगत विलीन हो गया था । उनके आस-पास कुछ भी नहीं रह गया था—'गूँघ बबल गूँघ' और सामने बहुत दूर एक प्रकाश था । कदाचित् कोई अग्नि जल रही थी । उस अग्नि में प्रकाश था आच थी, जलन थी, पीडा थी । उसके अनेक मुख थे । वे मुख निरंतर बदल रहे थे—एक मुख विश्वामित्र का था, एक अगस्त्य का था, अत्रि का था, वाल्मीकि का था, भरद्वाज का था शरभग का था सुतीक्ष्ण का था । और सारे मुखा से निरंतर एक ही ध्वनि प्रस्फुटित हो रही थी—'आओ ! आओ ! राम, आओ !'

राम उन चेहरों की आँखों में जैसे बघ गये उनकी

गये उस बाणी से सम्मोहित ही गए। राम का हृदय प्रत्यक्ष आह्वान का उत्तर दे रहा था— मैं आ रहा हूँ आ रहा हूँ ।’

राम प्रत्यक्ष जगत में लौटे। उनके भीतर अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए थे। यह वरदान है या शाप ? अब तक राम की चिंता थी कि अभिषेक को टालकर वन कैसे जाए ? ककेयी ने उनके लिए अवसर उपस्थित कर दिया था।

पर यह संभव कस हुआ ? ककेयी राजसी है या देवी ?—क्या समझें राम ? क्या सचमुच ककेयी की वरों से मंचित पीडा आज घणा और प्रतिहिंसा बनकर फूट पड़ी है ? वह अपनी प्रतिहिंसा के हाथों अवश पिशाची हो गयी है ? या यह केवल नाटक है—केवल एक आड। और सच यह है कि ककेयी का वर वक्य रक्त अपने अवाञ्छित अनाकाक्षित पति, अपनी मपत्नी अपने सौतल पुत्र—सब के प्रति सन्तुता का निर्वाह कर रहा है ? क्या ककेयी मान भरत को राज्य दिलवाने के लिए रघुबल की परंपराओं का खटित कर उसकी मर्यादाओं को नष्ट कर अपन पति को असहनीय यातना अकल्पनीय पीडा दे रही है ? क्या सम्राट की आशकाएँ सत्य हुई ?

क्या यह ककेयी की योजना है कि राम वन चने जाए तथा उनकी अनुपस्थिति में अगुरुक्षित-असहाय दशरथ निराशा और हताशा में प्राण त्याग दें ? क्या ककेयी तयार है कि स्वाय अथवा प्रतिहिंसा के हाथों अपने सौभाग्य को अग्निमात हो जाने दे ? या वह मान विवेकहीन विक्षिप्त कम कर रही है—भविष्य की बात सोचने के लिए उसके पास बुद्धि ही गैर नहा है ?

राम निणय नहीं कर पाए—ककेयी का कौन-सा रूप वास्तविक है। पर इस समय तो ककेयी वही चाह रही है जो राम के मन का अभीष्ट है। उनका मन अनात ही उसके प्रति आभार से जापनावित हो उठा। उनकी दुश्चिन्ता मिट गयी। वे तयार थे कि मुक्त मन से पिता से आप्रह्व करें कि पिता अपन वचन का पालन करें। राम चौदह वर्षों तक तपस्वी वेश में वनवास करेंगे

पर चौदह वर्षों का वनवास क्यों ? वष दो वर्षों का क्यों नहीं ? क्या

ककयी समझती है कि चौदह वर्षों का समय इतना लंबा है कि इस बीच सम्राट का देहावसान हो जाएगा और भरत अयोध्या में अच्छी तरह अपने परजमा लेगा तथा अयोध्या के लोग राम को भूल जाएंगे हा, इतना समय पर्याप्त था

ककयी की मुद्रा कुछ और कोमल हुई, पुत्र ! तुम्हारे प्रेम के कारण सम्राट कभी अपने मुख से तुम्हें वन जान के लिए नहीं कहेंगे । दूसरी ओर अपने सत्य के मुड़ोटे के कारण वे वरदानों का तिरस्कार भी नहीं करेंगे । अब निणय तुम्हारे ऊपर है । '

राम क्या कहते ! महत्त्वपूर्ण यह नहीं था कि वे पिता के वचन की पूर्ति के लिए वन जा रहे हैं या ककयी की इच्छापूर्ति के लिए । बात केवल इतनी थी कि उनके पास यही एक अवसर था यदि वे चूक गए तो फिर यह अवसर कभी नहीं आएगा । पिता में यदि रचमात्र भी आत्मज्ञ जाग उठा और उन्होंने यह जिया कि वे कंकयी को वरदान नहीं देंगे राम वन नहीं जाए— तो फिर राम की जिता पुनर्जीवित होकर पिशाची-मी उनके भाग में आ खड़ी होगी ।

राम निम्न स्वर में बोले मा ! मैं आज ही वन की ओर प्रस्थान करूंगा ।'

ककयी के चेहरे पर हृष और आग्री में पीड़ा उभरी "दडक वन ।

राम पुन बोले । विश्वामित्र भी यही चाहते थे । वही से राम अपना अभियान आरम्भ कर सकते हैं । ककयी अपने स्वाध के लिए उन्हें वन भेज रही है या ऋषि काप के लिए ? दडकारण्य भयकर राक्षसी मेनाया हिंस्र पशुओं तथा अनेक अत्माचारियों में भरा पड़ा है । वही ऋषि आश्रमों को सर्वाधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है । क्या ककयी इसनिए उह वहा भेज रही है कि वे जाकर ऋषियों की रक्षा करें, या इसलिए भेज रही है कि राम राक्षसों तथा हिंस्र पशुओं द्वारा मार जाए, वे कभी सौत्वर न आए और अयोध्या में भरत का राज्य विरस्यामी हो ? नद्व क्षेत्र में ही तब से मुदकलते हुए दशरथ की रक्षा ककयी न की थी । वह राम को वहाँ भेज रहा है—तब के वनजा के हाथों राम का हत्या करवाने अथवा राम के हार्पा शत्रु के वनशों का नाश करवाने ?

किंतु इन प्रश्नों का उत्तर ककेयी ही दे सकती थी, और ककेयी से ये बातें पूछी नहीं जा सकती थी। राम को उत्तर पाए बिना ही जाना होगा।

अतः राम बाल माता ! बल्कना का प्रवर्ध कर दें। मैं बधु-बाधवों से विदा लेकर जाता हूँ।

राम चले गए।

ककेयी के मुख पर विजयिनी मुस्कान उभरी किंतु उसकी आँखों में गहरी यथा के चिह्न थे।

“सवनाश।”

दशरथ गना गूँथ हो गए।

बबेयी के महल से निकलते हुए राम के मन में एक सहज उल्लास था।

उठ रथ पर चढ़ते हुए सुमथ ने देखा। राम तनिक भी दुखी नहीं लग रहे थे। सुमथ अवाक रह गए।

‘इतनी-सी बात से आप इतने चिंतित थे, सुमथ काका।”

तुम इसे इतनी-सी बात कहते हो राम।’ सुमथ आगे कुछ कह न सके। चुपचाप घाटा को हाक दिया।

और राम को लगा, व भी उल्लसित नहीं रह गए हैं। उल्लास के साथ ही मन में कुछ आगवाए घर करती जा रही है, कुछ चिताए जम ल रही है और अनेक प्रश्न वर्षा के पश्चात् घरनी फोड़कर उग आये कुकुरमुत्तो के समान सिर उठाए खड़े हैं।

पिता ने उनके अभिप्रेत का निश्चय किया था ता साथ-साथ उनके मन में आगवाओं ने भी जम लिया था—वही राम व अभिप्रेत का अवसर हाथ में न निकल जाए। आज वही स्थिति राम के मन की थी—बबेयी ने उन्हें कम का अवसर दिया है, किंतु वही वह हाथ में निकल न जाए। सब को उनके वन-गमन की सूचना मिलेगी। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रतिक्रिया होगी—सब अपने अपने ढंग से काम करेंगे। क्या भीता उन्हें वन जाने देंगी? शायद उन्हें न रोके, किंतु साथ जान का हठ अवश्य करेंगी। सहमण राम के निर्वासन की बात सुनकर क्या करने को

नहीं हो जाएंगे। और फिर राम व बिना ता अयोध्या में वे भी नहीं रहेंगे। भासिर पटक पटककर प्राण देने को तैयार हो जाएगी। पिता कदाचित् पलंग से ही नहीं हिलेंगे। माता सुमित्रा तक करेंगी और बिना सहमत हुए या सहमत किए उठ नहीं छोड़ेंगी। सुयन चित्ररथ त्रिजट अयमित्र वधु-बाधव

उन गद्गद स्नेह राम व लिए भय का रूप धारण करता जा रहा था। राम क्षणभर के लिए भी डीन पड़े तो बबलात् अयाध्या के सिंहासन से बाध दिए जाएंगे। फिर वन जाने का अवसर शायद कभी न आए। इन सबके भी राम अयाध्या से निकल जाए तो निकल जाएगा। यदि नहीं मानेगा कि पिता की सत्य प्रतिज्ञता की रक्षा व लिए कनेयी व आदेश पर उनका वन जाना उचित है। राम अपनी बात किसी का समझा नहीं पाएंगे, किसी का मना नहीं पाएंगे।

तो ?

बन्त होगा तो सीता साथ जाना चाहेगी। यदि वे बहुत ऋद्ध हो ल जाने में राम को आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। आखिर इतने दिनों से अनेक ताने उपालभ बालिया-ओलिया—वे किस दिन के लिए सुन रही हैं। यदि माथ न गयीं तो कम का अवसर उह फिर कब मिलेगा ? यदि जाना ही चाहती चले किन्तु राम अपनी ओर स प्रोत्साहित नहीं करेंगे।

लक्ष्मण भी साथ जाना चाहेंगे या शायद वन-गमन के समपक होत हुए भी इस प्रकार निर्वासित होकर जाना उन्हें अच्छा न लगे। शायद वे कनेयी का विरोध करना चाहें आवश्यकता होने पर सम्राट व विरुद्ध विद्रोह करना चाहें। न उनमें यस्मिन्गत शौर्य की कमी है न मनिक्-अमनिक् समठनों की सहायता की आवश्यकता होने पर उह साम्राज्य की मना का भी समयन मिल जाएगा किन्तु लक्ष्मण को समझाना होगा इस प्रकार के किसी भी कृत्य में वन जान का अवसर छिन जाएगा।

माता सुमित्रा तक करता चाहेगी—राज्य के अधिकार के विषय में क्षत्रिय के वन य के विषय में वरदानों की वास्तविकता के विषय में कनेयी के अधिकार के विषय में वन गमन के औचित्य के विषय में उह कैसे समझाया जाएगा कि इस समय राज्य प्राप्ति के लिए सघष से बड़ा घम

अयोध्या-त्याग है।

और माता कौसल्या ! उह तो किसी भी प्रकार नहीं समझाया जा सकता। वास्तव्य भी कभी यह मानेगा कि मत्तान त्याग धर्म है—प्रतीक्षा क्या कभी सहमत होगी कि लक्ष्य पाम आ जाए तो जाखें मूढ़ दूसरी ओर मुड़ जाना चाहिए ? उनको पीडा राम देख नहीं पाएंगे

राम किसी को इतना समय नहीं देंगे कि कोई अपन ढंग से सोच कर कम कर और उह रोक ले अयोध्या की स्तब्धावस्था में राम निक्कल गए तो निक्कल गए, विलंब हुआ तो नगर द्वार बंद हो जाएंगे

कौसल्या के महल के सम्मुख राम ने मुमय को राक दिया। रथ से उतरकर बोले, 'आप लौट जाए आगे मैं स्वयं चला जाऊंगा।'

'मैं प्रतीक्षा करूंगा राम !'

'नहीं काका !' राम मुमकराए मेरी चिंता न करें। सम्राट को आपकी आवश्यकता मुझमें कही अधिक होगी।'

राम नक्ष में प्रवेश किया।

माता कौमल्या के सम्मुख वेदी में अग्नि प्रज्वलित थी। उनके आसपास अनेक अविश्रयक वस्तुएं बिखरी पड़ी थीं—दही अक्षत घी मोदक, हविष्य, घान का लावा मफे पुष्पा की माला और बिचड़ी समिधा तथा जल से भरे हुए कलश। उन्हीं श्वेत रेशमी साड़ी पहनी हुई थी। वस्त्र के अनुष्ठान में दत्तचित्त षष्ठदेव का तपण कर रही थी।

राम के मन में कमक उठी—बिनने उत्साह से मा उनके अभिप्रेत की तैयारियां कर रही थी। राम उह कैसे सूचना देंगे ? कह दें—मा ! तुम्हारा यह संपूर्ण उल्लास अवषाय है। तुम्हारे पुत्र का न केवल अभिषेक ही नहीं होगा अब वह चीन्ह वर्षों तक तुम्हारे निकट भी नहीं रह पायेगा। क्या अवस्था होगी मा के मन की ? ये यह घबका क्षेत्र पाएगी ? राम का मन उन्मास हो गया।

तत्काल उन्होंने स्वयं का ममाना। यदि इतनी-जो बात मैं विचलित

होगए तो वै कभी भी अपना कतव्य पूरा नहीं कर पाएंग। कोमल मन अथवा कोमल हाथ कतव्य-भूति में कभी सहायक नहीं होत। उन्हें दब रहना होगा। तनिव-सी दुर्बलता से अवसर हाथ से निकल जाएगा। अभी तो सीता को भी सूचना देनी है। लक्ष्मण भी जानेंगे। सारे बध-व्याधक मित्र गण नगर निवासी सुनेंगे। राम को समझाएंगे राकेश बाधा देंगे साथ जाने का हठ करेंगे, पर राम को उन सब के निपटारा उदास चहरो तथा अभ्रुओं के भागर म से तरकर पार जाना होगा। मोह तथा कतव्य का निर्वाह साथ-साथ नहीं हो सकता। मोह को ताटना होगा—कठोर दृष्टि बिना कभी कोई कतव्य पर पूरा नहीं उतरा।

कौसल्या अपने दृष्ट्य से संशोधित थी। उन्होंने राम का आना लक्ष्य नहीं किया। सहायता के लिए पास बठा भूमिना ने चेताया। वहन। राम आए है।

प्रकट तलक के साथ कौसल्या राम की ओर उन्मुख हुई। उनकी आकृति पर उल्लास की असाधारण दीप्ति थी, आपो में वामनापूर्ति की तप्ति थी। किंतु राम के मुख पर उल्लाम का कोई चिह्न नहीं था। वे अत्यन्त गंभीर स्थिर तथा आत्मनियन्त्रित लग रहे थे।

क्या बात है राम ?

राम स्थिर दृष्टि से शून्य में देखते रहे। मा। पिता प्रदत्त दो पूर्वतन वरदानों के आधार पर माता कवेयी ने भरत की अयोध्या का राज्य और मुझे छोड़ह यों के लिए दंडकारण्य का वास दिया है।

कौसल्या ने अचक्का पलकें भपक भपककर राम को देखा। नहीं यह परिहास नहीं हो सकता। राम ऐसा परिहास नहीं कर सकता। वह सत्य कह रहा है।

कौसल्या स्तम्भित खड़ी रह गयी। उनकी सास जहां की तहां धम गयी। प्राण शक्ति जैसे किसी ने खींच ली। वण सफेद हो गया और माथ पर स्वेद वण उभर आये। अपनी जीभ से होठा को गीला करने में भी उन्हें एक युग लग गया।

राम।

मैं जा रहा हूँ मा। विदा दो।

राम न झुककर कौसल्या के चरण छुए।

‘तुम वन जान का निश्चय त्याग नहीं सकते पुत्र ? कौसल्या वातर हा उठी।

‘अममद।” राम का स्वर दह था।

कौसल्या ने भीचक दृष्टि से राम को देखा। उनका चेहरे की दहता में, कौसल्या के मन की आगा का आधार जैसे अरक़र गिर पड़ा, और साथ ही उनका शरीर भी झटके से भूमि पर चला आया।

सुमित्रा और राम ने लपककर कौसल्या को मभाला और पलग पर लिटा लिया।

कौसल्या न धीरे से आँखें खोलकर राम को देखा और फिर अपनी दृष्टि सुमित्रा पर टिका दी ‘इसे रोक सुमित्रा ! कँकेयी तो बहाना है। यह स्वयं ही वन जान को तुना बैठा है।

कौसल्या की शक्ति जैसे समाप्त हो गयी व निडाल हो चुप हो गयी।

सुमित्रा चुप न रह पायी। बोली ‘इस प्रकार के आदशा को स्वीकार करना क्या धम है ? राम ! तुम अपना अधिकार ही नहीं छोड़ रहे कँकेयी के अत्याचार का समर्थन भी कर रहे हो। अपना बल को पहचानो पुत्र ! तुम्हारे एक सकेत पर कौसल की प्रजा कामुक सम्राट को भाग से हटा तुम्हारा अभियेक कर देगी। और प्रजा को भी रहन दो। अकेला लक्ष्मण इन दुष्टों का दह देन में पूरी तरह समर्थ है।’

राम मुग़र्राए ‘मां ! धम क्या है कहना बड़ा कठिन है। वह कब मध्यम में है और कब त्याग में—इसकी परख आवश्यक है। पूर्ण सत्य हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष नहीं होता। उस अज्ञात सत्य उन अनपेक्षी परिस्थितियों के प्रति हमारा क्या दायित्व है—यह भी हम नहीं जानते। भार्गव-बाघवों की हत्याएँ कर रक्त के मरोवर में तैर एवं पिशाच के समान राजसिंहासन तक पहुँचना, मेरे जीवन का सध्य नहीं है। एक समय वन जाना ही मेरा वनध्य है। मां ! मैं न मछाट के बल से अभयमीन हूँ, न भरत के अपने और महमय के वन में भा अनभिन्न नहीं हूँ। किन्तु अभी वन प्रस्थान का समय नहीं आया। मां ! अभी मुझे जान दो

‘टहरा राम !’ सुमित्रा का स्वर कुछ खरिन था ‘इतनी जल्दी न

गय थे। उन्होंने कहा था कि पिता मे मिलकर वे शीघ्र लौट आएंगे। अब तक आए नहीं राम। सुमथ काफी चिंतित लग रहे थे। जाने चिता किस बात की थी। सम्भव है सुमथ की अपनी कोई निजी चिता हो। सम्भव है, वन्त अधिक काय म व पश्चान हो उठे हों। सम्भव है राम के विषय म हा चिंतित हों।

राम के विषय म चिता ? रघुकुल के शक्तिशाली सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र व विषय म चिता ? प्रजा उनसे प्रेम करती है, मंत्री उनके शील पर मुग्ध हैं राज-परिषद् न एकमन से उनके अभियेक का निणय किया है। उस राम व विषय म किसी की चिता हा सकती है ? और राम व व्यक्तिगत शोध स सीता भली प्रकार परिचित हैं

सीता मन-ही मन पुनर्कित हो उठीं। राम के विषय म क्या चिता ?

पर वे अभी तक गौंटे क्या नहीं ? वे कही औरतो नहीं चले गए ?

सम्भव है किसी काम से या दैसे ही मिलने के लिए माता कौसल्या के पास गये हा। कौसल्या जैसी पति प्रताडिता स्त्री को राम जैसा पुत्र ही जिना ले गया। एक पल यदि पूणत स्नह शून्य था ता दूसरे पल उसकी भरपूर क्षतिपूर्ति की। पुत्र और माता का यह प्रेम, सीता के मन की सदा हा तरल कर नेता था।

राम आए। उनकी मुद्रा गंभीर थी। सीता चकित हुई—क्या इतने गंभीर हैं ? क्याचिन् राय काय सबधो कोई चिता हा। सहमा सीता के मन में आन का धारा फूट निगली। उन्होंने बन् हाठो से मुस्करात हुए नमस्कार की कोर्त से राम को दया—कही परिहास व लिए अभिनय तो नहीं कर रह ? स्वभाव से अत्यंत गंभीर होने हुए भी, कभी कभी हल्के क्षणों मे राम अपने पंम ही वीनुक भर अभिनय स सीता को परेशान कर देत हैं, और जब सीता बहुत निश्चित हो उठती है तो छिलछिलाकर हम पडत है।

आज फिर वही ही मुद्रा बनाए है।

‘‘यह किन नाटक की भूमिका है आयपुत्र। नटी का क्या रूप होगा ?’’

पहली बार राम की गंभीरता उन्नी म परिवर्तित हुई। प्रात चिता

‘दयि ! यह वन बचन परनाब कह म चला का परपरा वाता ही नहीं लवाधिक विवाह कर उपलब्ध परती का निरखार कर म चला भी है । मैंने उम परपरा का भा पावन रही किया है ।’ राम मुगलरावर मुझे लक्ष्मण ! तुम अपना आरम्भ म आब चले भूत रह हो । मैंने ऋषि विश्वामित्र का एक वचन लिया था । तुम चाहत है कि आज जय मुझ अपना वचन पूरा करने का अवसर मिल रहा है, मैं अन्य सामान्य राजकुमारों के समान सिंहासन के लिए भगड़ा बरू, अपने बधू-बाधवा परिजना की हत्या करू । लक्ष्मण ! यह वनवाग नहीं मरे जीवन का अमृत है । गवीण राजनीति से उबर व्यापक मानवीय नृत्तव्य निभान का अद्वितीय अवसर है ।

लक्ष्मण का शोक किमीन हो गया था । मनुचिन्म हाकर बोले मैं भूल गया था भया । हम वन जाना चाहिए

राम का ध्यान लक्ष्मण की बात से हटकर उनकी भगिमा पर आकर टिक गया । य आपकी बात जाना चाहिए न कहकर हम वन जाना चाहिए कह रहे थे ।

हो गया न तुम भी तयार । सीता की नृपपूर्यक योतीं य भी छन की बीमारी है ।

‘ठहरो भाभी ! लक्ष्मण पुनर्विचार करते हैं और भया ! यह भी तो हो सकता है कि आप अयोध्या का शासन अपने हाथ में ल—जम—से—जम दुष्टा कवेयी के हाथ में तो उम न ही छोड़ें । फिर अपनी सना सहित दंडक के राक्षसों और उनका सरासक रावण से जा टकराए ।

एक मांग यह भी है । राम ने स्वीकार किया कि यदि यह मांग व्यावहारिक हाता तो कदाचित् नृदकवन को इतनी लची प्रतीक्षा न करनी पत्ती । कोई भी सम्राट यत्र काय कर चुका होता । लक्ष्मण ! सैनिक अभियानों से जन-सामान्य की अमुविद्या दूर नहीं होती । सना विजय दिना यकती है त्राति नहीं ला सकती । प्रत्येक समस्या का समाधान सना नहीं है । जन त्राति जन जागति से होती है, और उसकी आकांक्षा जनता के भीतर से उत्पन्न होती है । ऊपर से थोपी हुई गनिक त्रातिया सदा निष्पन्न होती हैं । ऋषि विश्वामित्र ने बताया था मेनाओ के जान की

असुविधाएँ भी उन वनों में नहीं हैं। हम उन वनों से परिचित भी नहीं हैं। सेना को ले जाना के लिए जो प्रवध बहा होना चाहिए वह भी कदाचित् हमारे लिए व्यावहारिक नहीं है। इतनी बड़ी सेना उसके बाहनों और शस्त्रास्त्रों को ले जाना, भोजन पानी का प्रवध करना, उनके ठहराए जान की व्यवस्था करना—इतने में तो वन के वन उजड़ जाएंगे, और जिनकी रक्षा के लिए सेना जाएगी, वे ही साथ सेना के विरुद्ध हो जाएंगे। वैसे भी अपने राज्य में इतनी दूर इतने बड़े सैनिक अभियान में विजय प्राप्त करना असंभव-सा है। गुरु विश्वामित्र ने कहा था, मुझे अकेले जाना होगा। राजसी वेश में जाऊंगा, तो जन साधारण दूर से प्रणाम कर लौट जाएंगे। जन-साधारण अपनी असुविधाओं की बाणी नहीं देता—विशेषकर शासक के सामने। वह डरता है कि उसके असुविधा वणन का शासन अपनी निष्ठा विरोध अथवा घृणा-द्वेषन में माने। यह कार्य केवल निम्नाय, साहसी बुद्धिजीवी कर सकते हैं वे द्रष्टा, ऋषि मुनि जो राज्याश्रय का सुच्छ मान, वनों में अपने आश्रम बनाकर वास कर रहे हैं। वे लोग राज्याश्रय को महत्व नहीं देते अतः वे राज्य में अपनी रक्षा की याचना करने भी नहीं आएंगे। गुरु ने स्पष्ट कहा था, मुझे तापम वन में उन ऋषियों के निकट जाकर, उनमें समान धरातल पर मिलना होगा। और उनकी याचना के बिना ही उनकी रक्षा करनी होगी। यदि किसी समय मेरा व्यक्तिगत वन तथा निवासियों का जान उनकी रक्षा में असमर्थ हुआ, तो सेना की आवश्यकता पड़ेगी। किंतु लक्ष्मण ! वह सेना अयोध्या की वतन भागी सेना नहीं होगी।

“कौन-सी सेना होगी ?” लक्ष्मण हैरान थे।

“कौन-सी सेना आकर किसी के लिए कोट घुड़ जीत दे ता निश्चित रूप में वह कार्य नहीं हो सकता जो जन-सामान्य में जागृति लाकर, उन्हीं का प्रबुद्ध बनाने के पीछे जाग्रत जनता के वाच में से तयार की गयी मना से हो सकता है। लक्ष्मण ! मैं नहीं जानता कि मुझे सेना की आवश्यकता कहाँ पड़ेगी कब पड़ेगी कौन-सा मना मरी महायत्ना के लिए प्रस्तुत होगी। किंतु जिस कार्य के लिए राम दंडक जा रहा है वह यही है कि प्रत्येक जन साधारण अपनी रक्षा के लिए प्रबुद्ध हो सके।

स्वाश्रित हा। उसमें प्राण फूटना मेरा काम है—उन्हें भाग दिखाना उनका नेतृत्व करना। जब जनता जाग उठती है तो बड़ स-बड़ा अत्याचारी भी उसके सम्मुख टिक नहीं सकता। इसलिए मैं तापस वेग में एकाकी ही बने जाऊंगा।

यह सब ठीक है भैया। लक्ष्मण के मन में अब भी अडचन थी फिर भी अयोध्या का राज्य कबेयी के हाथों में छोड़ इस प्रकार निष्कासित होकर जाना तो शाभा नहीं देता। सत्ता पर अधिकार कर उसे किसी अधिन व्यक्ति का सौंपकर भी तो बने जाया जा सकता है।'

राज्य जन-वत्स्याण के लिए हाना चाहिए, राम वाले प्रजा के दमन और हत्या के लिए नहीं। अतः राज सिंहासन से अनावश्यक चिपकना मेरे लिए आसक्ति में अधिक कुछ नहीं है, और आसक्ति सदा अ-याय की जननी होती है। और लक्ष्मण! 'राम मुसकराए एक बार स्पष्ट हो गया कि बाधम होकर नहीं मैं स्वच्छा में बने जा रहा हूँ तो मेरे प्रियजन मुझे कभी बने जाने नहीं देंगे। माता वीमल्या सिर पटककर प्राण दे देंगी किंतु मुझे जाने नहीं दगी। भ्रम बना रहने दो

लक्ष्मण के विरोध और प्रश्न मिट गए, विघ्न और जिनासाए पिघल गयी। मन में एक उत्साह और उत्सास छा गया। आखों में खमक आ गयी किन्तु आनंद रहूंगा भैया। सिद्धाश्रम-यात्रा की स्मृति आज तक मेरे मन में कभी-कभी टीस उठती है।

लक्ष्मण अपने भीतर स्मृतियाँ में खो गए।

राम लक्ष्मण के मन की बात समझते रहे और मुसकराते रहे। फिर बाधा देते हुए बोले किंतु लक्ष्मण! वनवास का आदेश केवल मुझे हुआ है।'

ठीक है। लक्ष्मण ने वीनुव भरा आखों से भाई को देखा सुवराज्याभिषेक करवाने हुए केवल मुझे वाली भाषा बोलत तो कोई बात भी थी। वनवास के लिए केवल मैं कुछ शोभा नहीं देता। गुरु विश्वामित्र ने भी केवल आपका ही मांगा था सम्पाट ने भी केवल आपको ही भेजा था—किंतु यह अकिंचन फिर भी साथ गया था।'

राम हस पड़े 'तो तुम साथ आओगे ही?'

‘काई विकल्प नहीं।’ लक्ष्मण भी हस पड़े, ‘मेरी मा कहती हैं, भैया राम का साथ कभी मत छोड़ो।’

राम गंभीर हो गए, ‘तुम्हें साथ ले जान म मुझे कोई आपत्ति नहीं है, सीमित्र ! साथ रहोगे तो सुविधा भी रहेगी और सगति भी। किंतु ”

‘क्या, क्या ?’

‘जिन परिस्थितियों में मैं अयोध्या छोड़ रहा हूँ, वे असाधारण हैं। यहां द्वेष और प्रतिहिंसा का विष फैला हुआ है। यदि तुम भी मेरे साथ चले जाओगे तो पीछे माता कौसल्या और माता सुमित्रा के मरण-शोषण और उनकी सुरक्षा का दायित्व किस पर होगा ? यदि पीछे अयोध्या में रहकर, तुम उनकी देखभाल करो, तो मैं निश्चित होकर दड़क जा सकूंगा।’

‘नहीं, भैया।’ लक्ष्मण ने निषेध की मुद्रा में सिर हिला दिया, इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। एक तो सम्राट् अभी विद्यमान हैं, फिर यदि पीछे भरत हैं, तो शत्रुघ्न भी हैं। माताओं का अनिष्ट नहीं हो पाएगा। अपने भरण-शोषण के लिए उनके पास पर्याप्त धन है। आप चाह तो जाने से पहले कुछ और व्यवस्था भी की जा सकती है। रत्ना के लिए उनके पास विश्वसनीय सैनिक और सेवक हैं। और फिर चाहे माता कौसल्या न हो पर माता सुमित्रा दोनों की रत्ना में पूणत समय हैं। मेरी मा कहती हैं, वह क्षत्राणी ही क्या, जो अपनी रत्ना न कर सके।’

राम अपनी गंभीरता छोड़ नहीं पाए, ‘दूसरा चिंतनीय विषय यह है, लक्ष्मण ! कि भौंह वर्षों पहचान जब तुम वन से लौटोगे तब तक तुम्हारा विवाह-योग्य वय व्यतीत हो चुका होगा ”

लक्ष्मण ठहाका मारकर हस पड़े, जिस वय में पूज्य पिता जी ने कन्यो से विवाह किया था, क्या मेरा वय उससे भी अधिक हो जाएगा ?

राम भी स्वयं को रोक नहीं पाए। खिलखिलाकर हस पड़े।

‘तो फिर सेना की बिता क्यों करते हो देवर।’ सीता न हसी म मम्मनित हान हुए कहा ‘तुम और तुम्हारी पत्निया की सना क्या नहीं कर पाएगी ?’

लक्ष्मण बिना लेने चले गए और सीता विभिन्न व्यवस्थाओं में लग गयीं।

राम पुनः अनमने हो गए। एक प्रश्न तब आरी के समान उनके मस्तिष्क के तंतुओं को आहत कर रहा था।

आखिर राज्य प्राप्ति का प्रयत्न कोई क्यों करता है? शासनाधिकार किसलिए होता है? राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता ही क्यों पड़ती है? राम को राज्य का मोह नहीं है। उन्हें धन धान्य संपत्ति विलास ऐश्वर्य—किसी वस्तु का मोह नहीं है। वे तो स्वयं ही ज्वर की प्रतीक्षा में थे कि किसी प्रकार इस ज्वाल से निकल कर वनो में जा सकें जहाँ मानवता का वास्तविक संघ घल रहा है। यदि उन्हें राजसी जीवन का किसी एक पक्ष से भी मोह होता, तो वनो में जाकर वे ऋषियों की रक्षा का संकल्प क्यों करते?

पर कंकेयी ने भरत के लिए राज्य क्या चाहा है?

कंकेयी ने शायद यह सोचा है कि राज्य राम को मिल गया तो भरत के पास धन नहीं रहेगा। उस भोग विलास की सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाएगी। सेवक सेविकाएँ नहीं रहेंगी। सुख के साधन नहीं रहेंगे। पर राम को यह सब नहीं चाहिए इसलिए भरत के राजा बनने पर राम का कुछ नहीं छिनेगा। राम तो स्वेच्छा से धन की माया को छोड़ रहे हैं।

किंतु शासनाधिकार धन प्राप्ति के लिए होता है। धनाजन की एक व्यवस्था बना दी जाती है और शासन उस व्यवस्था की रक्षा करता है। तो शासनाधिकार मूलतः किसी विशिष्ट आर्थिक ढाँचे की सुरक्षा के लिए होता है। एक विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था एक विशिष्ट शासन तंत्र की अपेक्षा करती है। राजनीतिक व्यवस्था के बदलते ही आर्थिक व्यवस्था और उस आर्थिक व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था भी बदल जाती है।

कंकेयी ने राज्याधिकार कदाचित् भरत के भोग के लिए चाहा है। यदि यही यथार्थ है तो भरत भोगी राजा होकर रहेगा। कृत-यपरायण शासक वह कदापि नहीं बनेगा। और यदि वह अपना दायित्व नहीं समझेगा तो वह जनता का रक्षक न होकर उसका शोषक होगा।

राम वन क्यों जा रहे हैं? विश्वामित्र तथा अन्य ऋषि पूजा तथा हिंसा पर आधारित राज शक्तियों का नाश क्यों चाहते हैं?—राम के मन

म बहुत सारे प्रश्न उभर रहे थे—बहुत सारे विचार—उहापोह

विश्वामित्र क्या चाहते थे ? यही तो कि वे अपने आश्रम की चारा व आदान प्रदान का केन्द्र बना सकें। सिद्धाश्रम के अड़ोस पड़ोस स बसने वाले नीगो—आय नाग शरर विरात, भील—यहा तक की संभव ही ती राक्षसा को भी सुमस्कृत कर सकें। सबको मानव-ममता के आधार पर सम्मानपूर्वक आजीविका अर्जित करने और अपने व्यक्तित्व व पूण विकास का अवसर दे सकें। पर वे सफल क्या नहीं हो सके ? कौन रोक रहा था उन्हें। यदि बहूलाश्व के स्थान पर वहा कोई "यायी शासन प्रतिनिधि" हाना, तो विश्वामित्र क्या इतने अगहन होत ? क्या गहन की वैसी अमानुषिक दृष्टि होती ? क्या गगन व परिवार की स्थियों के साथ ऐसा अत्याचार हो पाता ? यह सब-कुछ केवल इसलिए हुआ क्योंकि विश्वामित्र के पास राजनीतिक शक्ति नहीं थी।

अगस्त्य, मुतीक्ष्ण शरभग, भरद्वाज घास्मीकि—सभी ऋषि अपनी संपूर्ण संपत्त्या बुद्धि ज्ञान शक्ति एवं आस्था व साथ मानवता के विकास स दत्तचित्त हैं—किंतु जन-जातियों के जागरण से, उनका सक्षम और स्वावलंबी हो जाने में राक्षसा द्वारा उन्हे शोषण की समावना ससप्त हो जाएगी। ऐसी स्थिति स राक्षसा की राजनीतिक शक्ति, ऋषि-ऋषियों का समर्थन कैसे कर सकती है ? राक्षस अपने संपूर्ण शासन-तंत्र को इन ऋषियों के विरोध स लगाए हुए हैं।

सहस्राजुन आय सम्राट था—महान भागव ऋषिया का शिष्य। किंतु अपना शक्ति के मद स वह राक्षस हो गया था—रावण का मित्र। स्वयं भागव परशुराम महिम्नी स उपस्थिति होत हुए भी तब तक कुछ नहीं कर सके, जब तक राजनीतिक शक्ति हैहयरज के हाथ में थी। अतत उन्हें उम अ-यायी राजनीतिक शक्ति को ही मिटना पडा। एक कातवीय सहस्राजुन ही क्या उन्होंने अनेक सत्रिय राजपरिवारों का समूह नाश किया। जब राज्य अ-याय तथा अत्याचार का प्रतीक बन जाए, ती उगका मिटना अवश्यभावी हो जाता है।

काई मदेह नहीं कि बड़े यत्न स विकसित की गयी प्रगतिशील "यायपूण, मानवीय मस्कृति तथा सामाजिक व्यवस्था की भी प्रतिकूल

प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी राजशक्ति अत्यंत षोड स ही समय में समाप्त कर सकती है। अतः मानव समता के सिद्धांत पर आश्रित 'यायपूण समाज' के विकास के लिए पहली शत है राजनीतिक शक्ति का हस्तगत करना

और राम क्या कर रहा है ? हाथ में आयी नोमन की राजशक्ति, भरत के हाथ में देकर उसके मांग से हटकर चौदह वर्यों के लिए बहुत दूर चने जा रहे हैं। व रावण की राक्षसी सत्ता के नाश के लिए बन जा रहे हैं—और यदि उनकी अनुपस्थिति में ककेयी तथा भरत ने मिलकर कोसल में ही राक्षसी राज्य स्थापित कर लिया था ? कौन कह सकता है कि प्रति हिंसा में उदघात ककेयी के हाथ में आकर 'गामन' याय की परंपरा से हट नहीं जाएगा ? राम भरत को जानते हैं। भरत पर उह पूरा विश्वास है—वह अयायी नहीं होगा। किंतु जानते ही वे ककेयी को भी थे। आज से पूर्व कौन कह सकता था कि ककेयी इतनी दूर हो सकेगी। किसी अय घटना के कारण भरत में भी अपनी मा के समान प्रतिहिंसा और घृणा का विस्फोट नहीं होगा—कौन कह सकता है। बिना उचित परीक्षण के भरत के विषय में कुछ कहना संभव नहीं है। यदि ककेयी ने भरत के विलास और भोग के लिए राज्य चाहा है और भरत ने उसका सबमुच बना ही उपयोग किया, तो अयोध्या और लका में कोई भेद रह पाएगा क्या ? लका तो फिर आर्यावत्त से बाहर दूर समुद्र के पास बसी हुई है—अयोध्या आर्यावत्त के मध्य में है। अयोध्या में ककेयी अथवा भरत द्वारा स्थापित राक्षसी राज्य अधिक घातक हो सकता है।

सहसा राम चौक उठे—ककेयी की बात और है। उसमें तीव्र स्नेह और घृणा का विरल सम्मिश्रण है। उदात्त भावनाओं के जागने पर वह अत्यंत उदार और क्रूर क्षणी में हिंस्र तथा अग्रम हो सकती है। पर क्या उह भरत पर भी विश्वास नहीं है ? क्या उनकी 'यक्ति' की परख इतनी कच्ची है ?

कुछ भी हो भरत की पहचान आवश्यक थी। भरत पर उहोने कभी सदेह नहीं किया था। उनके चरित्र उनकी नि स्वायत्ता उनकी कृतव्य परायणता उनकी मानवीयता—किसी भी सदम में राम को तनिक भी सदेह नहीं था। पर फिर भी ककेयी के व्यवहार ने राम की चेता दिया था।

अब उह प्रत्येक पग पर सावधान रहना होगा। किसी को भी उसके बाहरी रूपाकार व्यवहार तथा वार्तानाप के आधार पर स्वीकार नहीं करना होगा। सका परीक्षण और मावधानी यदि भरत परीक्षण म धरे उतरे तो उनके राज्य म कोसल की जनता का अहित नहीं होगा। ऐसी अवस्था म राम नि शक दठक जा सकेंगे पर उम परीक्षण से पहले उह अयोध्या म अपनी अनुपस्थिति के समय तक के लिए अनक प्रबध करने होंगे माता कौसल्या तथा सुमित्रा की रक्षा का प्रबध। अपने सेवका मित्रा समचकों गुप्तकाक्षियों की रक्षा तथा भरण-पोषण का प्रबध। और राजनीति को सुभाग पर चलाए रखने का प्रबध सूचनाए प्राप्त करने का प्रबध सह सारी व्यवस्था किए बिना राम अयोध्या नहीं छोड सकत

थोडी देर म लक्ष्मण लौट आयेगे। तब वन प्रस्थान की तयारी आरम्भ हो जाएगी। राम को उमम पूर्व ही व्यवस्था कर लेनी चाहिए व्यवस्था किस प्रकार की व्यवस्था? पिता बड हैं—अशक्त। गुरु वसिष्ठ बूढ भी हैं अशक्त भी और मर्यादावादी राजभवन भी। लक्ष्मण उनके साथ ही वन जा रहे हैं। भरत के विषय म अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। शत्रुघ्न भरत के प्रभाव म है। तो फिर कौन? भाना सुमित्रा? वे अनेली सक्षम नहीं होंगी। उनकी सहायता के लिए कौन? राम की आखो के सम्मुख अनेक सजाए अनक आकृतिया उभरने लगी गुरुपुत्र सुपन माता कौसल्या के गुमाकाक्षी यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के आचार्य भूत और सचिव चित्ररथ कठशाखा और कलाप शाखा के दडधारी ब्रह्मचारी माता कौसल्या के प्रिय भेखलाधारी ब्रह्मचारी गग गोत्रीय ब्राह्मण त्रिजट लक्ष्मण के विभिन्न युवा-मण्डल—समस्त कमचारी किसी एक का नहीं, इन सबको सामूहिक रूप से दायित्व सौंपकर कदाचित राम निश्चित होकर जा सकें

‘सोते।’

‘जी।’

‘किसी को माता सुमित्रा के महल मे भेजो और लक्ष्मण को कहलवाओ कि लौगत हुए गुरु वसिष्ठ के आश्रम मे रहे हुए महात्मा जनक द्वारा हम

लिए गए दिव्य धनुष दिव्य बरख तूनीर, गुण भूषित शर त्रय विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त दिव्यास्त्र तथा अन्य वस्त्रास्त्र अपने साथ लेत आए। साथ ही सुयज्ञ चित्ररथ तथा विजय को गदेन भिजवा दें कि मैं उनसे भी घृताशीघ्र मित्रता चाहता हूँ। राम रक्त और तुम भी माताआ से मिल आओ। मैं पुनः उनसे सामन पड़ना नहीं चाहता।

“जी अच्छा।”

सम्मन लोट लाता बरख के स्वयं साधारण अस्त्र वस्त्रा तथा दिव्यास्त्रा से लदे हुए थे। बरख उनसे साथ आनमान गुण और समिधा चित्ररथ तथा अन्य मित्र भा बहूत गार अस्त्र वस्त्र गभान हुए थे। वगनाया सद्धमन अपने साथ एक गणूण वस्त्रागार ही उठा लाए है।

राम ने गहना अपने मित्रा का स्वागत किया और उन्हें आगत दिए।

शस्त्रास्त्र एक ओर रखकर बैठ गए। आगनुवा से तस्मिन्नी का भी बहुर पर न हाग या न उरनास। सबके मा भारी थे।

आपने सुना भया। ‘सम्मन जान।

क्या?’

अभी-अभी कुछ राजाशाखा की घोषणा की गयी है। सद्धमन ने बताया। उनके अनुगार सम्राट के अग रक्षक दल का अधिकार-और सम्राट के राज प्रासाद तक ही सीमित रहेगा, नगर का दायित्व पुनः माघाजय की तीसरी स्थायी सेना का होगा। उन्हें वापस मुलान के लिए चर दोषा लिए गए हैं। तब तक नगर रक्षा का दायित्व कैकयी के अग रक्षक करेंगे। निजी सेनाआ पर से नियंत्रण हटा लिए गए हैं तथा वाय समिति-सचिव पुष्पल को मुक्त कर पुनः अपने पद पर आसीन किया गया है।

‘अर्थात् सम्राट के सभी आदेश उलट दिए गये हैं। राम मुसकराए इसमें आश्चर्य की क्या बात है सीमित्र। यह तो देर-सागर से सुनना ही था।

‘किंतु हम क्या सुन रहे हैं राम।’ सुयज्ञ बोल।

‘तुमने ठीक सुना है मित्र। राम मुसकराए।

‘पर, राम । ”

‘सुनो बधु !’ राम न सुयन की बात काट दी, ‘मेरी अशिष्टता क्षमा करना, किंतु समय ही ऐसा है। यह निश्चित हो चुका है कि हम लोग बन जा रहे हैं। इस सदन में मुझे समझाना, बाधा देना या साथ चलने का आग्रह व्यर्थ है। तुम लोग अयोध्या की ओर से निश्चित होकर जाने में मेरी सहायता करो। मैं जा रहा हूँ, किंतु माता कौसल्या माता सुमित्रा अयोध्या की प्रजा तथा अयोध्या का राज्य पीछे छोड़ जा रहा हूँ। इन सब का दायित्व तुम लोगों पर है। ऐसा न हो कि लौटूँ तो पाऊँ कि अयोध्या नगरी भी दहकारण्य बन चुकी है।’

“स्पष्ट कहो राम ! सुयन बोल ‘हमसे क्या अपक्षित है ?’”

तुम्हें देखना है मित्र ! कोई अवश सघाट दाना माताओं तथा अयोध्या की प्रजा के साथ दुर्व्यवहार न करे। सबका भरण-पोषण ‘यायोचित’ ढंग से हो। अयोध्या में मानवीय समता के आधार पर ‘यायपूज’ राज्य हो। महा स्वर्ण हिंसा तथा मदिरा का प्रभुत्व न हो। वर्ग भेद, साम्प्रदायिकता तथा अन्य मानवीय विभाजनो की प्रोत्साहन न मिले जिसमें मानव द्वारा मानव का शोषण बन। प्रजा तथा राज्य की उचित रक्षा हो। विलास का ताड़व यहाँ न हो। ऐसा करने के लिए, मित्र सुयन ! अपने सहायक सहयोगी बुद्धिजीवी वर्ग के प्रभाव का सदुपयोग करेंगे। मित्र चित्ररथ ! तुम मंत्रियों अमात्यो, राज-परिषद् व सदस्यो तथा राजपुरषा परदष्टि रखाय। आवश्यक होने पर उह सतक करेंगे और उह उचित मांग का द्रुगित करोगे। और मित्रो ! ” वे अन्य आगतुको की ओर मुड़े ‘सामान्य प्रजा का सुख दुःख देखन उनसे संपक बनाए रखने, उसकी रक्षा करने और उसकी बात मुक्त तब पहुंचान का कार्य मैं आप युवा सगठनो के अध्यक्षों, यजुर्वेदीय तत्तिरीय शाखा के आचार्य कठशाखा तथा कलाप शाखा के दंडधारी ब्रह्मचारियों तथा माता कौसल्या के प्रिय मेखलाधारी ब्रह्मचारियों पर छोड़ रहा हूँ। आप लोग जन-सामान्य से मिलते जुलते हैं संपक बनाए रखते हैं—आपके लिए यह कार्य कठिन नहीं होगा।’

‘राघव ! हम सह्य इस दायित्व को स्वीकार करते हैं।’ चित्ररथ बोले, ‘यह आपका ही नहीं, हमारा अपना काम है। आप चिंता न करें।’

आपकी सावधानी मरणा उपनि है। पर यदि कोई अनिष्टकारी स्थिति आ जाए और हमारे गमान न ममल तो उसकी सूचना आपको बत दी जाए ?'

राम मुग्धराए आप सावधान रहने सा ऐसी स्थिति नहीं आणी। आ गयी तो लक्ष्मण को अयोध्या सीटना हागा। मते सरयू पार करत ही अयोध्या से बाहर त्रिजट का आश्रम है। उम भी मैंने बुनाया है। वह किनी भी क्षण आ सकता है। आप उन तब सूचना पहुँचा दें। वह उम सूचना को अगले पड़ाव तक पहुँचा देगा। इस प्रकार एक एक पड़ाव घमती हुई यह सूचना मुझ तक पहुँच जाएगी।

मुग्ध और चित्ररथ ने गिर हिला लिए। उनका मन कुछ हल्का हो गया था। राम उनसे दूर अवश्य जा रहे थे किन्तु उनसे असापबत हो जाने की आशंका नहीं थी।

राम पुन बोले मुग्ध ! व्यवस्था का माझा काय तोप है। अपन कमचारियों के व्यवस्था लिए मैंने पर्याप्त धन मौप दिया है। फिर भी चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थिति में मरे कमचारियों मित्रों, मयधियों अयोध्या का आश्रम तथा जन-कल्याण में सभी समस्याओं को आधिक मकट न होना पड़े। इसलिए तोप धन तुम मेरी ओर से ग्रहण करो, उसकी रक्षा करो और अवसर देखकर उचित व्यय करो। और मित्र ! जानकी अपनी मयी आर्या समिधा को उपहारस्वरूप कुछ हार सुवर्ण सूत्र, करघनी, अगद तथा केयूर देना चाहती हैं। आर्या समिधा उन्हें स्वीकार करें। अपना हाथी शत्रुजय मैं तुम्हें अपनी स्मृति-स्वरूप दिए जाता हूँ।"

राम ने धमकर एक दृष्टि सार मित्रों पर डाली, और कुछ भारी स्वर में बोले अल्ला मित्री ! विदा। महा की व्यवस्था कर, अपने-अपने घर चले जाना। केवल चित्ररथ तथा मुग्ध हमारे शस्त्रास्त्रों के साथ त्रिजट के आश्रम पर पहुँच जाएँ। त्रिजट अब तक आ नहीं सका। उससे अब उसके आश्रम में ही मिलूंगा।"

उन्होंने मुड़कर सीता और लक्ष्मण की ओर देखा 'चलो ! पिता से विदा लें।'

सम्राट से विदा लेने के लिए जाते हुए राम, सीता तथा लक्ष्मण राज-मार्गों से पदल निकले। उनके मित्रों, सुहृदों तथा कमचारियों का झुंड उनके पीछे था।

समाचार फैल चुका था। मार्गों पर अवार भीड़ एकत्रित थी। प्रत्येक भवन के द्वार तथा गवाक्ष खुले थे। गरजते समुद्र के समान विराट जन-समुदाय एकत्रित था। प्रत्येक गली में निकन निकलकर भीड़ उस जन-समुदाय में मिनती जा रही थी। कुछ लोग मौन थे कुछ धीरे धीरे बातें कर रहे थे, कुछ चीख चिल्ला रहे थे। सब आर एक प्रकार का क्षोभ, एक आवेग एक क्रोध और विरोध विद्यमान था। किंतु कोई नहीं जानता था कि उसे क्या करना चाहिए वह क्या करना चाहता है।

राम ने सतक दृष्टि से लक्ष्मण को देखा, 'सौमित्र ! इस जन-समुदाय को देख रहे हो। यह आवेश भ है, स्वयं को अक्षम पाकर असंतुष्ट और पीड़ित भी है। यह जन-समुदाय अति प्रज्वलनशील और विस्फोटक है। दखना, कहीं अपने व्यवहार अथवा वाणी से इसे उबसा मत देना नहीं तो विप्लव हो जाएगा। सारी अवस्था समाप्त हो जाएगी। माता कैंकेयी अपनी प्रतिहिंसा में भून गयी कि शासक को बनाने और पदच्युत करने में, प्रजा की इच्छा बहुत महत्वपूर्ण तत्त्व है। प्रजा के इच्छा के विरुद्ध वे भारत को ता क्या मुझे भी अयोध्या का सम्राट नहीं बना सकती। यह घरेलू झगडा भी राजनीतिक आयाम मिलत ही विप्लव में बदल जाएगा।"

इच्छा तो होती है कि धनुष लेकर इस समुदाय के आगे-आगे चलू और कवची के महन पर पहुंच कर बस एक बार खलकार दू।" लक्ष्मण बोले 'किंतु वन जाने के लिए शांत रहना ही उचित है।'

वे लोग बढ़त रहे। उनके साथ-साथ भीड़ भी बढ़ती गयी। कैंकेयी के महन तक पहुंचते-पहुंचते असह्य लोग राम के पीछे चन रहे थे।

महल में प्रवेश करने से पूर्व राम भीड़ को आर मुड़े, और ऊंची आवाज में बोले 'मित्रो ! मैं आपके प्रेम और स्नेह का अभिनंदन करता हू। आप अज्ञान न हो। माता कैंकेयी ने मुझे वन भेजना चाहा है, और पिता ऐसी आज्ञा देना नहीं चाहत। समाधान यही है कि वन जान का

दायित्व मैं अपने ऊपर ले लू। मैं वहीं कर रहा हू। सीता और लक्ष्मण मरे साथ जा रहे हैं। अयोध्या का दायित्व मैं आप पर छोड़ रहा हू। राजा कोई भी हो किंतु अयोध्या आपकी है। राज्य शासक का नहीं जनता का होता है। आप सजग रह सचेत रह। अपनी अयोध्या की रक्षा करें और देखें कि अयोध्या का कोई भी गामक अनीति के भाग पर चल दभ अथवा विलास में पड़, जन विरोधी शासन न कर।

राम ने हाम जोड़ मस्तक झुका प्रजा का अभिवादन किया, और महान क प्रवेश द्वार की ओर मुड़ गए। अपनी पीठ के पीछे प्रजा के सहस्रा कठा स व अपनी जय जयकार सुन रहे थे।

मुमंत्र व माध्यम से सूचना भिजवा जिस समय राम सीता और लक्ष्मण क साथ भीतर प्रविष्ट हुए कैकेयी के वक्ष म प्रात काल जैसा एकांत नहीं था। वहां माता कौसल्या, माता मुमित्रा तथा सम्राट की अय रानिया उपस्थित थी। वसिष्ठ भी विराजमान थे। राज-परिषद के मुख्य सदस्य मंत्री, अमात्य तथा मनापति भी बतमान थे। सम्राट पहने के समान पृथ्वी पर नहीं पड़े थे उह पलंग पर लेटा दिया गया था। ऐसा लगता था जैसे राजपरिवार और राजदरबार के सभी मुख्य यकिन सम्राट को घेरकर किसी महत्त्वपूर्ण घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे।

राम सीता तथा लक्ष्मण ने आखें मूंदे नि स्पद पजे दशरथ को प्रणाम किया।

राम ने मद स्वर म कहा पिताजी !

दशरथ कुछ कहने का साहस बटोरें उससे पूव ही अनेक गारी-कठा से सस्वर रुदन और चीत्कार फूट पडा।

राम ने दखा—व सब सम्राट की सुदरी युवती पत्निया थी जिनके साथ सम्राट ने कभी आर्क्षित हाकर अपनी इच्छा से कभी किसी के प्रस्ताव पर अथवा किसी की मट स्वीकार करने के लिए विवाह किए थे। राम ने सम्राट के एस अनेक विवाह अपने शशव से देखे थे—जिनम एक स्त्री के साथ विवाह कर, उस दा तीन दिन अपने महल मे रख राजसी अत पुर म धकेल दिया जाता था। अत पुर म जाकर न के किसी की

पुत्रिया थी न बहनें न पत्निया—वे अत पुर की स्त्रिया होती थी। उनके भरण-पोषण का भार राजकोष पर होता था। और किसी का उनके प्रति कोई दायित्व नहीं था।

राम ने जैसे-जैसे होश सभाला था उनकी कष्टना अपनी इन तथा-कथित माताओं के प्रति बढ़ती चली गयी थी। उा स्त्रिया की स्थिति अत्यंत विचित्र थी—न वे बदिनी थी न स्वतंत्र। वे सौभाग्यवती विवाहिताएं थी, किंतु पति बिहीना। वे रानिया थी, किंतु राजपरिवार की सदस्या के रूप में उनमें से किसी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। अत पुर में कोई काम नहीं था अत पुर से निकल भागना उनके वश का नहीं था। लगड़ी बिल्ली के समान थ घर के भीतर ही शिकार करती रहती थी। परस्पर एक दूसरी की सहायक होने के स्थान पर एक-दूसरे के विरुद्ध पडयान रचकर, परिवेग को विपला करती रहती थीं

साडका वन में स अनेक अपहृता बदिनी मुवतिमो को मुक्त करा कर, राम इन रानिया के प्रति बिगेष रूप में सदय हो गए थे। उन्होंने इनके विषय में कई बार सोचा था—एक पुरुष के लिए इतनी स्त्रियों की पत्नी का मान-सम्मान, प्यार और अधिकार देना संभव अथवा असंभव तथा अप्राकृतिक था। जिस प्रकार अयामपूर्व अपनी आवश्यकता से अधिक घन एकत्रित कर साथ घन, उस पर बैठकर अपना या दूसरो का केवल अहित किया जा सकता है वैसे ही इतनी पत्निया को एकत्रित करन केवल सम्राट न मानवीय अयाम किया था वरन् अपना और उनका अहित भी किया था। यदि कहीं में स्त्रिया अपहृत कर बलात् लायी गयी हाती उह बलपूर्वक अवरोध में रखा गया हाता तो राम उह सब से मुक्त करा चुके हात। किंतु बठिनाइ यह थी कि वे सम्राट की विवाहिताएं थीं। वे मुक्त होना नहीं चाहती थी पत्नी का अधिकार पाना चाहती थी—जो असंभव था। उनका बघन न तो अत पुर की दीवारों का था, न सम्राट के पतित्व का। उह उनके अपने सत्कारों में बढी कर रखा था। शशक से उनके मन में बठा गया था कि नारा का सबसे बडा सौभाग्य उसका मुहाग है। पति उसका परमेश्वर है, चाह पति के नाम पर उन्हें अयोग्य में अयोग्य अमानव के साथ बाध दिया जाए। आज यदि सम्राट इन स्त्रियों को मुक्त

भी कर दें उह अपनी पत्निया मानने से इनकार भी कर दें—तो य स्त्रिया उसे अपना सौभाग्य नहीं मानेंगी वे प्रस न नहीं होगी। वे परित्यक्ता की पीडा झेलेंगी और परित्यक्ता की पीना कभी-कभी विधवा की पीडा से भी अधिक घातक होती है। राम इन स्त्रियो के सस्कार नहीं बदल सके, किंतु अगली पीढी को वे इन गलत सस्कारों का विरोध करना अवश्य सिखाएंगे उनके भीतर विद्रोह जगाएंगे।

राम ने सम्राट की पत्नियो को करुणा भरी दृष्टि से देखा और बोले, देवियो ! मुझे जाना ही होगा। अपना ध्यान रखना और 'याय' के प्रति सजग रहना।'

सम्राट ने हल्के से अपनी आँखें खोलीं और ढवढबा आयी उन आँखों से राम को देखा 'पुत्र राम ! मुझमें शक्ति थी तो विवेक नहीं था। अब समझ आयी है तो कम शक्ति नहीं है। जिनसे प्रेम करना चाहिए था उह सदा दुस्कारता रहा, और जो दुस्कारने योग्य थे उह गले में लगाता रहा।' सहसा दशरथ ने फिर आँखें बंद कर ली जसे राम की ओर देखना उनके लिए पीडादायक हो 'मन्त्री सिद्धार्थ ने कहा कि वे मेरा समस्त धन कोष अन भंडार अयोध्या के कुशल वास्तुकार तथा मेरी चतुरगिणी सेना लेकर राम के साथ जाए। राम की समस्त मनोवांछित भोगों से संपन्न कर अयोध्या से भेजा जाए

नहीं।' कैंकेयी ने भीत्कार ने सम्राट की वाणी को भूँ कर दिया परंपरागत उत्तराधिकार में मिले हुए राज्य को इस प्रकार लुटाने का अधिकार किसी को नहीं है—स्वयं सम्राट को भी नहीं। वे अपना राज्य केवल अपने युवराज को ही दे सकते हैं। मैं स्वयं को इस प्रकार प्रवर्चित होने नहीं दूंगी।

'धिवकार !' सब कुछ चुपचाप सुनने वाले सुमित्र महसा अपना नियंत्रण खो बैठे। उनके मुख का वर्ण क्रोध से विकृत हो उठा। आँखों से जमे चिनगारिया फूट रही थी।

सूत ! कैंकेयी का स्वर स्पष्ट तथा दृढ़ था 'जितना चाहो धिवकारो। किंतु मनचाहा वर मागने का अधिकार मुझे है। सम्राट या तो मुझे वर दें या न दें। वर देकर अनदिया करने का अधिकार उह मैं

नहीं दूगी। यदि वे मुझे वर देते हैं तो राम अभी यही वल्कल धारण कर वन जाएंगे।

ककेयी ने अपने भडारी को मकेत किया, और वह अगले ही क्षण अनक वल्कल वस्त्र लेकर उपस्थित हो गया।

राम ने किसी की ओर ध्यान नहीं दिया। वे स्थिर पगा से आगे बढ़े और उन्होंने भडारी के हाथों से वल्कल ल अपन नाप के वस्त्र छाट, धारण कर लिये।

लक्ष्मण ने साथ-साथ वल्कल छाटते हुए कहा, 'मुझे नहीं मालूम था कि इस महल में वल्कलो का लघु उद्योग चल रहा है। इतने वल्कला मे तो मारी अयोध्या वन भेजी जा सकती है।'

ककेयी उ-ह देखती भर रही कुछ बोली नहीं।

लक्ष्मण के हटते ही सीता आगे बढ़ी। उन्होंने पहला ही वस्त्र उठाया था कि अब तक के मोन साधी गुरु वसिष्ठ पहली बार बोले 'ठहरो, बेटी! वनवास राम को मिला है। रघुकुल की पुत्रवधू को वल्कल धारण कर वन-वन भटकने की अनुमति मैं नहीं दूंगा।' गुरु, मन्नाड से सवोधित हुए, 'सम्माद्! राम वन जाए। उनकी उत्तराधिकारिणी स्वरूप, उनकी अनुपस्थिति में सीता अयोध्या का शासन मचाये।'

सीता ने तमककर अपना चेहरा ऊपर उठाया और जैस अटपटाकर बोलीं, गुरुजनों के विरोध के लिए मुझे जमा किया जाए। उत्तराधिकार के नियमों का ज्ञान मुझे नहीं है। जहां राम रहेंगे, मैं भी वहीं रहूंगी। पत्नीत्व का अधिकार मुझे मिले, यहा मेरी प्रायना है।"

सीता ने गुरु की ओर मुड़, दानों हाथ जोड उन पर अपना भस्तक टिका दिया।

राम ने अपनी दाहिनी हथेली ऊची कर मोन का मकेत किया और ऊचे स्वर में बोले, 'विवाद और प्रस्तावा का अवकाश नहीं है। यह निश्चित है कि मैं वन जा रहा हू। मेरे साथ सीता और लक्ष्मण भी जा रहे हैं। आप सब हम अनुमति आशीर्वाद और विदा दें।'

राम ने पुन दशरथ को प्रणाम किया, पिताजी! मेरी मा आपकी आश्रिता हैं।"

सबको विदा की मुद्रा म हाथ जोड़ राम द्वार की ओर चल पड़ । सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ थे । उनके मित्र तथा कमचारी उनके शस्त्रास्त्र लिये उनके पीछे-पीछे चल रहे थे ।

कौसल्या अपने स्थान पर निष्प्राण-सी बैठी राम को जाते देखती रही । उनकी आँखें क्रमशः आसुओं से छुधला गयी थी ।

सहसा सुमित्रा तज-तज चलती हुई आयी और राम के सम्मुख द्वार की चौखट में खड़ी हो गयी । धन भर रूको राम । पुत्र तुम निश्चित हाकर दड़क जाओ और सकुशल लौटो । एक आश्वासन मुझमें लेते जाओ वरस । सुमित्रा व रहने बहने कौसल्या का बाल भी वाका न होगा—यह इस क्षत्राणी का वचन है ।

राम सीता और लक्ष्मण सुमित्रा के सम्मुख झुक गए ।

सुमित्रा के मुख पर तज, उत्साह तथा चुनौती के भाव थे ।

कैकयी व महल से निकलकर राम सीता और लक्ष्मण राज मार्गों से हाते हुए नगरद्वार की ओर बढ़े। उनके पीछे उनके मित्र बधु-बाधव कमचारी, विभिन्न वर्गों के युवा नागरिक अनेक मप्रदायी के युवा सपासी और ब्रह्मचारी चल रहे थे। जा भीड़ मार्गों पर छोड़ व महल के भीतर गये थे—वह अब भी वही विद्यमान थी। भवनो के गवाक्ष अब भी खुले थे और कुल-बधुएँ उनमें स झुकी पड़ रही थी। उनके पहुँचने से पहले, रोग स्तब्ध रहत थे, उनके निकट पहुँचने पर, उनकी आवाज म कष्टना उभर आती थी, और उनके आगे बढ़ जाने पर उनकी जय ध्वनि होन लगती थी।

राम वहीं मुसकराकर एकत्रित भीड़ को देख लते, वहीं हाय उठाकर उनकी गति की कामना करते—वही बद्ध जनो के दील पड़ने पर, हाय जाहकर, अभिवादन कर देते।

‘भया ! मुझे सिद्धाधम से विदाई याद आ रहा है।’ लक्ष्मण ने मुसकराने के प्रयत्न के बीच भारी गले से कहा।

‘हा। कुछ वैसा ही है।’ राम बोले, किंतु सोमित्र ! वहा लागों के मन में हमारे प्रति कष्टना नहीं थी।

‘मुझे भी जनकपुर से अपनी विदाई याद आने लगी ता दोनों भाईयो को बुरा लगना। सीता ने बकिम दष्टि से बारी-बारी दोनों को देखा।

राम जाश्वस्त हुए—वनवास के कारण सीता हताश नहीं थी ।

‘पता होता कि भाभी इतनी ईर्ष्यालु हैं, तो भया को पहले जनकपुर जाने के लिए तैयार कर सता । ये उपासभ ती न सुनने पड़ते । सिद्धाश्रम का काम तो लौटत हुए भी हो सकता था । स्वयं भी साथ होती, तो सिद्धाश्रम की स्मृति बुरी न लगती ।’ लक्ष्मण मुसकराए ।

इसी बुद्धि के कारण तो तुम्हें अभी तक पत्नी नहीं मिली, देवर ।” सीता ने चिढ़ाया—तुम्हारे भया पहले सिद्धाश्रम गये, ताड़का और सुबाहु को मारा, मारीच को भगाया, बहुलाश्व और उसके पुत्र को दड दिया, वनजा का उद्धार किया अहल्या को प्रतिष्ठा दी और तब जनकपुर पधारे । उनके आने से पहले उनका यश पट्टचा । सबन उन्हें सम्मान दिया । सीधे चले आये होते, तो कोई पहचानता भी नहीं । अजगव ने दशन भी न होते, वही पड़े रहने अमराई में मुनियों के साथ ।

वह अवसर तो मैं चूक गया भाभी । बच्चा था न । अब बताओ पत्नी प्राप्त करने के लिए क्या करूँ ?

बच्चे तो तुम अब भी हो देवर ! सीता मुसकराई—पर हा वनवास की अवधि में ही तुम युवक हो जाओगे । इससे पूर्व ही वीरता के दो चार काम कर अपनी प्रतिष्ठा बना लेना । कोई-न-कोई वानरों या राक्षसों मिल ही जाएंगी । मुना है उनमें से कुछ असाधारण सुंदरियाँ होती हैं ।’

‘मैं अकेला उत्तर की ओर चला जाऊँ भाभी । कम-से-कम मानवी तो मिलेगी—सुंदर न भी हुई तो क्या ।’

न देवर ! अकेले वही मन जाना । उत्तर की ओर तो एकदम नहीं । उस ओर माता कबेयी के सजातीय बसते हैं ।

भया ! आप सुन रहे हैं । लक्ष्मण ने ‘दाय की माग की’ भाभी ने मेरे लिए कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा ।’

राम ने अपनी चिंता भटक, एक क्षण के लिए मुसकराकर, उन दोनों को देखा—मैं नहीं सुन रहा । तुम दोनों मेरी बात सुनो । सामने सरयू के तट पर त्रिजट का आश्रम है । चित्ररथ तथा सुषण अपने रथों तथा कमचारियों के साथ वहाँ पहुँच चुके होंगे । वही हमें आगे की योजना बनानी है । तब सौमित्र यह निणय से सकेंगे कि उन्हें किस दिशा में

जाना है।”

‘भया सब-कुछ सुन रहे थे।’ लक्ष्मण की आँखें तिरछी हो गयीं उनमें शिकायत भी थी और प्यार भी।

सीता हस पड़ी।

उनके स्वागत के लिए त्रिजट अपने आश्रम के द्वार पर सुयन तथा चित्ररथ के साथ खड़ा था।

“स्वागत, राम।”

राम ने आश्रम में प्रवेश किया। कंधे से उतारकर अपना धनुष आसन के साथ, भूमि पर रखा और बैठ गये। यह सबके लिए बैठ जाने का संकेत था।

‘सुना त्रिजट।’ राम ने बात आरम्भ की हमारे पास अधिक समय नहीं है। आज मध्याह्नक हम तमसा तट तक पहुँचना है। अतः जल्दी चलना होगा। साथ आए इन सब बधुओं के भोजन का प्रबंध शीघ्र कर दो ताकि विलंब न हो।’

त्रिजट ने व्यवस्था कर रखी थी। संकेत पाते ही उसके शिष्य ब्रह्मचारियों ने भोजन परोसना आरम्भ कर दिया।

उधर भोजन चलता रहा और इधर सुयन चित्ररथ तथा त्रिजट जाकर राम सीता तथा लक्ष्मण के निकट बैठ गये।

हम समस्त शस्त्रास्त्र, अपने रथों में रखकर अपने साथ ले आये हैं। सुयन ने कहा ‘मेरा विचार है कि यहाँ से हम सब चले। रात को तमसा के तट पर ठहरे। प्रातः सब मित्रों और ब्रह्मचारियों का विदा कर हम आपके साथ चले और आपको शृगवेरपुर में निपादराज गुह तक पहुँचा कर ही लौटें अथवा शस्त्रास्त्र के साथ कठिनाई होगी।’

‘आगे के लिए क्या प्रबंध होगा राम।’ त्रिजट ने पूछा।

यहाँ से गुह के व्यक्ति हम भरद्वाज आश्रम तक पहुँचा आये।’ राम ने कुछ सोचते हुए कहा ‘आगे कठिनाई नहीं होगी। मेरा विचार है सुयन की योजना उत्तम है।

युवा-मगठनों के लिए क्या आदेश है?’ चित्ररथ ने भोजन करते हुए

युवको की ओर सकेत किया।

‘क्या लक्ष्मण !’ राम बोले, “तुम्हारी युवा सेना अयोध्या में ऊधम तो नहीं मचाएगी ?”

‘यह तो भरत के व्यवहार पर निर्भर है।’ लक्ष्मण ने उत्तर दिया

“यावत्-सगत शासन को ये सहयोग दोगे, और यदि भरत ने कैंकेयी की प्रतिहिंसात्मक नीति अपनाई तो य अयोध्या को जलाकर धार कर दोगे।

तो ठीक है मंत्रीप्रवर ! राम ने कहा लौटकर अधिकांश ब्रह्मचारी त्रिजट के आश्रम पर ही रहेंगे। ये लाग अपनी विद्या साधना तथा नान का अभ्यास करेंगे, पर त्रिजट ! लौकिक गस्त्रास्त्रा का अभ्यास भी इन्हें अवश्य कराना। लक्ष्मण के सारे युवा सगठनों के नागरिक सदस्य अयोध्या में निवास करेंगे। ये प्रतीक्षा करेंगे। यदि तब कुछ सुख शांति स “यावत्पूर्वक” चलता रहा—यदि राजनीतिक शक्ति का उपयोग जनता के विरुद्ध नहीं किया गया तो य आवश्यकतानुसार या तो तटस्थ रहेंगे अथवा भरत का समर्थन करेंगे। किंतु यदि भरत की राजनीति ने स्वयं को जन-विरोधी सिद्ध किया अथवा प्रतिहिंसा की नीति अपनाई तो अयोध्या के भीतर उसका विरोध का दायित्व इन्हीं सगठनों पर होगा। यदि भरत ने सैनिक अभियान किया तो त्रिजट आश्रम के ब्रह्मचारियों को अप्रत्यक्ष छिपा युद्ध करना होगा ताकि अत्याचारी सेना की गति राकी जा सके। किंतु सम्मुख युद्ध वे लोग नहीं करेंगे। सम्मुख युद्ध की आवश्यकता पड़ी तो वह शृगवेरपुर की निषाद सना करेंगे। मैं सारी गतिविधि का निरीक्षण चित्रकूट से करूंगा और स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हो जान पर ही जान दूंगा।”

एक बात कहने की अनुमति मैं भी चाहूँगी। सीता बोली।

बोना प्रिय !

आशकाजा ने अयोध्या में पर्याप्त अनर्थ कर डाला है—आशकाए चाहे सम्राट की रही हो अथवा माता कैंकेयी की। कहीं ऐसा न हो कि भरत वंचारा भी भरत विरोधी आशकाजा के कारण ही पीड़ित हो। राम समर्थक सभी “यक्तियों और सगठना का भरत की ओर स प्रतिहिंसा की आशका है। ऐसा न हो कि अपनी इन आशकाजा के कारण भरत को

गलत समझकर उसका विरोध आरंभ कर दिया जाए। एक बात और भी है। आपके समर्थक संगठित और सशस्त्र हैं। वही अपनी शस्त्र शक्ति के प्रमाद में ये लोग भारत के शासन की उपेक्षा करें, उसमें प्रतिहिंसा न जगा दें।”

“नही भाभी!” लक्ष्मण बोले, “हमारे समस्त संगठन सहिष्णु और सहनशील हैं।”

“जैसे तुम हो, देवर।” सीता मुसकराई।

उग्रता में भैया जैसे और सहिष्णुता में मुझ जैसे।”

लक्ष्मण की बात भाग्य आते हुए एक ब्रह्मचारी में काट दी। वह काफी तजी से भागता हुआ जाया था और हाफ रहा था।

‘आय कुतपति।’ उसने विजय को सरोधित किया, अयोध्या की दिशा में एक राजसी रथ बड़ी तजी से इस ओर बढ़ता हुआ देखा गया है। वह अत्यल्प समय में महा आ पहुँचेगा।’

लक्ष्मण ने अपना धनुष पकटा और उठकर खड़े हो गए।

“ठहरा, धैर्यशील देवर।” सीता ने हाथ से संकेत किया।

यम जाओ, सम्मन। राम हंस, ‘मुझे अनिष्ट की तनिक भी आँकना नहीं है। अभी अयोध्या का शासन सम्राट के हाथ में है। और फिर एकान्ती रथों हमारा क्या कर सकता है। मभव है कोई महत्वपूर्ण समाचार हो।”

उसी क्षण का अर्थ ब्रह्मचारी, समाचार देने के लिए उपस्थित हुए ‘आय कुतपति। अयोध्या से आय मुमत्र सम्मन के सदेश के साथ आए हैं।”

‘उह सादर निवा लाओ।’ विजय ने कहा।

दोप लोग मौन रह। क्या है सम्राट का संदेश? ऐसी कौन-सी बात है, जो सम्राट अयोध्या में नहीं कह सके, और उसने लिए पीछे से मुमत्र को भेजा गया है। क्या सम्राट की ओर से कोई गुप्त सदेश है?

मुमत्र आए। राम ने उह प्रणाम किया। चारों ओर स्तब्ध मौन दृष्टकर वह समन गए नि सब उनकी ही प्रतीक्षा में थे। वे उच्च स्वर में

बाल आय ! आपक चल जान क पश्चात् राजमहल म वाद विवाद तो अनक हुए है किंतु स्थिति म कोई परिवर्तन नहीं आया है । सम्राट के आदेश से मैं एक श्रेष्ठ रथ लेकर आपकी सेवा म जाया हू । उनकी इच्छा है कि रथ मे आप लोग को घुमा फिराकर व य जीवन का परिचय करा दू । आप लोग यह देख लें कि जानकी किसा भी प्रकार वय जीवन की कठिनाइया नहीं सह पाएगी । अत आप अयोध्या लौट चलें ।

तात सुमत्र ! राम क अघरोपर मोहक मुसकान थी रथ की हम बड़ी आवश्यकता है । हम रात से पूव तमसा तट और बल अवश्य ही शृगवेरपुर तक पहुंचना है । शृगवेरपुर तक आप हम पहुंचा दें । वय जीवन दिखाकर लौटाने की बात आप न साचें । लौटना असम्व है ।

लौटना असम्व है । सुमत्र का स्वर हृत्प्रम था ।

‘पूणत !

‘जानकी भी नहीं लौटेंगी ?

नहीं ! सीता, राम से भी अधिक दब थी ।

सुमत्र स्तम्भित-से उनको देखते रहे जस समझ न पा रहे हा कि क्या कह । फिर कुछ सभलकर बोले सम्राट की आज्ञा का पूण हुई । व जानते थे कि तुम नहीं लौटोगे । पर पिता का मन । उनकी मुद्रा बदली जस युद्ध म कोई योद्धा पत्रा बल्लता हो राम ! सम्राट ने अपनी पुत्र बधू क लिए कुछ वस्त्राभूषण भिजवाए है । ये राजकोप से नहीं सम्राट के निजी कोप से भिजवाए गए है । इन पर ककयी का कोई अधिकार नहीं है । सम्राट के साथ-साथ राजगुरु न भी इह ग्रहण करने का अनुरोध किया है ।

सीता ने जाखो म सकोच भरे क्षण भर राम को देखा जस सोच रही हो कि उत्तर राम देंगे या व स्वय दें । किंतु जब राम कुछ नहीं बोले तो वे स्वय सुमत्र स संबोधित हुई तात सुमत्र ! यह सम्राट का अनुग्रह है । किंतु मैं अपने वस्त्राभूषण अयोध्या म त्याग आयी हू । अब और आभूषण लेकर क्या करूंगी ? तापसी द्वारा वस्त्राभूषण ग्रहण किय जाने म क्या औचित्य है ?’

सुमत्र का मुखमंडल मुरझाकर एबदम दीन हा गया जस हरी फसल

पर ओढ़े पड़ गया हा। उनकी आँखें डबडबा आयी। बाणी रुक गयी। कापत कठ से बोले, 'वैदही ! वद ससुर की भावनाओ पर निष्ठुर आघात मत करो। पुत्र ! अपनी सतान म एक अदभुत मोह होता है किंतु यह वद तुम्ह बताना चाहता है कि पुत्र-वधू के प्रति श्वसुर की भावना पिता की भावना से भी मूढम और कोमल होती है। जो कुछ वह अपनी पत्नी और सतान के लिए नहीं कर सकता समय होने पर अपनी पुत्र-वधू तथा पौत्र पौत्रियों के निण करना चाहता है। सम्राट की भावना का अनादर न करो सीत !

मुमत्र की अवस्था देख सीता स्तब्ध रह गयी जैम वह सुमन न हो, स्वयं दशरथ हा।

अपने विवाह के पश्चात सीता न सुमन को बहूधा राजमहला म देखा था किंतु यह कभी नहीं सोचा था कि वे इस परिवार स भावात्मक घरातल पर भी इस सीमा तक जुड़े हुए हैं—विशेषकर सम्राट से। तभी तो सम्राट ने वह अपन निजी सारथी से मंत्री तक के दायित्व सौंप रमे थ। सीता ने सम्राट के दस रूप को कभी नहीं देखा था। सुमत्र इतन पीछित थे तो स्वयं सम्राट कितने पीडित हाग

आय !' सीता न मधुर स्वर म कहा आप स्वयं को मेरी स्थिति म रखकर सोचें। अपना धन धाय दान कर यदि श्वसुर की भेंट स्वीकार करंगी तो क्या यह त्याग का नाटक मान न हागा ?'

तान !' राम बोल मेरी आर स भी मोचिए। अयोध्या स स्वयं खाली हाथ निकल आऊ और सीता क माध्यम स धन संपत्ति साथ ले चलू क्या यह तपस्वी जीवन जीना होगा ?'

'मैं तक नहीं कर सकता।' मुमत्र कातर स्वर म बोले 'मेरा तक तो मात्र भावना का है।'

'राम !' सुयन बोले, विवाह अनावश्यक है। देवी इस भेंट को अगीकार करें। सम्राट ने कुछ सोच सप्रमकर ही, ये वस्त्राभूषण भेजे हैं। आप गस्त्रास्त्र ल जा रहें हैं, सीता की वस्त्राभूषण ले जाने दें। य भी एक प्रकार के शस्त्रास्त्र ही हैं। समय आने पर आप सब की रक्षा करेंगे। धन भी अपने आप मे हाव बर है—राम की श्रमता श्रमता करती है।'

ग्रहण कर देवी बदेही ।" मन्त्री चित्ररथ ने कहा ।

'ग्रहण करें भाभी !' लक्ष्मण ने भी उसी स्वर में कहा, और फिर स्वर दबाकर धीरे से बोले, अपनी देवरानी को आप आभूषण तो पहनाएंगी ही रक्षसी हुई तो क्या वानरी हुई तो क्या जोर मानवा हुई तो क्या ?

सीता मुसकराकर चुप रह गयी ।

सुमित्र के सकेत पर ब्रह्मचारियों ने वस्त्राभूषणों का पिटारा सीता के सम्मुख रख दिया । सीता ने उसमें से दो एक आभूषण धारण कर लिये यह ग्रहण की स्वीकृति थी ।

सुमित्र प्रमत्त हो उठे मैं धन्य हुआ देवी जानकी !'

भोजन समाप्त हात ही चलने की व्यवस्था की गयी । राम सीता, लक्ष्मण तथा कुछ ब्रह्मचारी सुमित्र के रथ में जाकर हुए । सुमित्र अपने अनेक ब्रह्मचारी शिष्यों के साथ अपने रथ में थे । चित्ररथ कुछ युवाओं के साथ अपने रथ में बैठ । शेष लोग निजट आश्रम के छत्रों पर मवार हुए । साथ चल पड़ा ।

सुमित्र के छोटे शक्तिशाली और बेगवान थे । चित्ररथ तथा सुमित्र के रथों के घोड़े भी अच्छे थे । किंतु आश्रम के छत्रों के घोड़े उस गति से नहीं चल सकते थे । अतः सब लोगों को धीमी गति से चलना पड़ रहा था ।

रथ और छत्रों दबत चले गए । सूर्य ढलने लगा था । घन में भी वह प्रखरता नहीं रही थी । सब लोग सहसा ही चुप हो गए थे—कुछ अतीत की स्मृतियों में खोए थे कुछ को भविष्य की चिंता थी वर्तमान में तो केवल चलना ही था ।

क्या सोच रहे हैं सीमित्र ? रास न पूछा ।

सोच रहे हैं कुछ जल्दी चल पार वन के लिए । उत्तर सीता ने दिया कम से कम विवाह करके चरत तो मन्नाट छोटी पुत्र वधू के लिए भी एक पोटली आभूषण तो भेजते ही ।'

सुना लक्ष्मण ! राम मुसकराए 'यदि कटाशों की गति यही रही तो चीन्ह वपों में तुम परेशान हो जाओगे ।

‘भाभी अपनी उदासी छिपाने के लिए चुहल कर रही हैं। यह वाकचातुर्य तो केवल आवरण है। उन्हासी दूर हा जाएगी तो मुझे परेशान करना भी छोड़ देंगी।’ लक्ष्मण न असाधारण सहिष्णुता का परिचय दिया।

चलो। उन्हास तुम हागे, देवर। जिसे अपने निपट बचपन म ही मा से दूर जाना पड रहा है। मैं तो अपने पति के साथ वन विहार के लिए जा रही हू।’

सीता मुमकरायी, पर अपनी गभीरता छिपा नहीं पायी। पता नहीं लक्ष्मण ने परिहास किया था या सचमुच वे सीता के व्यवहार का विश्लेषण इसी प्रकार कर रहे थ। पर सीता सचमुच उदास हो गयी थी। किस बात की उदासी थी? राज्य स, राजमहारी मे सुख-ऐश्वर्य से—उहे मोह नहीं था। राम साथ ही थे। तो क्या केवल माता कौसल्या के लिए? कितनी निभर थी माता उन पर। वसी बातर स्त्री सीता ने और कोई नहीं देखी। ममता वास्तव्य, प्यार। कौसल्या वास्तविक मा हैं—व स्त्री नहीं हैं मात्र भावना हैं। उनकी याद जब-जब आएगी सीता उदास हा जाएगी और माता सुमित्रा। सुमित्रा की याद भी सीता को आएगी। व उनको याद करके भी उदास हो जाया करेगी, पर उनके लिए नहीं, अपने लिए। माता सुमित्रा क पास जाते ही कोई भी व्यक्ति आत्म विश्वास से भर जाता है। वे क्वच के समान किसी को भी घेर लती है—निभय कर देती है। आते आत भी उहोने कहा था “ एक जाश्वासन मुझमे भा लेत जाओ वत्स। सुमित्रा के रहत वहन कौसल्या का बाल भी बाका न होगा—यह इस क्षत्राणी का वचन है।” याद तो सीता का अपनी माता मुनयना की भी आती रही है। पर ममता व्यक्ति के कत य मे तो बाधक नहीं होनी चाहिए। कतय और प्रगति के लिए व्यक्ति और समाज का कई बार निर्मोही होना पडता है।

सुमत्र ने रथ रोक दिया।

व लोग तमसा के तट पर पहुच गए थ।

पीछे आने वाले दोनो रथ भी रुक गए। धीरे धीरे शेष छकडे भी

आ पहुँचे ।

राम सीता तथा लक्ष्मण रथ से उतर आए ।

‘तात सुमन । राम ने घोड़ों को थपकी देते हुए कहा इन्हें खोनकर दाना-पानी दें और आप भी विश्राम करें ।’

सुमन चित्ररथ और त्रिजट भी बाहना से उतर उनके पास आ गए ।

मित्रो !’ राम बोले सब के ठहरन की उचित व्यवस्था कर दो । वन में फल काफी सख्या और मात्रा में उपलब्ध है । उन्हीं का भोजन होगा । और एक बात सब को कायक्रम स्पष्ट समझा दो । कल प्रातः हम बहुत जल्दी चल पड़ेंगे । हमारा साथ बवल आस सुमन सुमन तथा चित्ररथ जाएंगे । शेष लोग आग जाने का हठ न करें अन्यथा व्यवस्था भग होगी ।

अनेक लोग विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं में लग गए किंतु सीता और राम का सारा काय स्वयं लक्ष्मण न किया । उन्होंने एक ऊँची सी जगह देख कर पत्ते बिछा राम और सीता के लिए दा गमाए तयार कर दी । तमसा से पानी लाकर उन शयानों के निकट रख दिया ।

फलाहार के पश्चात् जब राम और सीता अपने लिए बनायी गयी शयानों पर आ गए, तो अपन धनुष की टेक लगा लक्ष्मण उनसे कुछ हटकर पहरों पर खड़े हो गए ।

राम न सब कुछ चुपचाप देखा । अयोध्या से बाहर जाज वह उनकी पहली रात थी । वनवास की सारी अवधि क रहन सहन का प्रायः यही रूप होगा । बहुत होगा तो लक्ष्मण कोई कुटिया बना देंगे । वे लग उम कुटिया में इसी प्रकार पन शयानों पर साएंगे । वक्षों से तोड़कर लाए गए फल वन द्वारा लिए गए वेद मूल वनों का जल और जहर द्वारा प्राप्त आहार—इन्हीं पर चौटह बप कटेंगे । वस लक्ष्मण द्वारा बनायी गयी कुटिया काफी अच्छी और सुखद होती है । अयोध्या के बाहर व वनों में जहेर क लिए जाने पर अनेक बार लक्ष्मण द्वारा बनायी गयी कुटियाओं में राम रहे हैं । सनिक अभियानों में भी इसी प्रकार की अस्थायी व्यवस्था लक्ष्मण न की है । वे लक्ष्मण की इस कला के प्रशंसक रहे हैं ।

सिद्धाश्रम की यात्रा में भी, गुरु न कई बार उन्हें पड़ों के नीचे ठहराया था किंतु भेद केवल इतना है कि इस बार वे अयोध्या के निर्वासित राजकुमार हैं, और निवासन की अवधि बड़ी लंबी है।

लक्ष्मण पट्टे पर खड़ा है। य एसे ही सन्नद्ध रहता। कदाचित् लक्ष्मण को यह वनवास कष्टप्रद न लगता। लगता है तो वे ऐसा दिखाएंगे नहीं। जीवन के कष्ट लक्ष्मण का दीन नहीं कर पाता—वे उन्हें चुनौती से लगता है, और चुनौतियाँ लक्ष्मण की जिजीविषा में बढ़ती ही कर सकती हैं—उमका घबराहट नहीं। किंतु सीता! सीता ने कहा था कि व माघारण किया है और सम्राट सीरध्वज ने उन्हें साधारण जीवन के लिए भी प्रशिक्षित किया है। पर क्या इतना लंबा वनवास सीता झेल पाएगी? अभी तो वे यात्रा में हैं इसलिए तबीयत के आकषण में कदाचित् वे कष्टों का अनुभव न करें। किंतु जब वे एक स्थान पर ठहर जाएंगे जीवन नियमित और उदात्त हो जाएगा—तब मुविधाआ का अभाव अधिक खरेगा। तब कोई व्यवस्था करनी होगी।

क्रमशः कोलाहल शांत हो गया। प्रत्येक व्यक्ति कहीं-न-कहीं स्थिर हो गया था। कुछ ही समय में प्रायः लोग सो गए थे।

लक्ष्मण को सोना नहीं था, न ही वे उनींद थे। विभिन्न प्रकार के विचार उनके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा रहे थे। मन सिद्धाश्रम की यात्रा से इस यात्रा की तुलना कर रहा था। उस यात्रा का उद्देश्य क्या था, और इस यात्रा का उद्देश्य क्या है? यह वनवास सुख है अथवा दुःख? इसके लिए कौन उत्तरदायी है—दशरथ? ककेयी?? या स्वयं राम?? इसके लिए किसी को दोष दिया जाए या न दिया जाए? यदि दिया जाए तो किसकी कितना दाप दिया जाए? अयोध्या में पीछे क्या होगा? भारत की प्रवृत्ति क्या होगी? ककेयी का प्रभाव किसकी कितनी क्षति करेगा?

सुमित्र आकर लक्ष्मण के पास बैठ गए। मुझे नींद नहीं आ रही सोमित्र।

‘आइए तात।’ लक्ष्मण बोले ‘जब तक नींद न आए मर पाय

बटिए।”

तुम साजोग नहीं लक्ष्मण ?

‘मैं पहर पर हूँ आय।’

‘रितु वनवास तो चौन्ह वर्षों का है। सुमत्र न कहा।

लक्ष्मण हस पड, शृगवरपुर अथवा ऋषि आश्रमों में पहरों की आवश्यकता नहीं होगी। फिर वन में जहाँ बड़ी भया राम अपना आश्रम बनाएंगे वहाँ सुरक्षा की समुचित व्यवस्था होगी। चौन्ह वर्षों तक कोई व्यक्ति दिन रात नहीं जाग सकता आय। और आखिर तो लक्ष्मण भी एक व्यक्ति मात्र ही है।’

यही तो मैं भी सोच रहा था राजकुमार। सुमत्र वान एसी मर्यादा सम्भव नहीं है। पर अयोध्यावासी तो अब शायद सुख की नींद वभी नहीं सोएंगे।

सुमत्र सहमा उदास हो गए।

‘वयो जाय ?’

लक्ष्मण। व्यक्ति को अनुभूति नहीं बोलना चाहिए। राजा के विषय में और भी नहीं। उस व्यक्ति के विषय में तो एकदम नहीं जो तुम्हारा कुटुम्बी हो। पर फिर भी मैं अपनी चिंता तुम्हारे सामने प्रकट कर रहा हूँ।

‘क्या बात है, आय सुमत्र ? लक्ष्मण के स्वर में हल्की सी चिंता थी।

‘तुम्हारे आन के पश्चात्त जपाध्या में स्थिति अधिक नहीं बदली। सम्राट उसी प्रकार आर्ये वद किए आर्ये सोए आर्ये जागे-स पडे है। हा इतना परिवर्तन अवश्य हुआ है कि वे ककेयी के महल से हटकर साम्राज्य की सत्स्था के महल में चले गए हैं। सम्राट पश्चात्ताप और आत्ममग्नता से अत्यधिक पीडित हैं। वे भयभीत भी हैं। सोए माए चीत्कार करने लगत है। ऐसा लगता है मानो अपने शत्रुओं को देख रहे हैं। और फिर अपनी रक्षा के लिए राम को पुकारने लगत है मुझे लगता है, यह स्थिति उनके प्राण ले लगी

लक्ष्मण ने उपक्षा से अपना मुह दूसरी ओर फिरा लिया।

तुम उनसे बहुत रुष्ट हो।" सुमित्र बोले 'किंतु मैं सम्राट का बाल-खा हूँ पुत्र। मरी ममता लब साहचर्य से जमी है। मैंने सम्राट का वह रूप देखा है, जब उनकी दृष्टि दीप्त आँखें आकाश से नीचे नहीं देखती थीं। चेहरे पर तज दिपता था। उनकी ठोकरा से पहाड़ हिल जाते थे।'

आपने उनका वह रूप नहीं देखा था सुमित्र। लक्ष्मण की वाणी बरु हा उठा। जब सुन्दरी युवती देखत ही उनका मुह में पानी भर आता था। विभिन्न सामान्य जन की कथाओं, सामंता की पुत्रियों और राजाओं की राजकुमारियों का वे अपने सनिक बल की धमकी अथवा वास्तविक बल से प्राप्त करते थे। अपनी साम्राज्य की उड़ाने जूत की नोक पर रखा और राम जिस पुत्र की विकट उपेक्षा की। आपने उनका वह रूप नहीं देखा, जब वह क्रमशः घट्ट हो रहे थे काया और बुद्धि क्षीण हो रही थी, आँखों की ज्योति मंद हो रही थी पेशिया गनकर चर्वी बन रही थी और तब भी सम्राट वर गात्राएँ कर रहे थे। दृष्टि से दमकती ककयी के पीछे अनाथ बच्चे के समान होना फिरना क्या तनिक भी सम्मानजनक था।

मैंने यह सब भी देखा है सोमिन। किंतु भद्र मात्र इतना है कि मैं सम्राट को प्रेमी की दृष्टि से देखता हूँ। उनकी दुर्बलताओं को पहचानकर, उनके दोषों के प्रति करुणापुर्वक हाँ उठा हूँ, और तुम उनके पुत्र होकर भी उन्हें एक छिद्रा-वेपी जालोचक की दृष्टि से देखत हो 'राजकुमार' जो सारे गुणों को एक अवगुण परवार देता है। सम्राट अपने दोष नहीं जानत ऐसी बात नहीं है। अब जिस पश्चात्ताप से वे पीड़ित हैं, उसकी ओर तुम्हारा ध्यान नहीं गया। अनेक बार उन्होंने मुझसे कहा है कि समय रहत उन्होंने क्या नहीं समझा कि उनकी पत्नियाँ मरने केवल साम्राज्य की सत्ता उनसे प्रेम करती हैं। अथ पत्नियाँ उनसे घृणा करती हैं भय खाती हैं, अथवा उनसे कुछ प्राप्त करना चाहती हैं। रानी सुमित्रा का कल दिन भर में उन्होंने कितना सराहा है। उन्होंने कहा 'रानी सुमित्रा के मन में अथाह प्यार है, ममता है, पर वह ममता केवल पीड़िता के लिए है। पीड़क लोग के लिए उनके पास केवल घृणा है। और यह उनका ही प्यार और बल था, जो साम्राज्य की जिता ले गया—अथवा अयोध्या में ऐसा

कौन था, जो युवती कोमलता और बालक राम की रक्षा करता। सम्राट ने स्वीकार किया है कि साम्राज्यी के प्रति अपने पिता भज के मुखर स्नह के कारण व साम्राज्यी स उदासीन हो गए थे। साम्राज्यी के विरोधहीन आत्म समर्पण ने उनके त्याग और दलिदान न सम्राट की दृष्टि में उनका महत्त्व समाप्त कर दिया था। सम्राट का व्यवितत्व उस समय मुखर बाक चतुर, लीलामयी युवती की जाकाशा करता था। वसी युवती अंत में उह ककेयी व रूप में मिली जिसने उह उस स्थिति तक पहुँचा दिया।

लक्ष्मण के मन की वितरणा उनके चहरे पर प्रकट हो गयी आप जो भी वह आय सुमत्र। मैं वैसा व्यक्ति नहीं हूँ जो तनिक से पश्चात्ताप के कारण किसी व सारे पूर्व अपराध क्षमा कर दे। मुझे आपको सम्राट से कोई सहानुभूति नहीं है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यदि भया राम अनुमति दे देता तो सम्राट को या तो बंदी कर लेता या उनका वध कर देता। ककेयी से मैं भट्ट हूँ, इमनिष्ठ नहीं कि उसने सम्राट को पीड़ित किया है उसके लिए तो मैं ककयी व सम्मुख नतमस्तक हूँ। ककयी के प्रति मेरा शोध भया राम व निर्वासन के कारण है लक्ष्मण रक गए। आप जाकर सोने का प्रयत्न कर जाय। बल प्रात हम जल्दी चलना है। मैं नहीं चाहता कि आप सम्राट का पक्ष प्रस्तुत करें और उनका प्रति मेरे मन में छिपी घणा प्रकट हो।'

सुमत्र उठकर छोड़े हो गए। उ हान कुछ कहा नहीं।

तीनों रथ बड़ी क्षिप्र गति से निरंतर बढ़ने जा रहे थे।

दोपहर ढल गयी थी। मध्याह्न को थी। रात में पहले उह शृगवरपुर के साथ गगनकर बहती गंगा तट पर पहुँचना था।

पिछली रात सुमत्र काफी देर से सोए थे और लक्ष्मण सोए ही नहीं थे। पर फिर भी प्रात सारी व्यवस्था समय से हो गयी थी। पीछे छूटने वाले लोग स विना चलना सरल नहीं था। युवा सगठना के सन्ध्यो और ब्रह्मचारियों का हठ बड़ा ही प्रबल था किंतु व सब अनुशासन में बध हुए थे। जितनी जल्दी संभव हुआ सत्र में विदा लेकर राम, सीता और लक्ष्मण सुयन चित्ररथ और सुमत्र व साथ चल पड़े थे। तमसा तट पर छोटे हुए

योगा के विजट-आयम अथवा अयोध्या तक रौटन का व्यवस्था विजट के अधीन थी, अतः वे भी साथ नहीं आए थे।

दोपहर के भोजन के समय थोड़ा-सा स्नान व समय को छोड़कर वे राग निरंतर चलते रहे थे। अयोध्या राज्य की सीमा पार कर अयोध्या के मामता का भूमि को भी वे पीछे छोड़ आए थे। माग म वेद-श्रुति गोमती तथा स्यन्त्रिका नदियाँ पानी थीं किंतु सतुओ की उचित व्यवस्था हान के कारण उच्च पार करने में असुविधा नहीं हुई थी।

दोपहर के भोजन के उपरांत चलने के समय से ही भूष कुछ कम हो गयी थी। हवा ठंडी थी और रथ वेग से चल रहा था। लक्ष्मण रात भर के जग से दस समय रथ में बठे-बैठे ही ऊप गए।

माग भर सोना दूर तक फैल गे तो उनमें काम करते वृषक स्त्री-मुसुपों की दलदली आयी थीं। कभी-कभी वे किसी जनपद में नीचे से, किसी ग्राम में पदम में भी निकल थे। नगरो के निकट का माग उड़ोने जान-बूझकर नहीं दिया था। सीता माग में आए वन प्रातरों को भी देखती रही थी। सावनी रही थी—अब तक उहान महो का सुव्यवस्थित जीवन ही देखा था, जहां सब कुछ उपलब्ध था और कोई असुविधा नहीं थी। वहां किसी को कोई भौतिक परेशानी नहीं थी। वहां भी दुःख थे किंतु उनका स्वरूप और ही था। अब व जहां से गुजर रही थीं, यह समार कोई और ही था।

वे जनकपुर के राजमहल में पनी हैं। रानी सुनयना और मन्नाद सीरध्वज उनके माता पिता हैं किंतु कौन कह सकता है, उनका जनक जननी कौन है। उनका जनक जीवित है तो किम वय के हगि जननी कौन होगी। वह हाँ खुद होंगे यजारे। निधन भी अवश्य ही हगि—नहीं तो अपनी पुत्री का इस प्रकार गुले मत में क्यों फेंक जान। कम अजित करत हगि वे अपनी आजीविका? इस वद्व्यवस्था में कही किता मत में कुदान बना रहे हगि। पनीना वह रहा होगा। हाँ वह हगि। कभी-कभी हाथ बाँप भी आता होगा माया घूम जाता होगा। कहा किसी राजा-सामंत के भूदाम हुए तो माया घूमन पर मैनिक बाटे से मारत होंग

सीता आग सोच नहीं पायीं। उनका शरीर में भुरभुरी-सी आ गयी। क्यों योजनी है वे अपनी जननी को, जनक का। धरती पर अपना पसीका

गिराने वाले भट्टिया में अपने जरीरी का तपान वाले—सभी तो उनके जननी-जनक जैसे हैं। वही सप्यार करें। उनके लिए कुछ करें। क्या नहीं राज्य की ओर से सब के उचित भरण-पोषण सम्मानपूर्ण आजीविका का प्रवध होता? क्यों राज्य बनना राजा का है? क्या वह सारी प्रजा की संपत्ति नहीं है? इस विषय में मानव से प्यार करने वाले सभी लोगो को कुछ साचना होगा। ये भेद मिटाने होंगे—घनी निधन का शोषक और शोषित के आय तथा आयेंतर का शृगवेरपुर का राजा गृह भी तो आय नहीं है। यह निपाद है। राम उस अपना परम मित्र मानते हैं। कितना विश्वास है उन्हें उस पर। राम ने सीता को बताया था—बहुत पहल कभी राम किसी राज्य-बाय में डूब आए थे तो निपातराज गृह से उनका मरिचय हुआ था। गृह उन्हें एक ईमानदार तथा सच्चा आदमी लगा था। इसीलिए जब आय सामंतों ने अपने राज्य विस्तार के उपक्रम में शृगवेरपुर को भस्मीभूत करना चाहा तो राम ने उनका दंड विरोध किया था। राम का कारण ही इन सारे आय सामंतों के जन्मदा का बीच यह निपाद राय बचा हुआ था। राम की इच्छा के अनुसार हा गृह ने अपनी सैनिक शक्ति कुछ बढ़ा ली थी। किंतु राम ने वह खेद से सीता से कहा था कि अच्छे योद्धा होने पर भी अच्छे शस्त्रों का अभाव में निपात किसी व्यवस्थित आय सेना से लड़ नहीं पाएंगे। फिर राम सिद्धाश्रम गए थे। वहां उन्होंने निपादी पर अत्याचार करने और उसका समयन करने वाले पिता-मुत्र को दंडित किया था। तभी से गृह राम का अभिन्न मित्र हो गया था। वह उनके लिए प्राण भी दे सकता था।

क्रमशः रथ की गति धीमी होने लगी थी। सामने गंगा का गभीर प्रवाह अपना वग दिया रहा था। आस-पास ही वही शृगवेरपुर होगा सीता ने सोचा—आज रात उन्हें यही विश्राम करना है।

सीता रथ रुक गए। सब लोग रथों से उतर आए। राम ने क्षण भर इधर उधर दृष्टि दौड़ाई और अपने निरीक्षण का निजय सुना दिया। हम इस इगुली वक्ष के आस-पास विश्राम करेंगे। तात सुमत्र! रथों और घोड़ों को व्यवस्था आप मंजाल दें।

राम ने अपना धनुष और तूणीर बक्ष के तने से टिका दिए। वे खाली हाथ लौटकर रथा के पास आए 'बधुओ ! हम अपना शस्त्रागार उतार लें। रथ आग नहीं जाएगे।'

'राजकुमार !' सुमन कुछ कहने को हुए।

'आय !' राम का स्वर दृढ़ था 'इसमें विवाद असहमति अथवा पुनर्विचार का कोई अवकाश नहीं है। यह निश्चित है कि अब न रथ आग जाएगा, न आप सुयन अथवा चित्ररथ में से कोई आग जाएगा। यहां से अगले पड़ाव तक सहायता का दायित्व गुरु का होगा।'

सुमन उत्तम हुआ गए। कितने हठी हैं राम ! अपने कतव्य के सामने किसी की कोमल भावनाएं उनके लिए कोई मूल्य नहीं रखती। और कतव्य भी कैसा ? पिता ने अपने मुख से एक बार भी वनवास का आदेश नहीं दिया। किंतु सुमन का मन कही आश्वस्त भी था—राम निश्चयी हैं राम धाम विश्वासी हैं।

सुमन घोड़ों को खोलकर उनकी देखभाल में लग गए। राम, सीता सहमण, सुयन और चित्ररथ विभिन्न धनुष, विविध प्रकार के बाणों से भरे तूणीर खड़ा तथा अनेक शिथ्यास्त्र रथा में से उठा-उठाकर इगुदी बक्ष के तने के साथ टिकाने लगे।

सीता को काय करते देख, एक-आध बार, सुयन तथा चित्ररथन कहा भी, 'आप ऐसा कठिन काय न करें आर्या ! हम लोग अभी किए हैं।'

किंतु राम ने उन्हें तत्काल टोक लिया, 'सीता का भी जपन हो गमान स्वतंत्र तथा समय व्यक्ति समझकर काय करने दो और वन भी वनवास की अवधि में महायज्ञा करने के लिए तुम लोग साथ नहीं रहोगे।'

इधर रथों से शस्त्रागार उतारा गया और उधर अपने कुछ मैनिक्स के साथ आने हुए गुरु दिखाई दिए।

राम अपना सहज गाम्भीर्य त्याग वचननापूर्वक भाग। दौटकर उन्होंने गुरु का गले से लगा लिया, कितने दिना के परवान मिले हो, मित्र !'

गुह की आवाज म आसू आ गए यही तो मैं भी कहता हूँ राम ! इतने दिना के पश्चात मिल हो और वह भी इस प्रकार । महल म न आकर इगुदी वक्ष के नीच टिक गए ।

उन्हाने बड़ी करण दष्टि से राम साता और लक्ष्मण को देखा ।

किंतु उनके आसू और करणा अधिक देर नहीं टिकी । अगले ही क्षण आसू मूख गए । चेहरा तमतमा उठा । वाणी म ओज भर आया राम ! मेरे गुप्तचरो ने तुम 'योगा' के यहा पहुचन और तुम्हारे वनवास की सूचनाएँ प्रायः साथ-ही साथ दी है । यह उनकी शिथिलता का प्रमाण अवश्य है, पर उससे क्या । आत आत मैं अपनी सेना को युद्ध के लिए प्रस्तुत होने का आन्श देकर आया हूँ । मेरी सेना अयाध्या की सेना के बराबर नहीं है—न मर्या म न युद्ध-कोशल म न शस्त्रास्त्रो म । पर उससे क्या ? मेरे वीर साम्राज्य की उस बेतनभोगी सेना को पल भर म नष्ट कर देने का हीसला रखत हैं । तुम हमारे साथ हो राम ! तो हम किसी से भी टकरा जाएँ आज रात विधाम करी । कल प्रात ही अभियान होगा ।

गुह भया । लक्ष्मण हसे पहल मुझमे गले मिलोगे या पहन अयोध्या पर सैनिक अभियान करोगे ?

गुह कुछ सकुचिन हुए सौमित्र ! तुम्हें फिर कटाक्ष करने का अवसर मिल गया । अपने आवेश म मैं कभी कभी अपना मतुलन खो बैठता हूँ ।

गुह और लक्ष्मण गले मिले । राम ज्ञात भाव स उह देखते रहे । उनके अलग हात ही बोले पहल मेरे साथ एक ही लक्ष्मण थे अब तो तुम दोनो हा । तनिक सीता का प्रणाम भी स्वीकार कर लो तो सैनिक अभियान की याजना बनात है ।

सीता ने हाथ जोड़ दिए 'जेठ के सम्मुख तो अनुज वधू वस ही सकुचित हो जाती है और फिर जब जठ सैनिक अभियान करते हुए आए तो प्रणाम करने म विलंब हो जाना स्वाभाविक ही है । आशा है जेठ जी क्षमा करेंगे ।'

आशीवचन की भुद्रा मे हाथ उठा गुह क्षण भर भीचक्के से खड़े रह गए, और फिर जार स खिलखिलाकर हस पड़े अच्छा नमाशा बनाया तुम लोग न मेरे आवेश का । इतने शांत जनों के बीच तो एक आविष्ट

व्यक्ति मूखता से आविष्ट लगने लगता है।”

गुह देर तक हसत रह। फिर सहज होकर अपने सनिका की ओर मुड़े ‘शस्त्र थिथिल कर शांत होकर बठ जाआ, बोर। ये लोग युद्ध की मुद्रा में नहीं है।’ व धूम पर राम। निवासन से तुम दृष्ट नहीं हो क्या? अयोध्या के राज्य पर तुम्हारा पूण अधिकार है, वरन पिछल कई वर्षों से अयोध्या का शासन तुम्हीं चला रहे हो।”

‘जाआ, पहले इन लोगो से तुम्हारी पहचान कराऊ।’ राम बोले, ‘ये सुयन है गुरु वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र और मेरे मित्र। ये हैं समाट क मंत्री चित्ररथ, मेरे सुहृद। ये लोग हम पहचाने आए हैं। मेरी अनुपस्थिति में तुम्हें अयोध्या में इन्हीं से संपर्क बनाए रखना है।”

परस्पर अभिवादन के पश्चात्, गुह फिर पहले विषय पर सौट आए, ‘तुम दृष्ट क्यों नहीं हो, राम? देख रहा हूँ ऐसी भयंकर घटना के पश्चात् भी लक्ष्मण तक शांत हैं।”

राम का तज, उल्लास समान प्रकट हुआ ‘यह न समझी गुह। कि मैं इतना असमर्थ हूँ या अयोध्या में मुझे इतना भी जन-समर्थन प्राप्त नहीं है कि कोई मुझमें मेरा अधिकार छीनकर, मेरी इच्छा के विरुद्ध भुक्त निर्वासित कर देता। मैं अपनी इच्छा से न चला आया होता, तो कोई इसे संभव नहीं कर पाता। और अपनी इच्छा से अधिकार त्यागन में आग्रह क्या? आरभ में लक्ष्मण भी तुम्हारे ही समान क्रुद्ध हुए मैं किंतु बात समझकर शांत हो गए और साथ चले आए। राम दृष्ट पड़े इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम भी बात समझकर मेरे साथ चल पड़ो।’

गुह हतप्रभ रह गए। राम का वह तज और यह हसी। कितने आश्चर्य है राम। चितन की मुद्रा में गुह बोले मैं तुम्हारे साथ चलन की बात नहीं सोच रहा। मैं तुम्हारा राजतिलक शृगवेरपुर में करूंगा। तुम चौदह वर्षों तक यहीं राज्य करो राम।”

राज्य ही करना हाता तो अयोध्या क्या बुरी थी।” राम पुन मुसकराए शृगवेरपुर में तुम ही राज्य करोगे, किंतु एक काम मेरा भी करना होगा।’

क्या ?' गुह्र तमय हा मय ।

‘सभावना बहुत कम है।’ राम मुसकराए दुहरा रहा हूँ सभावना बहुत कम है किंतु यदि हमारा अनिष्ट करने के लिए भरत ने इस ओर मैनिंग अभियान किया तो तुम बाधा दोग और चित्रकूट में हम इसकी सूचना भिजवाओगे।’

‘अवश्य।’

राम का विश्वास और उनकी ओर से सौंपा गया उत्तरदायित्व पाकर गुह्र महत्त्वपूर्ण हो उठे।

वार्तालाप में तनिक गिथिलता पात ही सीता बोली ‘यदि अनुचित न हो तो पूछू जेठानीजी के दंगन नहीं होगी क्या ?’

गुह्र एक शर फिर से मनुचित ही उठे धमा करना बदेही ! मैं मैनिंग की साथ लेकर चला आया था पत्नी को भूल ही गया। अब सब लोग मेरे साथ चलो। मेरे महल पर पधारो और राम को मुमबरान देव कुछ मापत हुए योल बदाचित्त बनवास की अवधि में राम किसी भी नगर में नहीं जाएंगे चाहे वह शृगवेरपुर ही क्यों न हो किंतु तुम और लक्ष्मण

‘नहीं जेठजी !’ सीता मुसकराई पति को वन में छोड़ पत्नी का राजमहल में जाना उचित नहीं होगा। जेठानी जी आशीर्वाद देने महा तब आ सकती तो हमारा सौभाग्य होता।’

राम बोले ‘गुह्र ! औपचारिकता छोड़ो हम तुम्हारे महल में नहीं जा सकते। हम स्वादिष्ट भोजन भी नहीं चाहिए। वैसे तुम्हारे राज्य में आये हैं वय भोज से जसा सरकार कर सकते हो यहीं कर दो। और यदि प्रातः विदा के समय भाभी के दर्शन हो सकें तो मयेष्ट होगा।

जसी तुम्हारी इच्छा।’

गुह्र उठ गए। अपने सनिको के साथ वे प्रवध के लिए चले गए। नेप लोग राम के निकट आ बैठे। अब तक मुमत्र भी घोडा की व्यवस्था से मुक्त हो चुके थे।

इगुनी वृक्ष के निकट लक्ष्मण द्वारा बनाई गयी पत्र शैयाओं पर राम

और सीता चले गये तो मुमन और चित्ररथ भी अपनी अपनी गैयाओं पर लेट गए। किंतु बिछली रात प्रायः जागृत रहने पर भी लक्ष्मण सोने के लिए तैयार नहीं थे। वे अपना धनुष और तूणीर लेकर कुछ दूर सन्तुष्ट प्रहरी के समान बैठ गये। मुमन भी उही व पास जा बैठे।

‘लक्ष्मण ! तुम सो जाओ भाई।’ गुह बोले ‘मैं अपने नैनिकों के साथ स्वयं जागकर पहरा दूंगा। तनिक भी चिंता मत करो।’

लक्ष्मण हस पड़े ‘भैया गुह ! मेरे सो जाने पर तुम भी सो गये तो ? तुम भैया और भाभी व प्रहरी बन बैठे रहो मैं तुम्हारा प्रहरी बन जाऊंगा।’

‘तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं।’ गुह की आश्चर्य हुआ।

‘तुम्हें मुझ पर हो तो तुम सो रहो। लक्ष्मण हम विश्वास की बात छोड़ो। तुममें कुछ बातें करने के मोह में रात भर जागूंगा। आओ बैठो।’

‘तुम अपनी दुष्टता नहीं छोड़ोगे।’ गुह के मन में ममता उमड़ आयी, ‘तुम धन्य हो लक्ष्मण। यदि तुम किसी प्रकार राम की इस बात के लिए तैयार कर लो कि वे मुझे अपना साथ ल चलें तो मैं अपना राज्य तुम्हें दे दूंगा।’

‘भैया के साहचर्य के लिए तो कोई भी अपना राज्य मुझे दे देगा। यह भावना सम्राट् दशरथ की भी थी, किंतु लक्ष्मण अपना राज्य किसी को नहीं देना चाहता।’

‘कौन-सा राज्य ?’ गुह ने पूछा।

‘भैया राम की साहचर्य।’

सीमित्र ! मुमन बोले “तुम अभी तक सम्राट् से दूर हो। तुम उन्हें पिता न कहकर, सम्राट् कहते हो।’

‘तब मुमन ! यह विषय नहीं छेड़ें तो अच्छा है।’ लक्ष्मण की आँखों में क्षण भर में ही ज्वाला घबक आयी “सम्राट् के विषय में मैंने आपको अपना निश्चित मत यहाँ ही बतल दिया था।’

रात के अंतिम प्रहर में आकर निपादराज गुह प्रातः अपनी रानी के साथ सोट। रानी ने राम और लक्ष्मण के अभिवादन का उत्तर देकर,

सीता को आनिगन म कस लिया ।

सीता की निपाद रानी से यह पहली भेंट थी, किंतु स्नेह का आधार पहले से ही स्थापित हो चुका था । निपाद रानी ऊँचे कद तथा इन्हरे बदन की ऊर्जा से भरी हुई सुन्दर युवती थी । रंग सावला था । गौर-वर्णों आय कपाओ के सौंदर्य की अभ्यस्त जाखी को वह रंग क्षण भर के लिए छटकता था किंतु वण के पूर्वाग्रह को भेदने और नष्ट करने में उसका सौंदर्य अधिक समय नहीं लेता था । आय सौन्दर्य सत्कारों में पता सीता का मन दो क्षणा में ही निपाद रानी के आकषक सौंदर्य की प्रतिष्ठा को मान गया । और फिर उस मुख भङ्गल पर भङ्गकता हुआ स्नेह उसे ममतापूर्ण बना रहा था । यौवन तथा वात्सल्य के अन्तर्गत आकषण ने उसके रूप की अलौकिक आयाम दिया था ।

तुमने विकट जोखिम का काम किया है, सीता ।' निपाद रानी ने अपना बाहुपाश ढीला कर बाहों की दूरी पर रख, सीता को प्रेम से निहारते हुए कहा ।

सीता मुसकराई राम जिस वीर पति की पत्नी ही यदि ऐसा जोखिम न उठाएगी तो दूसरा कौन उठाएगा ।

ठीक कहती हो सखी ! निपाद रानी योली युवराज के असाधारण शौर्य में किनी को भी भदेह नहीं । पर वह तनिक भ्रम से बोली यह मत समझना सीते ! कि मैं अपना ज्ञान बँधार रही हूँ । बात केवल इतनी-सी है कि हम इस प्रदेश में रहते हैं और हमारी नौकाएँ और जल-मोत दूर-दूर तक यात्राएँ करती हैं इसलिए इधर व वनो की जानकारी हम है । ये वन ऐसे नहीं हैं बहिन ! जहाँ कोई पुरुष भी सुरक्षित हो, फिर नारी की तो बात ही क्या ।

सीता ने मुग्ध दृष्टि से उस सावले सौंदर्य पुत्र के स्नेह को देखा और बोली ठीक कहती हो दीदी ! पर जब राम उन जोखिम के बीच जा रहे हैं तो मैं अपने प्राणों का क्या मोह करूँ । उन्हें रोक लो न मैं जाऊँगी, न लक्ष्मण जाएँगे ।'

निपाद रानी हस पड़ी "चतुर हो, बहिन । जानती हो युवराज को रोकने की शक्ति किसी में नहीं है । पर मैं एक असमजस में हूँ । तुमसे

क्या कहूँ—कि वे पुरुष हैं। जाखिम का सामना कर सकते हैं। उन्हें जाने दो। साथ जाकर उनका जाखिम न बनाओ। या कहूँ—कि पुरुष तथा नारी की समता सिद्ध करने के लिए इस पित्र-मत्तात्मक समाज की नारी विरोधिनी नीति का विरोध करने के लिए अवश्य साथ जाओ।'

सीता भी गंभीर हो गयी ' इस समय तो केवल यही कहो कि नारी पुष्प की स्पर्धा भूलकर मैं अपने प्रिय के प्रेम में बधी उनका संग जाऊँ। '

रानी की आँखें डबडबा जायीं ' तुम धन्य हो बहोती ! इतना प्रेम यदि सभी कहीं होता। मुझी और प्रेम करने वाले दपति को देखकर मुझे कितना सुख होता है तुम्हें क्या बताऊँ। तुम्हारे जेठ प्राणपण से प्रयत्न कर रहे हैं कि निपाद दपति सम धरातल पर, समानता की भावना से प्रेम के आधार पर शिए '

बदही ! राम न पुकारा जान का समय हो गया प्रिये ! '

व लौग घाट पर आये। जल-श्रोत सरीखी एन बड़ी-सी नौका चलन के लिए तयार खड़ी थी। उनके साथ आए सारे शम्भ्रास्य सुव्यवस्थित ढंग से नाव में लगा दिए गए थे। अनेक नाविक तथा सशस्त्र दहधर, नौका से सनद बैठे थे, और घाट पर निपाद सैनिकों की टुकड़िया उठ बिना दन के लिए प्रस्तुत थीं।

अच्छा ! अब विदा नो मित्र ! '

राम ने आर्निगन के लिए गुह को आर हाथ बढ़ा दिए।

' हम साथ चल रहे हैं भाई ! ' गुह बोले, आओ प्रिय।

निपाद रानी नाव में बैठने के लिए आगे बनीं।

'भाभी ! क्या कर रही हैं आप ! ' राम बोले, और वे गुह को ओर घूम 'अपनी सत्ता का प्रयोग मुझ पर मत करो। तुम और भाभी हमारे साथ नहीं जाओगे। तुम्हारे नाविक भी हम भरद्वाज आश्रम तक ही पहुँचाएंगे, और एन सशस्त्र दहधरों को नाव से उतर आन का आदेश दो।

राम ! यह सब मैं अपने प्रेम के कारण "

गुह का बात राम ने बीच में ही काट दी ' तुम्हारी भावना मैं

समझता हूँ। नहीं तो क्या तुम समझत हो कि हमारी रक्षा कुछ दंडधर करेंगे। दंडधरों को नौका से उतरने का आदेश दो।'

राम।

जो कह रहा हूँ वही करो भाई भर।' राम स्नट भरती वाणी में बाने तुम्हें जो काम सौंसा है उसे स्मरण रखो। अपनी सीमाओं दुग और सेना का ध्यान रखो। प्रजा को गस्त्र शिक्षा देकर मनुष्य काम के लिए सन्नद्ध रखो।

जसी तुम्हारी इच्छा राम।'

गुह न दंडधर-नायक को नौका खाली करने की आज्ञा दे दी।

सौमित्र। राम बोले सब स विदा लो और सीता को नाव में बठा कर तुम भी नाव में बठा।

अच्छा भया।

राम देख रहे थे—लक्ष्मण गुह निपाद रानी सुमित्र सुयन तथा चित्ररथ से विदा ल रहे थे। उनका कहा दूरी के कारण राम सुन नहीं पा रहे थे किंतु उनके चेहरे के भावों से स्पष्ट था कि वे परिहास की मुद्रा में थे और सब पर ही कोई-न-कोई कटाक्ष कर रहे थे।

निपाद रानी से विदा लती हुई सीता भाग्य हो उठी थी। उनका सहज विनोदी मन इस समय करुणा से भरा हुआ था। निपाद रानी का आलिंगन प्रगल्भ तथा ममतापूर्ण था। उनकी आंखों में अध्रु झलमला भाव था। सुमित्र को सीता ने अपने श्वशुर के से सम्मान के साथ प्रणाम किया था। सुमित्र की आंखों से धाराप्रवाह अध्रु बह रहे थे। राम का लग रहा था—सुमित्र अभी बद्ध सम्राट के ही समान सत्ता जूय हाकर गिर पड़ेंगे। सीता ने बहुत अच्छा किया कि वे जाय बढ गयी। सुमित्र को सभलने का अवसर मिल गया। सुयन तथा चित्ररथ को सीता ने तटस्थ सम्मान के साथ प्रणाम किया। और गुह को प्रणाम करते हुए वे फिर विनादमया हो गयी थी। उन्होंने गुह पर फिर काई कटाक्ष किया था और भोत्र जठ गुह अनुज बधू के परिहास और जठ की मर्यादा में बधे कसमसाए से मुसकरा कर रह गए।

लक्ष्मण के हाथ का अवलंब देकर सीता नाव में बठ गयी।

‘अच्छा मित्र ! विदा !’ राम ने हाथ जोड़ दिए । निपाद रानी के पास जाकर बैठकर, ‘भाभी ! अपना ध्यान रखना और निपादराज पर अक्रुश । गुठ बहुत जल्दी आवेश में आ जाते हैं ।’

निपाद रानी के मुख-मंडल पर वक्र मुसकान उठी, “वे स्त्री का अक्रुश मानेंगे क्या ? देवर ! तुम्हारे ही बड़े भाई हैं ।’

‘न ब स्त्री का अक्रुश मानें न आप पुरुष का बधन मानें, किंतु बुद्धि, विवेक, सतुलन और प्रेम की मर्यादा तो सब ही मानेंगे । अपने इन्हीं गुणों का उपयोग करना । आपकी प्रजा भाग्यवान है कि उन्हें आप जसी रानी मिली ।’

निपाद रानी हम पछी देखती हू तदमण ने तुमसे केवल सीता ही नहीं तुम्हें कुछ सिखाया भी है । तुम भी चापलूसी करना सीख गए देवर ।’

राम हंमत हुए आंग बग गये । सुमित्र के सम्मुख जाकर वे गंभीर हो गए ‘सुमित्र काका ! भरी मा का ध्यान रखना ।’

वे रुके नहीं । उन्हें भय था, सुमित्र कहीं किरस भावुक न हो उठें । सुमित्र तथा चित्ररथ की बारी-बारी गले लगाकर बोले, “सजग और सावधान रहना ।’

नौकारुण्ड होकर, हाथ के सनेत से राम ने नाविकों को चलने का आदेश दिया । बिना एक भी शब्द उच्चरित किए नाविक चल पड़े । हाथा व सनेत से ही विदा दी और स्वीकार की गयी ।

क्रमशः नाव किनारे से दूर गहर पानी की ओर बढ़ रही थी । तट पर खड़े हुए सुमित्र सुमय चित्ररथ गुह, निपाद रानी और निपाद मन्त्रि शर्न न दूर होते जा रहे थे । उनकी मुठ्ठाओं से स्पष्ट था कि वे सब तक वही खड़े रहेंगे जब तक उनकी नाव दिखाई देती रहगी ।

राम सीता और तदमण की आँखें भी किनारे पर ही लगी रही । कवन नाविकों ने ही अपना ध्यान तत्काल किनारे से हटाने जल धारा पर केंद्रित कर लिया था ।

किनारा आंखा से आभन हो जान पर, राम न अपनी नृष्टि सीता और

लक्ष्मण की आर फेरी। वे दोनों ही इस समय अन्तमुखी हुए कुछ सोच रहे थे। अब वे लोग न केवल अपने राज प्रासादों अयोध्या नगर तथा अपने राज्य की सीमा से बाहर निकल आये थे वरन अपने परिचित राया से भी परे हो गए थे। निपादराज गुह के राज्य की सीमा वह अंतिम प्रान्त था, जिसमें वे स्वयं को सहज सुरक्षित समझ सकते थे। उस सीमा को भी वे तेजी से पीछे छोड़त जा रहे थे। आज रात का पड़ाव गंगा तट पर किसी अपरिचित प्रान्त में होगा। किसी भी आवश्यक वस्तु की समुचित व्यवस्था नहीं होगी। आज ही नहीं आज से भविष्य के चौन्हा वर्षों तक यही स्थिति रहेगी। वे लोग न केवल असुरक्षित होंगे वरन सब प्रकार से असुविधा जोखिम आशकाओं तथा तनाव भरा जीवन जिएंगे। राम सोचत जा रहे थे क्या उनके लिए उचित था कि वे अपने प्रेम में बंधे लक्ष्मण और सीता को ऐसा कठिन जीवन जीने के लिए अपने साथ ले आते? प्रेम अव्यावहारिक होता है—यावहारिक कठिनाइयों की ओर स उसका आँखें बंद होती है। सीता और लक्ष्मण ने तो नहीं सोचा पर राम का तो सोचना चाहिए था। राम उनसे बड़े हैं अधिक अनुभवी हैं और उनका प्रेम भावुक न होकर विवेक से समुचित होने के कारण कतव्याकृत्य का निणय भी कर सकता है। सीता उनकी पत्नी है लक्ष्मण छोटे भाई है। उनके प्रति भी तो राम का कुछ कर्तव्य है। क्या वह कतव्य यही था कि वे उन्हीं असुविधा और जोखिम के सबग्रासी मुख में धकेल दें? पर कतव्य इन दोनों के ही प्रति नहीं है कतय तो माता कोसल्या सुमित्रा और पिता के प्रति भी है जिन्हें वे अयोध्या में छोड़ आए हैं।

राम ! सीता कह रही थी, ये नाविक हमें कहा तक पहुँचाएंगे ?

राम अपने चिंतन से उबरे। वे दूसरा के विषय में सोचत सोचते स्वयं को भूत गए थे। शृगवेरपुर के घाट पर बिदा देने के लिए वे नाव में जिन स्थान पर खड़े हुए थे वही खड़े रह गए थे।

वे आकर सीता के पास बैठ गए गंगा-यमुना के संगम पर स्थित भरद्वाज-आश्रम तक।

कितना समय लगगा ?

यदि गुह का अनुमान ठीक हुआ, तो कल दोपहर तक हम भरद्वाज मुनि के दर्शन कर पाएंगे।'

सीता मौन ही रही।

भाभी को निपादराज का अनुमान जवाब नहीं।' लक्ष्मण वरु मुसकान के साथ बोले, वे अभी गणना कर आपको बताएंगी भैया। कि इतना समय नहीं लगना चाहिए। या कदाचित वे कोई छोटा भाग ही खोज निकालें।

सीता भी मुसकरायी 'सौमित्र ठीक कह रहे हैं। अपनी गणना के अनुसार मुझे यह सब ठीक नहीं लग रहा है। य नाविक रात्रि तक इसी प्रकार चप्पू चलाते रहें और देवर लक्ष्मण दिन भर बातें भी बनाए और रात भर जाग कर पहरा भी दें—यह मभव नहा है।"

ठीक कहती हो सीते।' राम बोले मुझे भी लक्ष्मण की याव-चानुरी कुछ ऊपती-सी लग रही है। अच्छा हो कि लक्ष्मण नाव के भीतरी भाग में जाकर अपनी मोद पूरी कर लें।'

राम उठकर नाविकों के मुखिया के पास चल गए सुनो मित्र। नाव काफी गति पकड़ चुकी है। हमें काइ ऐसी विघ्नेष जल्दी नहीं है। याना लबी है। बारी-बारी कुछ नाविकों को विग्राम के लिए भज दा। कदाचित रात को भी हम बारी-बारी जागना पडे।"

जनी आपकी इच्छा।"

नाविकों का मुखिया अपनी व्यवस्था में लग गया।

लक्ष्मण आराम करने चल गये। राम ने सीता को देखा—वे अनमनी-सी निजिजी को घूरती हुई मौन बैठी थी। वह अकेली छोड़ दिया जाए ता यही उनकी सहज मुद्रा थी। सीता में गभीरता और चपलता का विविध मिश्रण था। लक्ष्मण साथ होते ही उनके व्यग्र्यों की स्पर्धा में सीता का वाग्वदग्ध्य चिर-जागरूक रहता था। वे पास न होत तो पति-पत्नी में भी हास-परिहास हो जाता था पर अकेली हात ही सीता अपनी उस चिर-गभीरता तथा मौन वितनधारा में डूब जातीं।

'कदा साच रही हा सीत ?"

सीता चौकी ऐसे ही तनिका माता कीसल्या के विषय में सोच रही थी। क्या आपको एमा नहीं लगता कि हमने उह अयोध्या में अकेली छोड़ कर उचित नहीं किया ?”

‘क्या ? ऐसी क्या बात है ?’ राम हल्के ढंग से मुसकराए ‘वे अपने राजप्रासाद में सुविधापूर्ण जीवन के बीच अपने पति के सरक्षण में है।’

‘तो। किन्तु मैंने सम्राट की रानी कन्येयों के सम्मुख जितना अक्षम रखा है उससे एकदम नहीं लगता कि कोई किसी के भी सरक्षण में है। मुझे अयोध्या का प्रत्येक व्यक्ति केवल रानी कन्येयों का दया पर पड़ा लगता है। मैं न अधिक भौंक हूँ न आशंकित, किन्तु फिर भी मैं माता कीसल्या की सुरक्षा की ओर संतुष्ट नहीं हो पा रही।’

कोई विशेष बात है प्रिय ? राम मभीर हो गए।

जाने से पूर्व मैं उनसे विदा लेने गयी थी। सीता बोली ‘मुझे देवता ही के रो पड़ी और रोत रोत उहाने कहा कि आप उनके पास से इस प्रकार भाग जाएँ जसे डरते हो कि वे आपको पकड़ कर बैठा सेंगी और आपका कोई काम अधूरा रह जाएगा’

स्थिति तो यही थी, सीता !

मैंने कहा मा ! उह कई प्रकार की व्यवस्था करने की जल्दी थी इसलिए चले गए। वे बोली जल्दी किसे नहीं होती बेटी ! पर कोई देव मैंने कितनी लची प्रतीक्षा की है। मैंने अपना दुःख कभी अपने बेटे के सामने भी प्रकट नहीं किया क्योंकि वही मरे लिए सबसे बड़ा आश्वासन था। मेरा सारा जीवन पति की प्रताड़ना और सपत्नियों की उपेक्षा की कथा रहा है। मैं एक सामान्य मामला की पुत्री—इस रघुकुल में कभी वह महत्त्व नहीं पा सकी जो एक साम्राज्ञी को मिलना चाहिए। मेरे जीवन में सुख का पहला क्षण तब आया था जब मेरा राम मेरी गोद में आया। मैंने तिन तिल कर उम पाला कि बड़ा होकर ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते वह युवराज बनेगा फिर सम्राट बनेगा—मेरे दुःख का दिन कट जाएगा। सुख की धडियाँ आएगी वर्यो वे सजोए मेरे स्वप्न को आकार मिलने को दृष्टा, जब मैंने कहा कि मैं कन्येयों के भय से मुक्त हो गयी तो इस कन्येय

न फिर दग मार दिया। वह रोज़ प्रहार करती थी, राज सस्त्र चलाती थी, और मैं अपन महाप्रहार की प्रतीक्षा में चुपचाप दम साधे पड़ी थी। मैं नहीं जानती थी बटी। कि वह घेर अनिम प्रहार को निष्पन्न करने के लिए झूठे-मच्छ बरदानों की काल्पनिक कहानियाँ लिय, पहले में ही तयार बठी है।' माता ने मुझे अपनी भुजाओं में बाँध लिया 'बटी। राम को समझाओ। वह एक बार कह दे कि वह पिता की प्रतिज्ञाओं के लिए उत्तरदायी नहीं है। उसका अभिप्रेत हाँ या न हाँ, किंतु वह अयोध्या में नहीं जाएगा। सीत। राम अयोध्या में नहीं रहा, तो मेरी रक्षा कौन करेगा? मेरा पालन कौन करेगा? "

राम विह्वल हो उठे। माँ ने, अपनी जार में कभी पुन को अपनी पीड़ा का तनिक भी आश्रय नहीं दिया था। पहली बार उन्होंने अपनी व्यथा खोलकर सम्मुख रखी थी। मैं कहती हूँ। इन प्राप्तादों में राम न भरत के निःशाल का चर्चा पचासा बार सुनी थी। कैंबेरी के मापके, ककय-नरेश, युधाजित—सब के विषय में बानें हाती थी पर राम ने अपने अप्रकाश लक्षण के निःशाल की चर्चा कभी नहीं सुनी। कभी माता कौसल्या अथवा माता सुमित्रा के मापक से यहाँ कोई नहीं आया—जैसे इन महलों में उनकी चर्चा उनका प्रवेश—सब कुछ वजित था।

पर जिस अनुपयुक्त घड़ी में माँ ने अपनी पीड़ा को बाणी दी थी। राम की अपनी पीड़ा गहराती जा रही थी—काश! माँ ने य बातें पहन कही होती। काश! विश्वामित्र अयोध्या में न आए होत और राम ने उनको वचन न दिया होता। पर अब क्या हो सकता था। राम ममार में घटत अत्याचार की झलक पा चुक थे उसक विरुद्ध लड़न का वचन दे चुक थे। उन अमरुप लोगो की पीड़ा के सामने एक व्यक्ति की निजी पीड़ा क्या अर्थ रखती है। ठीक कहा था विश्वामित्र ने—एक कहन सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने के लिए अपने मकीण पारिवारिक स्वार्थों की बलि देनी ही होगी। एक व्यक्ति के मुख के लिए—चाहे वह व्यक्ति स्वयं माना कोमलता ही हो—ममस्त ऋणियो दलित जन जातियो जान विकार रत लोगो तथा 'पाप प्रतीणित जनो की उपक्षा नहीं की जा सकती। राम का अपने सामाजिक मानवीय दायित्वों को पहले देखना

अतिथियों के लिए सघ प्रवार की व्यवस्था का निर्देश देकर भरद्वाज आकर उनके पास बठ गए।

राम ! मैं ऐसे स्थान पर बंठा हूँ जहाँ आर्यावस्त के विभिन्न भागों के सब प्रकार के लोगो का आवागमन लगा रहता है। मेरे पास अधिकांशतः ऋषि मुनि तथा सापसगण ही आते हैं। राजपुरुषों तथा व्यापारियों का आतिथ्य का अवसर भी कभी कभी मिलता है। किंतु तुम जैसे युवराज का अपनी पत्नी और भाई के साथ शुभागमन आज पहली बार हो हुआ है। क्या ऐसा संभव है राम ! कि तुम लोग यही मेरा आश्रम मया मेरे आश्रम के निकट ही अपने वनवास की अवधि व्यतीत कर सको ?

राम बहुत मीठे ढंग से मुसकराए। यदि ऐसा संभव होता तो उस हम अपना सौभाग्य समझते ऋषिबन्धु ! किंतु यह स्थान सगम काल पर होने के कारण अयोध्या से कितना निकट है कि वहाँ से यहाँ और यहाँ से वहाँ व्यक्ति तथा समाचार इतनी शीघ्रता और मविद्या से पहुँच सकते हैं कि यह वनवास न होकर वनवास का नाटक मात्र रह जाएगा। अयोध्या से निरंतर ऐसा संपर्क बनाए रखना न हमारे लिए श्रेयस्कर है न अयोध्या के लिए।"

ठीक कहते हो राम ! " ऋषि चिंतन में अधःजीन हो गये तो फिर कहा आश्रम बनाने का निश्चय किया है ?

माता कंकेयी की आत्मा दडकारण्य में जाने की है। अतः हम वही जाना है किंतु मार्ग में एक एक कर ऋषि मुनियों तथा जन साधारण के जीवन से परिचय प्राप्त करते हुए उनकी कठिनाइयों को देखते हुए उनके माथ समय व्यतीत करते तथा उनकी सहायता करते हुए हम आगे बढ़ना चाहेंगे। वहन पड़ाव के लिए आपका निर्देश की अपेक्षा है। वैसे मैं चाहता हूँ कि ऋषि वाल्मीकि के दर्शन कर हम चित्रकूट के आस-पास मदाकिनी-तट पर तपस्वियों के साथ कुछ समय बिताएँ।

'तुमने बहुत ठीक सोचा है बत्स !' ऋषि कुछ उदास भी थे और प्रसन्न भी। 'तुम्हारी दोनों ही बातें अच्छी हैं। चित्रकूट बहुत सुंदर स्थान है। वहाँ की प्राकृतिक शोभा अदभुत है। मदाकिनी का जल स्वच्छ, निमल

तथा स्वास्थ्यकर है। आस-पास कोई नगर अथवा जनपद न होने के कारण बहुत जन रब नहीं है, अनेक तपस्वियों के आश्रमा के कारण जन शून्यता भी नहीं है। किंतु वरस "ऋषि मोन हा गय।

किंतु क्या ऋषिवर।' लक्ष्मण ने पहली बार अपना मोन तोड़ा।

सीता मुसकराई—'लक्ष्मण की उत्सुकता जाग उठी थी।

"वह स्थान अब बहुत सुरक्षित नहीं समझा जाता।' भरद्वाज बाल राक्षसा की दृष्टि उस क्षेत्र पर बहुत दिनों से लगी हुई थी। अब क्रमशः उनका आतंक बढना जा रहा है। यदा-वदा होते-वते उनके आक्रमण अब नियमित घटनाओं में परिवर्तित होत जा रहे हैं। उस क्षेत्र में बसने वाला आय तथा आयेंतर जातियों के टोले पुरके शन शन उजड़त जा रहे हैं। राक्षस नहीं चाहत कि सामान्य जन परिश्रम कर ईमानदारी से अपनी आजीविका कमाए तथा शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करें। वे नहीं चाहत कि तपस्वियों तथा बुद्धिजीवियों का ज्ञान और बल साधारण जनता को मिले, ताकि उनका जीवन सरल हो सके। वे ज्ञान विज्ञान को जन-साधारण से दूर रखना चाहत हैं। वे नहीं चाहत कि विभिन्न जातियां परस्पर एक-दूसरे के निकट आए और परस्पर अपने-अपने ज्ञान का लाभ बाँटें। चित्रकूट में अब अधिकांशतः भीरु तपस्वी बने हैं जो राक्षसों के किसी अत्याचार का विरोध नहीं करत वहाँ निधन तथा उपायहीन बनवासी बचे हैं, जिनके पास अथवा स्थाना पर जीविका कमाने का कोई सबल नहीं है या वे सुविधाजीवी सोलुप जन बचे हैं जो राक्षसों के सहायक होकर स्वयं राक्षस हो गये हैं।

प्रायः यही स्थिति सिद्धाश्रम प्रदेश की भी थी।' लक्ष्मण धीरे से बोले।

दुष्ट सचित्र घन हिंस्र पशु-वल तथा भ्रष्ट राजनीतिक सत्ता की पुजीभूत कृति, इस राक्षसी प्रवृत्ति को यदि न रोक गया तो वह आश्रमा का क्या, समस्त आर्यावत्त और देवभूमि को भी घस लगी। पहन तो सुमाली के भाई-बांधव ही राक्षस थे अब अनक यक्ष गंधर्व किरात तथा आय भी राक्षस होत जा रहे हैं। स्वर्ण की अपना सबस्व मातने वाला मनुष्य के पशुत्व को उकसाने वाला रावण प्रत्यक्ष दुष्टता को प्रथम दे रहा है। वह

समस्त मानवीय मूल्यों का ध्वंस कर रहा है। तांत्रिक अधविश्वासों तथा अभिचार कृत्यों से वह 'तान एव सत्य का गला घाट रहा है। मानवता के भविष्य के स्वरूप की अवना कर, वह किसी भी प्रकार अधिकाधिक भोग-विलास में लगा हुआ है।'

इसका प्रतिरोध कस होगा ऋषिवर ? सीता वाली, 'क्या इन दा धनुर्धारी वीरा के द्वारा ?'

'नहीं पुत्रि ! ऋषि हंस, प्रतिरोध करेगी जागरूक तथा चतुर, भ्रष्ट व्यवस्था को पसम करने वाली अपने श्रम से आजीविका अर्जित करने वाली जनता। ये दो धनुर्धर तो उसका मकल्प के प्रतीक मात्र हैं। यदि कोई यह समझता है कि दो 'व्यक्ति विश्व की प्रवृत्तियों का रोक सकते हैं, तो यह भ्रम है। वे प्रभावित कर सकते हैं जन मत तयार कर सकते हैं मार्ग दिखा सकते हैं नेतृत्व कर सकते हैं। वस राक्षसत्व प्रकृति का अनपेक्ष और आदिम रूप है प्रत्येक युग उसका अपन ढंग से विरोध करता है। ये धनुर्धर उसका विरोध करने वाले न तो पहले 'व्यक्ति हैं न अंतिम होंगे। यह सघन तो चिरन्तन है कभी तीव्र हाता है कभी मंद। कहीं केन्द्रित होता है कहीं विवेन्द्रित। आज भी प्रयाग से अधिक यह चित्रकूट में है चित्रकूट से अधिक जनस्थान में और जनस्थान से अधिक किष्किंधा में और उससे भी अधिक लका में।'

राम कुछ विस्मित हुए 'ऋषिश्रेष्ठ ! जनस्थान के विषय में मुझे गुरु विश्वामित्र ने बताया था किन्तु किष्किंधा और लका के विषय में मुझे ज्ञात नहीं था। वहां कौन रावण का विरोध कर रहा है ?

व्यक्ति रावण से अधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण है। ऋषि बोल विरोध उस दुष्ट प्रवृत्ति और भ्रष्ट व्यवस्था का है जिसका अधिनायकत्व रावण कर रहा है। जनस्थान में अगस्त्य और पुत्री लोपामुद्रा उससे जुध रहे हैं सशस्त्र जन बल तयार कर। किष्किंधा में बाली का छोटा भाई सुग्रीव उसके सहयोगी हनुमान और जामवत यहां तक कि बाली का तरुण पुत्र जगद भी, रावण के निरंतर वधमान प्रभाव से प्रतिदिन उत्पन्न रहे हैं। किन्तु उनकी समस्या और भी विकट है। उनका अधिपति बाली स्वयं राक्षस नहीं है। वह एक प्रकार का पूजापाठी और कमकाठी व्यक्ति है, जो

उस धार्मिकता का आवरण प्रदान करता है, किन्तु उसमें कुछ दुर्बलताएँ हैं। वह स्त्री-नानुप और कामी हैं। फिर रावण का मित्र हाने के कारण न कवन वह अधिकाधिक सुविधाजीवी होता जा रहा है, तथा प्रजा की उपेक्षा कर रहा है, वरन् रावण के बढ़त हुए प्रभाव का विरोध भी नहीं कर रहा। सुग्राव और उसके साथी विकासमान दुष्टता को देख रहे हैं, और भीतर-हा भीतर ऐंठ रहे हैं। और अतः म, स्वयं रावण के अपने घर में विभीषण और उसके मुट्ठी भर साथी हैं। विभीषण रावण का भाई होत हुए भी, उसकी किसी नीति से सहमत नहीं है, किन्तु रावण के सम्मुख वह पूणत अशक्त है। राघव ! आज राक्षसी शक्ति का मगटित है और मानवीय शक्तियाँ विखरी हुई हैं। विजय संगठन की होती है। अतः राक्षसी तन्त्र का ध्वम करने का श्रेय भी उसी व्यक्ति को मिलेगा, जो राक्षस विरोधी शक्तियों का संगठन करने में सफल होगा ।

सहसा भरद्वाज अत्यन्त भावुक हो उठे, 'और मेरी विध्वना यह है राम !' कि मैं शरीर से महा बैठा हूँ और आत्मा मेरी लोपामुद्रा और अगस्त्य में बसती है। उन्होंने राक्षस विरोधी इस सधप को चित्तन के घरातल से, कम के घरातल पर उतार दिया है। सधप केवल सिद्धांत के घरातल पर हाता है, तो प्रवृत्ति का विरोध कर हम व्यक्ति के साथ समझौता कर जी लेते हैं, किन्तु सधप के कम घरातल पर उतरने के पश्चात् कोई समझौता नहीं होता सम-वय नहीं होता सह-अस्तित्व नहीं होता ।"

भरद्वाज मोन हो नहीं हुए किसी ओर लाक में लीन हो गये। कोई और व्यक्ति भी नहीं बोला। चारों ओर निस्तब्धता छा गयी। सीता ने दृष्टि उठाकर राम को देखा—वे भरद्वाज से कम लीन नहीं थे। इतने नीम व कभी-कभी ही होत थे और तभी होते थे, जब उनके मन में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण घटित हो रहा होता था, और उनका निश्चय करने का क्षण होना था जब कोई विचार कम में परिणत हो रहा होता था और लक्ष्मण ! लक्ष्मण के मन में जो कुछ था वह सब उनके मुख मङ्गल पर प्रतिबिम्बित था। वे उग्र से उग्रतर होते जा रहे थे

मैया ! हम यहाँ से कब चलेगे ?' सहसा लक्ष्मण ने पूछा ।

आनी अन्तमुगी दलि ता राण भर राम न प्रसावाचक मुग न
सदमन को गया और दूसरे ही राण के गिमगिमाकर हुन पड़े । अर्पि
येष्ट । आरकी बाता न सदमन के उपस्थे ब। जग दिया है । उ है गया
अपाम मानवता और रा । महर की मयम भूमि में पट्टन की जल्नी मय
ली है । व अथ दग आधम म अधिब नव नहीं पातग ।

भरडाज मुगहराण मैं ता बय म कामना कर रहा हूँ कि जन जन म
यह उपस्थ जाग । यदि मरी बातों न सदमन के उपस्थ को जगाया है तो
मैं थय हुआ राम । पर पुन मीमिच । अथ गल्या का मय है । इस मय
पाता उबिग नहीं । आत्र राण मेरे ही आधम म आनिय पहा बगो । बर
मान प्रसवा करना । भर गिल्य अमन पदाव तक मुगहारे माय जाणग—
और मुगहारे मयामनों व परिवहन म मुगहारी गहापता करेगे ।

यहा उबिग होगा । राम बात क्यों बनेही ?

अधर की क्या दृष्टा है ? सीता न सदमन की ओर गया ।

त्री अर्पि दल का आये है । सदमन अमन आनीश का दवा र
य ।

भरडाज-जिह्वों व माय दमता पार कर विनय की ओर बदन ही राण व
मममय दृष्टि का धन गला है गया । पर भूमि प्रदान की भूमि के ममान
उत्ताऊ नहीं थी । बनी-नही का देन भी प । विनु अर्पि दल घनी रा ही
लोरी मादिलों गुदा संदा-मुगी पीरा व मग डरी हुई थी । मरी घनी म
म मर दायर की जिह्व निजनी हुई गिगार देनी थी । निजिन व
मे इनम घुना बदन अर्पि माया में विदमान था । बर्पिग ली
जनदराऊ लदी ही भूमि के बाणन मला दलन की मर मे आनीश का
ओर की थी मर् विनय व आननों मे हो वर आर वदन की अर्पि
निगार थी ।

दली ही भूमि के लल है जन लल ललन मर हर हो लदी र् और
जिह्व की ललाई थी ललल, निजने मरी थी । मममममम मर लल
मममममम ल ललाई जन दलन की जिह्व लल लली थी जिह्व विजने
जिह्वे ललल लललल लल । विनु दल म लली लल लली म—म

आवागमन की सुविधा नहीं थी। कदाचित् इसी कारण से जनसंख्या विरल ही थी।

पयस्विनी नदी पार करते ही वात्मीकि आश्रम की सीमा आरम्भ हो गयी थी। आश्रम के चिह्न प्रकट हात ही, राम ने अपन पग रोक लिये। उनके पीछे आत हुए लक्ष्मण सीता तथा भरद्वाज शिष्य भी रुक गये। राम ने अपन हाथों के खड्ग, कंधों के धनुष तथा पीठ पर दोनों ओर बंधे हुए भारी भस्त्रम तूणीर उतारकर पथरी पर रख दिए। यह संकेत था कि यहाँ अधिक देर तक रुकना पड़ सकता है। सबन अपन बंधा बाहुजी तथा अपन हाथों के गस्त्र भूमि पर रख दिए।

आश्रम की मर्यादा के अनुसार सशस्त्र के भीतर जा नहीं सकते थे, और शस्त्रों का इस प्रकार वन में असुरक्षित छोड़कर स्वयं आश्रम के भीतर चले जाना, उचित नहीं था।

राम ने लक्ष्मण को आर देखे।

मैं ऋषि के दर्शन कर अनुमति ले आऊँ ?

यही करना होगा।" राम मुसकराए।

लक्ष्मण गस्त्रहीन ही आश्रम के मुख्यद्वार की ओर बढ़ने ही वाले थे कि चार अपरिचित ब्रह्मचारियों ने उनके सम्मुख आ, हाथ जोड़ सम्मानपूर्वक प्रणाम किया।

राम ने देखा—वर्ण सबका एक ही था। किंतु वन और वास्तु का भेद स्पष्ट कह रहा था कि वे ब्रह्मचारों विभिन्न जातियों से संबद्ध थे। दो गौर वन के थे। दो पीताम्ब वर्णी थे। उनके शरीर पर भूरे रंग के पतले लंबे लोम थे। निश्चित रूप से इस प्रदेश से कुछ आयु आयेंगे जातियों की आवादी भी आरम्भ हो गयी थी। वात्मीकि आश्रम में जाति मिश्रण है तो नय आश्रम में भी यही स्थिति होगी।

आय ! कुनपति ऋषि वात्मीकि की ओर से हम आपका स्वागत करते हैं। वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सीता चकित रह गयी। ऋषि को हमारे आगमन की सूचना कैसे मिली ?

‘दवि’ यन् तो ऋषि ही बता सकेंगे।”

राम ने अपने लुण्णीर पाठ पर बांधे धनुष कथा पर टांग घड़न हाथ में
ले लिया

ब्रह्मचारी सहायता में भाग बड़ दिनु राम ने उल्टा राख दिया 'मित्र !
अभी तुम्हारी सहायता की आवश्यकता नहीं है । यह सुनकर राम, 'आवश्यकता
ज्ञान पर तुम्हें कष्ट करना होगा ।

ब्रह्मचारियों ने उनकी अवधानों की । उनमें बाबाजीजी गुरु साग कृति
की कुटिया के द्वार पर आया । राम एक बार फिर जग भगवन् जग में पड़ गए
दूतों गार कम्पना का व करा करे ?

तभी कुटिया के भीतर में कृति का स्वर सुनाई पड़ा 'वरा ! भीतर
आ जाओ । दूत कम्पनों की भी साथ में आओ ।

राम ने कुटिया में प्रवेश किया । उनमें बाबाजीजी तमा लक्ष्मण भाग
और भी में भरझात गिर्यों ने प्रवेश किया ।

अन्ता गायान उग कान में रख दो, राम !

गार कम्पन कुटिया के कोने में ध्वजापातुवक गुरु गिर्यो । कृति ने
साथ भरकर कम्पन का दया और मुद्रक दूता 'वरा हा तुम ?

साथ ही कृति है कृतिपर !

राम कृति के सम्मुख पामपी भागकर बैठ गए । उनकी बायीं ओर
मीना बटी, दायीं ओर मरुत । दूसरी पक्ष में भरझात गिर्यो बग गए ।

आधम के ब्रह्मचारी बड़ भावधर्म में उन कम्पन का देख रहे थे,
राम सा हा पता के भी उल्टे ने ज्ञान गार कम्पन में दया हों, अथवा राम की
हम कम्पन याता का प्रयोग उनको समझ में न आता हो ।

राम ने बाग आरध की आवाज हमारे आन की मुखता के गिर्यो
दुःख ? हम गुरु के कृत है कि आज ज्ञान परिवर्तन में पक्षि पक्षियों के
कृत दिनु गुरु है और उनका पुन ज्ञान आन का वग रचना है । मरी
छात्रों को कि ज्ञान आन परिवर्तन में अगुरु के गुरुगुरु अन्ती समर्थ
में भीत रहे हैं ।

कर्म के दिनु गुरु राम कि सुमन में मरी आनन्दिक कृति
का वग रचना मरी मान दिनु मरी आन मनेक कर्मिक पक्षि के
के है । तुम ! ज्ञान परिवर्तन के गुरुगुरु मरी है । अगुरु

साधना ता करत हैं, उसके माध्यम से जन सामान्य तक पहुंचते भी हैं उनमें आय के पक्ष और अ-आय के विराध का प्रचार भी करत हैं, किंतु जत्र कभी आत्मरक्षा की आवश्यकता पड़ती है तब हम अपने शस्त्रधारी शत्रुओं का विराध नहीं कर पात और अपनी कला के साथ गूट हो जात हैं। क्या यह उचित नहीं कि हम अपनी कला के साथ-साथ शस्त्र भी धारण करें ।

सीता का लगा मुखर के चेहरे का आवेश असाधारण था। बोली 'ऋषिवर !' इस ब्रह्मचारी का प्रश्न मात्र सैद्धांतिक विवाद नहीं है। वह मवन्नात्मक और भावनात्मक घरातल पर भी इन प्रश्नों में उलझा हुआ है। यह उनके मस्तिष्क का ही विवाद नहीं उसके हृदय की उलझन भी है।

ऋषि उल्लसित हा उठे, तुमने ठीक पहचाना पुत्रि ! मुखर के चित्तन की पंथभूमि में उसके अपने जीवन की घटनाएं हैं। यह बालक सुदूर दक्षिण से मरे पास आया है। इसका पिता बहुत अच्छे कवि तथा संगीतज्ञ थे। घर का राक्षस सैनिकों ने इनके कुटुंब को नष्ट कर डाला।

'सुदूर दक्षिण से यहां तक के बीच अनेक आयम पड़ते हगि, मुखर उन सब का छोड़कर इतनी दूर क्यों चला आया ?' लक्ष्मण ने ऋषि की बात के बीच में ही पूछा।

'संगीतकार पिता का प्रभाव। वह कला की साधना से गूय किमी आश्रम में नहीं टिक सका। किंतु कुटुंबियों के बध का भी मुखर भूला नहीं पाता। यह प्रतिक्षण शस्त्र का आकर्षण का अनुभव करता है। तुम्हारे शस्त्रों में भी यह अभिभूत हो उठा है, और शस्त्र विद्या तथा शस्त्र प्रशिक्षण की रात सोच रहा है।

किंतु यह बालक कही बहुत गलत भी नहीं सोचता गुरुवर !' सीता वाली, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कला का साधक शस्त्र की साधना भी करे। आपके इस आश्रम में काव्य और संगीत के साथ थोड़ा-सा समय शस्त्र विद्या को क्या नहीं दिया जा सकता।'

मैं तुम्हारी बात का विरोध नहीं करता पुत्रि !' वाल्मीकि बोल, 'किंतु यदि ऐसा हो सकता, तो कदाचित्त हम प्रत्येक कलाकार को पूरा

है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनेक माग है पुत्र। एक माग वह है जो तुम लोगो ने चुना है—शस्त्रो से अयायि का दमन। और एक माग वह है जो मैंने चुना है—कला की साधना। काव्य और मगीत की साधना, ताकि शब्द की शक्ति से लोगो के मन में अयाय का विरोध जगाया जा सके। याय का पक्ष समझाया जा सके। यदि प्रत्यक्ष व्यक्ति तुम्हारे समान अयाय का सशस्त्र विरोध करेगा और कोई भी व्यक्ति भरे समान शब्द शक्ति से याय और अयाय का भेद उचित और अनुचित का अंतर नहीं बताएगा तो अयाय का विरोध धीरे धीरे शस्त्र शक्ति के कारण बवल विरोध में बदल जाएगा। इसीलिए यह आवश्यक है पुत्र। कि हम जन सामान्य को उसके अधिकारों के प्रति मनेत बनाएँ उस उसको शत्रु शोषक वर्ग की पहचान कराएँ उस धानवता के उच्छादना का ज्ञान दें और साथ ही साथ उनमें अयाय के विरोध की भावना जाग्रत करें, ताकि जब कभी वे विरोध करें वह मात्र विरोध न होकर अयाय और शोषण का विरोध हो। वे यह जानें कि कहाँ उह शक्ति शस्त्र और हिंसा का प्रयोग करना है कहाँ उनका प्रयोग अनुचित है। हम उह समझाना पड़ेगा पुत्र। कि शस्त्र और सनिक में क्या भेद है। निस्वाय हाकर जन बल्याण के लिए शस्त्र का प्रयोग करने वाला वीर सनिक है, अथवा वह दस्यु है। इसीलिए मैंने कला के माध्यम का आश्रय लिया है।

राम ने देखा—मुखर बड़ी तमयता से गुरु की बात सुन रहा था, किंतु उसकी भगिमा कह रही थी कि वह उस बात से सहमत नहीं है। अपने मुखोच को बड़ी चष्टा से भग कर वह बोला गुरुवर! एक शका मुझे भी है।

बोली वत्स! ऋषि मुसकराएँ एक साहसी प्रश्न अनेक दमित सकुचित जिज्ञासाओं को उठाकर उनके परों पर खड़ा कर देता है। लक्ष्मण के प्रश्न ने तुम्हारे साथ यही किया है। मैं जानता हूँ तुम्हारा इस विषय में पर्याप्त रचि है, और जब कभी ऐसा विवाद उठ खड़ा होता है तुम्हारे मन में भी उद्यत पुथल मच जाती है। पूछो।

मुखर ने अपनी तमयता को समेटा अपनी शक्तियों में सामंजस्य स्थापित किया और बोला, गुरुवर! मुझ ऐसा समझ है कि हम कला की

साधना तो करत हैं, उसका माध्यम स जन मामा य तक पहुँचते भी है उनमें माय के पक्ष और अमाय के विरोध का प्रचार भी करत है किंतु जब कभी जागरूकता की आवश्यकता पड़ती है तब हम अपने शस्त्रधारी शत्रुओं का विरोध नहीं कर पाते और अपनी कला के साथ नष्ट हो जाते हैं। क्या यह उचित नहीं कि हम अपनी कला के साथ-साथ शस्त्र भी धारण करें ?

सीता का लगा, मुखर के चेहरे का आवेश अमाधारण था। बोली, ऋषिवर ! इस ब्रह्मचारी का प्रश्न मात्र मर्यादित विवाद नहीं है। वह मवेदनात्मक और भावनात्मक घरातल पर भी इन प्रश्नों में उलझा हुआ है। यह उसके मस्तिष्क का ही विवाद नहीं उसका हृदय की उलझन भी है।

ऋषि उल्लसित हो उठे 'तुमने ठीक पहचाना, पुत्रि ! मुखर के चित्त की पृष्ठभूमि में उसके अपने जीवन की घटनाएँ हैं। यह बालक सुदूर दक्षिण से मरे पास आया है। इसका पिता बहुत अच्छे कवि तथा संगीतज्ञ थे। छत्र के राक्षस सैनिकों ने इनके कुटुंब को नष्ट कर डाला।'

सुदूर दक्षिण से यहाँ तक के बीच अनेक आश्रम पड़ते होंगे मुखर उन सब को छोड़कर इतनी दूर क्यों चला आया ? ' लक्ष्मण ने ऋषि की बात के बीच में ही पूछा।

मगीतकार पिता का प्रभाव। वह कला की साधना से शून्य किसी आश्रम में नहीं टिक सका। किंतु कुटुंबियाँ के वध को भी मुखर भुला नहीं पाता। यह प्रतिक्षण शस्त्र के आकर्षण का अनुभव करता है। तुम्हारे शस्त्रों में भी यह अभिभूत हो उठा है और शस्त्र विद्या तथा शस्त्र प्रशिक्षण की बात साच रहा है।

किंतु यह बालक कहीं बहुत गलत भी नहीं सोचता गुरुवर ! सीता बोली, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कला का साधक शस्त्र की साधना भी करे। आपके इन आश्रमों में काय और संगीत के साथ बड़ा-सा समय शस्त्र विद्या को क्या नहीं दिया जा सकता।"

' मैं तुम्हारी बात का विरोध नहीं करता, पुत्रि ! वास्तविक बोल, किंतु यदि ऐसा हो सकता, तो कदाचित्त हम प्रत्येक कलाकार को पूर्ण

मानव बना सकत । जो सच्चे कलाकार 'याय-अ-याय कत-य-अकत य तथा अपने सामाजिक दायित्व का समझ सकें और उ-ह कार्यावित कर सक— ऐसे कलाकार दुर्लभ ही नहीं अलभ्य भी है बदेही । कला की साधना बनी ईर्ष्यालु है । वह कलाकार को अ-य किसी भी दिना म ताकने का अवकाश नहीं देती । कलाकार क्रमश अपनी साधना म इतना डूबता चला जाता है कि वह अ-य प्रत्येक क्षेत्र की उपेक्षा कर देता है । संभवत मर भीतर का कलाकार भी मेरे व्यक्तित्वको पूरा नहा बनने पैता वह स्वयं अपने आपका ही पूरा बनाना चाहता है । न मैं शस्त्र विद्या का अभ्यास कर पाया न अपने शिष्यों को करा पाया । परंतु मैं इसका विरोधी नहीं हूँ । संभव ज्ञान पर इस आश्रम में शस्त्राभ्यास भी कराया जाएगा ।

राम की दृष्टि मुखर के चेहरे पर जमी हुई थी । मुखर न अपने कुलपति का स्पष्टीकरण सुना किंतु उसके चेहरे पर अजित विरोध अभी मिटा नहीं था ।

राम बाने तो उनका स्वर अत्यंत स्नेहित था मुझे लगता है बंधु । कि तुम्हारे कुटुंब के साथ हुए अत्याचार न तुम्हारे मन पर अमिट छाप छोड़ी है । वह छाप तुम्हारे मन म निरंतर घणा उपजाती है, और वह घृणा तुम्हें शांत नहीं होने देती ।'

मन की बात को प्रकट होत देख मुखर झेंपा 'आपने ठाक ममभा आय । लज्जित हूँ मेरे मन में घणा का भाव आज भी जमा हुआ है । बहुत चाहने पर भी मैं अपने मन में सात्विक भावों को प्रतिष्ठित नहीं कर सका ।'

सीता मुसकराई 'तुम ऐसा क्यों समझत हो मुखर । कि यह घणा सात्विक नहीं है ।

देवि ! हम घणा को सात्विक कैसे कह सकते हैं ?'

आश्रम की शांति की कुछ उपमा करता सा लक्ष्मण का किंचित उच्च स्वर गूजा 'अ-याय के विरुद्ध मन में जो घणा उपज वह वाक्यशान्त्र म चाहे सात्विक भाव नहीं ब्रह्मचारी । किंतु ऐसी घणा पूज्य है पवित्र है अशौचिक है । उसे तो कण-कण संचित करना चाहिए । यदि ससार म ऐसी घणा न रहे तो अत्याचार से कौन लड़ेगा ? इस घणा के कारण नुम अपने

आपको विशिष्ट जन मान सकते हैं। लज्जित होना, मात्र अज्ञान है।'

आय लक्ष्मण।" मुखर अपने कोमल स्वर में बोला, 'आज हमारे परिवेश में रोज ही कोई-न कोई अत्याचार होता है प्रतिदिन मानवता की हत्या होती है। यह सारा ऋषि समुदाय ब्रह्मचारी समाज, आचार्य और मुनि—सब देखते और सुनते हैं। वे ज्ञान अत्याचार के समयक नहीं हैं किंतु उनमें से किसी के भी मन में वैसी तीव्र घणा नहीं है जैसी मेरे मन में है। यही मुझे साचने को बाध्य करता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मरी प्रकृति ही अधम है, और शय लोगों की सात्विक प्रकृति के कारण उनके मन में घणा में उपजती हो।"

लक्ष्मण उत्तर में कुछ कहने को उत्सुक थे किंतु राम ने बात का सून पहन पकड़ा, "बधुवर मुखर! अयं ऋषि मुनि, ब्रह्मचारी आचार्य अत्याचार सोचते हैं मैं नहीं जानता। पर मेरा विचार है कि परिवेश में होने वाले अत्याचारों को केवल सुनकर उनकी सूचना प्राप्त कर सामान्य व्यक्ति के मन में असहमति ही जन्म सकती है उसके विरुद्ध तीव्र ज्वलंत उग्र विरोध उत्पन्न नहीं होता। हम सूचनात्मक घरातल पर ही उससे जुड़ते हैं भावनात्मक घरातल पर उससे हमारा कोई संबंध नहीं होता। इसलिए तुम इस प्रकार सोचो कि दुर्भाग्य या सौभाग्य से वह अत्याचार तुम्हारे अपन मने वध बाधवा के साथ हुआ। तुम निजी रूप से उस अत्याचार से पीड़ित हो। इस प्रक्रिया ने तुम्हारे मन को इतना निमल तथा सबदन्शील बना दिया है कि तुम्हारे मन में भावनात्मक घरातल पर उस अत्याचार के विरुद्ध घणा जन्म लती है। नेप लीगी को ऐसा अवसर नहीं मिलता। वस्तुतः कोई समुदाय निजी रूप से पीड़ित होकर अत्याचार के विरुद्ध कम उठता है व्यक्ति ही उसका अनुभव अधिक करता है। समुदाय व्यक्तियों का अनुसरण करता है। ममय है इस व्यक्तिगत निजी लिप्ति के कारण ही तुम अत्याचार के विरुद्ध अपने आस पास के समुदाय का नेतृत्व कर सका।"

माधु, राम। वाल्मीकि बोले तुम मुखर की आत्मग्लानि को दूर कर सका। मैंने भी इसे यथाशक्ति समझाया था। पर, वक्तवित मैंने इस रूप में मोचा ही नहीं। यह भी प्रकृति का एक द्वंद्व ही है पुत्र! अत्याचार ने पीड़ित व्यक्ति सबसे अधिक दुःखी भी होता है पर वही दुःख उस अत्याचार

के विरुद्ध लड़ने की शक्ति भी देता है। अतः अत्याचार का नाश करने के लिए उसका घास बनना भी आवश्यक है। जो जितना अधिक पीड़ित और शोषित होगा, उसके मन में अत्याचार और शोषण के विरुद्ध उतनी ही उग्र ज्वलत अग्नि धधक उठेगी और वह याय का भी उतना ही बड़ा समर्थक होगा। इन्हीं प्रवृत्ति का द्वन्द्व न बहू तो क्या कहू—जो व्यक्ति जितना बड़ा अत्याचारी और शापक है वह जन सामान्य में याय के लिए उतनी ही उदार आग जला देता है।

ऋषि मौन हो गए। कुटिया में स्तब्धता छा गयी। सब अपने-अपने मन की किन्हीं तहों में खोए थे। बोल कोई भी नहीं रहा था।

मध्याह्न के भोजन के लिए राम सीता लक्ष्मण सधा उनके साथी भरद्वाज गिर्य्यों को कुटिया से बाहर आना पड़ा। ऋतु अनुकूल होने के कारण भोजन की व्यवस्था खुले में की गयी थी। सारे शिष्य पवित्रबद्ध बैठे थे। विभिन्न जातियों के ब्रह्मचारियों आचार्यों तथा कुलपति में कहीं कोई भेद नहीं था। भोजन सामग्री के रूप में ब्रह्मचारियों से बचपन तथा बंद मूल परोस दिए थे।

ऋषिवर ।” राम ने कुलपति को संबोधित किया ‘आपके शिष्य अधिकांशतः कला को एकाग्रता से लगे रहते हैं वे जीविका उपार्जन के लिए अन्य कोई कार्य करने का ता समय नहीं पाते होंगे ?’

तुम्हारा अनुमान ठीक है राम । वाल्मीकि बाले, ‘यह हमारी एक बड़ी कठिनाई है।’

आप किसी राज्य से अनुदान की इच्छा नहीं रखते ?

‘राज्य का अनुदान । वाल्मीकि गहरी चिन्ता में पड़ गए अनेक बार साक्षात् राम । पर राजाश्रय कालाकार की कला का काल है पुनः । राज्य के अनुदान का आरम्भ में कदाचित् कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता । वह कला को सुरक्षण देता है, किन्तु जब उसके संरक्षण में पल कर कला शक्ति अर्जित कर लेती है तो संरक्षक राज्य उस शक्ति का उपयोग अपने पक्ष में करना चाहता है जो कला के लिए हान्यकारी नहीं है । राजाश्रय में पलकर किसी राज्य का अनुदान लेकर कलाकार को उस आश्रय तथा अनुदानदाता का

ध्यान कला से भी अधिक रखना पड़ता है। पुनः अयाय वही होता है, जहा सत्ता और घन होता है। कला का मूल घम अयाय का विरोध है। कला जन सत्ता और घन के आश्रय में चली जाती है ता अपने मूल घम से च्युत हो जाती है।

‘अब यह है कि’ राम मुसकराए ‘जिसके आश्रय में कला पनप सकती है वह उसी का विरोध करती है। राज्य कला को आश्रय देता है, तो वह उसके साथ ही अपने काल का भी आह्वान करता है।’

‘हां, पुत्र।’ वाल्मीकि बोले, ‘कलाकार विद्रोही हाता है और शासन विद्रोह नहीं चाहता। कलाकार और शासन सहमत हैं तो कलाकार का ईमानदार न समझा। शासन द्वारा पूजे जाने वाला कलाकारी में वास्तविक कलाकार विरले ही होते हैं अधिकांश भांड मान्य होते हैं। इसीलिए मैंने अपने आश्रमवासियों तथा कला को किसी राज्य से जोड़ने किसी शासन अपना सत्ता से घातित करने का प्रयत्न नहीं किया। मैंने सदा चाहा है कि कला अपने बल पर विकसित हो अपने परो पर खड़ी हो मध्यासमय आर्थिक रूप में भी स्वावलंबी हो। यदि ऐसा न हो सके तो किसी राज्य से अनुदान लेने के स्थान पर वह जनता में अपनी जड़ें फनाए। जन-सामान्य से अपने लिए प्राण-शक्ति अर्जित कर।’

‘इसमें कोई कठिनाई नहीं है क्या?’ सीता ने पूछा।

‘पहले तो दिखाई नहीं पड़ी थी किंतु अब उस ओर से भी क्रमशः चिंताएं ही घरती जा रही हैं।’

‘कसी चिंताएं?’ लक्ष्मण उत्सुक जिज्ञासा से उनकी ओर देख रहे थे।

‘वाल्मीकि थोड़ी देर मौन रहें फिर बोले, पुत्र। अभी उनका अग्रिम आग्रह पा रहा हूँ। जन सामान्य में अपनी जड़ें फनाने का परिणाम यह है कि हम उनमें आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी है। जब कलाकार, जनता की मांग के बिना उसके सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करता है और उस प्रदर्शन का पारिस्थितिक चाहता है ता जन-सामान्य उसे कलाकार न मानकर भिखारी मान बैठता है, और भीख के रूप में कला का मूल्य नहीं लिया जा सकता। धीरे धीरे कलाकार निधन होना जाता है और उस

निधनता और आर्थिक पराधितता व कारण जनता उसकी कला का मूल्य और भी कम आकती है। कलाकार का सामाजिक स्तर गिरता जाता है। जो समाज धन में व्यक्ति का मूल्य आकता है उसमें कलाकार निधन ही नहीं अत्यज अस्पृश्य और गूढ़ मान लिया जाता है। कला से आजीविका कमान वाला अनेक पूरी की पूरी जातिया इसी प्रकार हीन घोषित कर दी गई है। यह चिंता मेरी आत्मा का घुनक समान खा रही है राम ? कि कही ऐसा तो नहीं कि मैं समाज के श्रेष्ठ युवकों को कला का शस्त्र देकर अपने स बलवान अपने स अच्छा मनुष्य बनान के स्थान पर उन्हें सामाजिक दृष्टि से भिखारी अथवा अत्यज बना रहा हूँ। ऐसा तो नहीं है कि मुझे काव्य और संगीत की शिक्षा पाकर भरे स शिष्य समाज के लिए अधिक उपयोगी नागरिक बनन के स्थान पर गली-गली बाध्य और संगीत का रस लुटान हुए हथेली फसाकर गहस्थों से भिक्षा मागत फिरेंगे और उनकी दृष्टि में कलाकार के स्थान पर घणित जीव होकर रह जाएंगे। जब इनके लिए उस भविष्य की कल्पना करता हूँ तो मुझे कला से सामाजिक व्यवस्था में और कही अपने आपसे भी वितर्णा होने लगती है।'

‘क्या एसी कोई शासन-मदति नहीं ऐसा कोई राज्य नहीं कला जिनका समर्थन करे और उस समर्थन के कारण राजाश्रय उसके लिए भय का कारण न रहे ?’

कला सदा बामा होती है राम ! वाल्मीकि हंस गतय प्राप्त होते ही गतय नहीं रहता—वह जागे खिसक जाता है। कला अदभुत महत्त्वाकांक्षिणी है। ऐसी काङ्क्षयस्या नहीं जिसमें कलाकार कोई घुटि न देख पाए।”

तो इसका समाधान क्या हो आय ? लक्ष्मण अधीर हो उठे।

समाधान ही तो अभी मैं खोज नहीं पाया, पुत्र ! कला और राज्य के इस द्वन्द्वमें फसा कलाकार कभी अपना धर्म नहीं निभा पाता कभी अपने सम्मान की रक्षा नहीं कर पाता। मैं नहीं जानता कि अधिक घृण्य कौन है—वह कलाकार जो राजाश्रय पा आर्थिक दृष्टि से अपने सम्मान की रक्षा कर कला के साथ धोखा और बेईमानी करता है अथवा कला के प्रति

इमानगारी का व्यवहार करने वाला राजाश्रय का ठुकराने वाला कलाकार जो आर्थिक दृष्टि से पराश्रित होकर अपने परिवार का भूखा मारता है, और स्वयं अपनी तथा अपनी सतान की दृष्टि में घृणा और उपहास का पात्र बन जाता है।

‘इस द्वंद्व का अंत कब होगा, ऋषिवर ? सीना न पूटा।

‘कला का आजीविका का माघन न बनाया जाए तो यह द्वंद्व है ही नहीं, और आजीविका का माघन बनी रहती कदाचित् यह द्वंद्व कभी समाप्त नहीं होगा। कलाकार वही घाय है जो कला से कुछ मागता नहीं—न धन, न यश, बल्कि उसके लिए स्वयं का खपा देता है।

ऋषि अत्यंत उदास थे।

प्रातः भरद्वाज शिष्य अपने आश्रम लौट गए।

एक एक धनुष तूणीर तथा लट्ठ भाष ल शेष गस्त्रो की सुरक्षा का समुचित प्रबंध कर राम लक्ष्मण और सीता अपने आश्रम के लिए स्थान चुनने निकल। स्वयं वाल्मीकि अपने कुछ शिष्यों को ले उनके साथ साथ मदाकिनी व किनारे किनारे घूमे। मदाकिनी की गति अपने नाम के अनुरूप इतनी मधुर थी कि कहना कठिन था कि उसमें प्रवाह था भी या नहीं। पानी की गहराई भी अधिक नहीं थी। बिना घाट व भी किसी भी स्थान पर जल भरने अथवा स्नान करने में कोई जोखिम नहीं था। मदाकिनी के दोनों ओर ऊँचे कगार थे किंतु पर्वत की चोटियों की ऊँचाई अधिक नहीं थी। पर्वत पथरीला भी नहीं था। ऊँचे-नीचे मिट्टी के ढह जैसे अनक ढीले थे। आस-पास घने वन थे।

राम ने मदाकिनी पयस्विनी और गायत्री के समूह से थोड़ा दूर कगार से हटकर एक दीर्घ वृत्ताकार टील को आश्रम के लिए पसंद किया। स्थान चुन लिये जाने पर कुटिया निर्माण का वास्तविक कार्य आरंभ होना था जिसका दायित्व लक्ष्मण पर था।

वाल्मीकि कुछ शिष्यों को पीछे छोड़ स्वयं लौट गए। उही शिष्यों के नेतृत्व में राम लक्ष्मण और सीता वन के भीतर गए। और तब लक्ष्मण ने नियंत्रण सभाल लिया। उन्होंने अपनी आवश्यकता बताई और लकड़ी के

लिए स्वयं देखभाल कर वृक्ष चुने।

कटाई आरम्भ हुई।

सीता व हाथ में एक कुल्हाड़ी देकर राम ने भी एक कुल्हाड़ी उठा ली। वाल्मीकि शिष्यों के चेहरी पर हृत्प्रभता विरोध और सकोच प्रकट हुए।

राम हस पड़े 'मित्रो! वनवासी का जीवन बिताना है, तो वनवासी के ही समान काम भी करना पड़ेगा।'

किंतु आय! देवी बँदेही।

व भी वनवासिनी हैं। वैसे भी परिश्रम शरीर और मन को स्वस्थ और सतुलित रखता है।'

लक्ष्मण इस बीच कुछ नहीं बोले। वे जानत थे राम एक नवीन जीवन पद्धति की ओर बढ़ रहे थे। उन्हें रोकना व्यर्थ था—रोकन की आवश्यकता भी क्या थी। वैसे भी लक्ष्मण के मन में अनेक प्रश्न तथा उनके समाधान के लिए अनेक योजनाएँ उधल-पुधल मचा रही थीं। आश्रम कैसा होगा?

एक कुटिया भया और भाभी के लिए। एक कुटिया स्वयं लक्ष्मण के लिए। दोनों कुटीरों के बीच एक शस्त्रागार। शस्त्रागार के दो द्वार जो दोनों कुटीरों में खुलते हों। एक कुटिया अग्निशाला के रूप में। एक कुटिया रमाई के लिए। एक कुटिया अकस्मात् आ जाने वाले किसी अतिथि के लिए। बीच में एक खुला क्षेत्र, जहाँ वे इच्छुक वनवासियों को शस्त्राभ्यास करा सकें। थोड़ी-थोड़ी भूमि प्रत्येक कुटिया के पास शाक भाजी तथा फूलों की बगारियों के लिए।

आश्रम के चारों ओर बाड़ की भी आवश्यकता थी—जंगली पशुआ और शत्रुआ में सावधान रहने के लिए। फिर उनके पास शस्त्र थे जिनके कारण वे सुरक्षित थे, किंतु शस्त्री के कारण ही उनके लिए जोखिम भी बढ़ गया था। शस्त्रा को छीनने अथवा उन्हें नष्ट करने के लिए भी उन पर आक्रमण हो सकता था।

इस सारी योजना को कार्यान्वित करने के लिए बहुत सारी लकड़ी चाहिए थी। उतनी लकड़ी एक ही दिन में नहीं काटी जा सकती थी, और फिर केवल लकड़ी ही नहीं काटनी थी। मध्याह्न तक दो कुटीर अवश्य तैयार

हो जान चाहिए था। गण काम, वे धीरे धीरे लकड़ी काटकर करते रहेंगे।

पडा पर ठकाठक कुल्हाडिया चल रही थी।

सीता थककर दम लने के लिए एक ओर बठ पसीना सुखा रही थी। ब्रह्मचारिया का बिश्वास था कि योद्धा होने पर भी राम श्रमिक नहीं थे। अतः थोड़ी दूर में वे भी थक जाएंगे। किंतु राम के चेहरे पर अथवा कुल्हाड़ी के आघात की प्रबलता में थकावट का कोई लक्षण नहीं था। शस्त्र परिचालन के अभ्यास में किया गया श्रम सहज ही उन्हें कुल्हाड़ी चलाने का धूल भी दे रहा था। साधारणतः कामल सा लगन वाला राम का शरीर श्रम की प्रगति के साथ साथ फूलता जा रहा था। उनकी पेशियां दृढ़तापूर्वक अपना आकार प्रकट कर रही थी तथा क्रमशः उनके प्रहार सघे हुए और सहज होते जा रहे थे।

लक्ष्मण का मन अपनी निर्माण योजनाओं में तथा भावों कटकर अपनी सामने पड़ी लकड़ी पर थी। वह अपनी आवश्यकतानुसार उन्हें चीर काट रहे थे, अलग अलग नार जोर गणना के अनुसार उनका वर्गीकरण कर रहे थे।

सहसा लक्ष्मण का ध्यान अनजाने ही खरत हुए निकट आ गए हरिणों के झुंड की ओर चला गया। वे बड़े मुग धे। किसी आश्रम के साथ उनका संबंध नहीं लगता था। नहीं तो इस घन वन में वह नहीं आते। उनके आगे आगे एक आकषक काला हरिण था। लक्ष्मण का ध्यान आया, दोपहर का भोजन का प्रबंध भी अभी करना था। उनके अभ्यस्त हाथों ने धनुष पर बाण चढ़ाया और छोड़ दिया।

झुंड के भागने तथा काले हरिण के मिरने के कोलाहल से शेष लोगों का ध्यान उस ओर गया। लक्ष्मण को उस ओर बढ़ते देख ब्रह्मचारी भी हरिण के पास चले गए।

साधु देवर !” सीता बोली तुम साथ आए हो इसकी उपयागिता ता जाज मालूम हो रही है। आवास का प्रबंध करते-करते तुमने भोजन का प्रबंध भी कर दिया।”

‘भाभी !’ लक्ष्मण हस्त भोजन के सदम में अपनी सीमा यही तक है। अब आग का काम आप सभाल लें। दो व्यक्ति सहायताय साथ ले लें और जब तक हम लोग लकड़िया का काम निवटाते हैं तब तक आप इस भूत लें।’

‘अपने भैया का ध्यान रखना सीता मुसकराई। ‘वही मुझ पर यह आराप न लगे कि मैं जान-बूझकर, लकड़ी काटने का कठिन काम छोड़, हरिण भूतने का सरल काम लेकर बठ गयी हूँ।’

अरे नहीं भाभी !’ लक्ष्मण बोले, और कौन इतना अच्छा भाजन पकाएगा। कृपया आप वही काम सभालें। आज के अभियान का नायक मैं हूँ। काम विभाजन मैं ही करूँगा।’

‘नायक ! मुखर अपनी पक्ति से आग बत्ता आया, देवी वंदेही की महायता के लिए मैं स्वयं को प्रस्तुत करता हूँ। इस काम का कुछ अनुभव मुझे भी है।’

ठीक है, मुखर ! लक्ष्मण बोले ‘अपने किसी मित्र को साथ ल लो !’

सीता के निर्देशानुसार, मुखर चेतन व साथ मिलकर हरिण को वहाँ से हटा, सुविधाजनक स्थान पर उठा ल गया। वहाँ उन्होंने उसका चम उतारा, उसके खंड किए, और लकड़िया को व्यवस्थित कर, आग जलाई।

सीता बताती गयी और मुखर तथा चेतन उन मांस खंडों के विभिन्न काणा और पक्षा को आग पर रखत और उलटते-पलटते गए। आवश्यकता नुसार कभी-कभी सीता स्वयं भी उन खंडों का निरीक्षण कर कोण परिवर्तित कर देती।

देवी वंदेही !’ सहसा बीच में मुखर बोला, सोमित्र ने जिस प्रकार इतनी दूर से एक ही बाण से इतने बड़े हरिण को मार गिराया, क्या वैसे ही वे राक्षसों को भी मार सकते हैं ?’

सीता ने मुसकराकर मुखर को देखा। वह लक्ष्मण की बाण विद्या से बहुत चमत्कृत लग रहा था।

‘सोमित्र इससे भी अधिक दूर से एक नहीं, अनेक उत्पाती राक्षसों

को मार सकने हैं। सीता धोली।

कितना अच्छा होता यदि मरे पिता ने भी यह विद्या सीखी होती।' मुखर अपन अतीत में डूब गया। 'तब मर सारे कुटुंब की राक्षसों के हाथों इस प्रकार निरीह हत्या न होती। उसने रुककर क्षणभर सीता को देखा दबी बंदही।'

तुम मुझे दीदी कहा मुखर। सीता के स्वर में ममता थी।

दीदी।' मुखर की आँखें चमक उठीं। मेरे पिता कहा करते थे कि उनकी लखनी किसी शस्त्र से कम नहीं। मुग़ल बाल्मीकि भी प्रायः यही कहते हैं। मुझ लगता है कि इसमें कहीं कोई भूल है। लखनी किसी का प्रेरित कर शस्त्र उठवा सकती है यह ठीक है। केन्द्र में रह, लखनी शस्त्रों द्वारा सरक्षित रह सकती है यह भी ठीक है, किंतु लखना अपने-आप में शस्त्रों की म्यानापन नहीं हो सकती।

अपनी बात का प्रभाव जानने के लिए मुखर रूककर सीता की ओर देखन लगा।

मुझे ऐसा लगता है मुखर। सीता धोली। तुम अधिकांशतः लखनी बानों के समार में रह हो मैं शस्त्र बालों के समार में। मैं अपने अनुभव से नहीं केवल कल्पना के आधार पर उनके परस्पर संबंध पर विचार कर सकती हूँ।

'मैंने सुना है दीदी' चेतन कहत कहते रुक गया। कदाचित्त वह समझ नहीं पा रहा था कि इस संवोधन की अनुमति उसे भी है अथवा नहीं।

हां। कहो कहो।' सीता ने उसे प्रोत्साहित किया।

मैंने सुना है दीदी। राम लक्ष्मण से भी बहुत अच्छे अधिक शक्तिशाली तथा कुशल धनुर्धर हैं, और उन्होंने बहुत पहन अनेक राक्षसों का वध भी किया था।'

तुमने ठीक सुना है चेतन। माता मुसकराई, 'राम के योग्य शक्ति और कुशल को शत्रु में बाधना कठिन है।

क्या राम अपनी यह विद्या दूसरों को भी सिखाएंगे?' चेतन का स्वर बहुत भार था।

क्यों नहीं ! यदि सुपाय मिला तो अवश्य सिखाएंगे ।”

चतन आग में झुनते हुए मास-खंड को परगने लगा । मुखर की आँखें क्षितिज पर टिक गयीं । वह कुछ भी देख नहीं रहा था । वह सोच रहा था । उसके चितन के साथ साथ, आँखों का धूँय भाव, क्षीण ज्योति में बदलता जा रहा था ।

भोजन के पश्चात् काटी गई नकडियाँ काँसकर व लाग गये आश्रम के लिए चुन गए स्थान पर आ गए । अब शक्ति और श्रम के स्थान पर कोशल की आवश्यकता थी । प्रत्येक व्यक्ति निरंतर काम करता दिखाई पड़ रहा था किन्तु लक्ष्मण सबसे अधिक व्यस्त थे । निर्माण-काम बढ़ी शीघ्रता से हो रहा था । मूल में जैसे होड़ लगी हुई थी । अतः लक्ष्मण सफ़्त हुए । तिस समय तीन कुटीर बन तैयार हुए सूर्यास्त में अभी समय था ।

एक बार फिर महात्मीनि आश्रम की आरम्भ आरम्भ हुई । अत्यंत सावधानी से सारा शस्त्रागार नये आश्रम में स्थानांतरित किया गया और राम सीता तथा लक्ष्मण ने अपने आश्रम में प्रवेश किया । बड़े कुटीर में राम तथा सीता का स्थान था छोटा कुटीर लक्ष्मण के लिए था, और उन दोनों की भित्ति वाला मध्य कुटीर शस्त्रागार था । मध्य कुटीर में बाहर की ओर खुलने वाला न तो कोई द्वार था न गवाक्ष । उसमें से एक-एक लघु द्वार राम-सीता तथा लक्ष्मण वाले कुटीरों में खुलता था ।

यवस्था पूर्ण होने पर वाल्मीकि सिंघ अपने आश्रम की ओर लौट गए । उन् सूर्यास्त से पूर्व अपने आश्रम में पहुँचना था । उस दल के पीछे पीछे सत्रस घीमी गति में चलने वाला व्यक्ति मुखर था ।

रात को लक्ष्मण सोने के लिए अपनी कुटिया में चले गए, तो राम ने सीता की ओर परोक्ष नज़रें डाली, नया प्रतिविम्ब है सीता का आज तक की घटनाओं के विषय में ?

अयोध्या में बाहर न यह पहचानि था न पहली रात । किन्तु अब तक व भोग चतने रहे । प्रत्येक दिन पिछले दिन में भिन्न था, और

प्रत्येक रात पिछली रात से। कोई असुविधा अधिक नहीं खटवती थी क्योंकि अगला दिन उसी प्रकार बटने वाला नहीं था। आज न उनके जीवन में एक विराम आया था। और एक सीमा तक स्थायित्व भी। वनवास की सारी अवधि उन्हें चित्रकूट में व्यतीत नहीं करनी थी, किंतु संभव है कि उन्हें यहाँ वर्ष भर नहीं तो कुछ मास लग जाए। जाने कब अयोध्या के दूत, भरत का बुलाने जाए। कवची को भरत के युव राज्याभिषेक की जल्दी है इसलिए दूतों को भेजने में अधिक समय नहीं लगेगा। वेकय राजधानी बहुत निकट नहीं है। दूतों को पहुँचने में कुछ समय लगेगा फिर भरत के नाना उसे विदा करने में भी समय लगाएंगे ही। भरत लौटेंगे उनका अभिषेक होगा, वे सत्ता हाथ में लगे, तब कहीं जानकर उनकी नीति स्पष्ट होगी। तब तक राम को चित्रकूट में रुकना होगा।

वनवास की अवधि में लक्ष्मण किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव नहीं करेंगे—राम जानते थे—उन्हें केवल राम का संग मिल जाए तो वे मग्न हो जाते हैं और यहाँ तो सामने एक लक्ष्य भी था। यह सारा चित्रकूट प्रदेश उनके सम्मुख था। यहाँ के लोग से परिचय प्राप्त करना था। उनकी जीवन-वृद्धि को समझना था। उनकी कठिनाइयाँ और समस्याओं को जानना था। विभिन्न आश्रमों की व्यवस्था और उनके शिक्षण-स्तर को परखना था। फिर प्रकृति एक चुनौती के समान उनके सामने खड़ी थी। पर्वत नदी वन हिरण्य, और जसा कि भरद्वाज आश्रम से ही सुनाई पड़ता आरम्भ हो गया था कि इस क्षेत्र में राक्षसी व्यापक भी बढ़ता जा रहा था। लक्ष्मण इन सब में उत्तल रहेंगे। उन्हें अयोध्या की याद नहीं आएगी। माता की याद भी नहीं आएगी। जानन सुनने को कुछ नया हो करने को कुछ अपूर्व हो, सामन एक चुनौती हो तो लक्ष्मण स्वयं को भी भूले रहने हैं।

पर सीता ! चार वर्षों के दाम्पत्य जीवन में राम न सीता को अच्छी प्रकार जाना-समझा था। किंतु लोक चिंतन कहता है कि स्त्री कोमल होती है उसका मन कठिनाइयों से भागता है तथा क्षम और सुविधा की आरंभ भुक्ता है। सीता के आज तक के व्यवहार ने इस चिंतन का समर्थन नहीं किया था। वे सदा लोक-व्यथा की प्रवृत्ति की ओर झुकी थी किंतु

आज स पहले तो रास उनके साथ इस प्रकार का कठिन वय जीवन व्यतीत करने के लिए बाहर भी नहीं निकले थे। संभव है इस कठिन जीवन में सीता को असुविधा हो

दखी सीत । ' राम का स्वर बहुत मंद था ।

सीता ने चौंकर पति की ओर देखा, 'क्या बात है राम' आप मुझे प्रिय' नहीं कह रहे। इतने अतिरिक्त कोमल और शिष्ट क्यों हो रहे हैं ? कहीं फिर से मुझे अयोध्या लौट जाने का प्रतीभनयुक्त उपदेश देने का विचार तो नहीं है ? '

राम की आधी चिता दूर हो गयी। वे कुछ हल्के हुए और कुछ सहज भी ।

'नहीं, प्रिये ! अयोध्या लौटने को नहीं बहना, किंतु यह पूछने की इच्छा अवश्य है कि इस वय जीवन में कोई असुविधा तो नहीं ? वन में जाने का कोई पश्चात्ताप कोई उत्तर विचार कोई पुनर्विचार ? '

भगडे की इच्छा तो नहीं ? ' सीता सुहाग भरी मुसकान अवरों पर ले आया ।

नहीं ! राम मुसकराए 'पर अपनी पत्नी की उचित देखभाल मेरा कतय है । इसलिए उसकी सुविधा-असुविधा को तो जानना होगा । जो राम सीता से विवाह कर उसे अपने घर लाया था, वह अयोध्या का सभावित युवराज या वनवासी नहीं । मेरे मन में एक अपराध भावना है प्रिय ! कि मैं तुम्हें और लक्ष्मण को तुम लोगों के प्रेम का ढ दे रहा हूँ ।

सीता पुन मुसकराई 'प्रेम तो अपने-आप से एक दंड है। प्रेम बिया है तो उसका दंड भी स्वीकार करना ही होगा । वह कोई नयी बात तो नहीं । किंतु एक असुविधा मुझे है । '

'क्या ? ' राम ने उत्सुकता से पूछा, 'वही तो मैं भी जानना चाह रहा हूँ ।'

सीता गंभीर हो गयीं 'यदि चीन्हे वर्यो तक मेरे पति मुझमें इसी प्रकार औपचारिक व्यवहार करते रहें, और एक भले आतिथेय के समान

अपने-आप को भी परायी लगन लगूगी "

राम जोर से हस पड़े ।

‘मैं आपके साथ इसलिए आयी थी कि हमारे बीच राज-प्रासाद और राज-मरिचक की सारी औपचारिकताएँ समाप्त हो जाएगी । मैं अपने पति के लिए सघन जनसंस्था बाने प्रदेश की इन्गर्दन होकर उनका इतनी निकट होऊँगी कि वे अनेक कामों के लिए मुझ पर निर्भर होंगे । हम दोनों सहज रूप में दो साथियों के समान कार्य करेंगे । मैं उन्मुक्त प्रकृति के बीच अपने प्रिय के साथ जीवन के नये आयाम दूँगी और आत्मनिर्भर इकाई के रूप में समाज के लिए कुछ उपयोगी हो सकूँगी । ’

राम जाग बूझ जाग । उन्होंने सीता के बंधन पर हाथ रख दिए । यही होगा प्रिये ! यही होगा । जान बूझो मैं अभी-अभी विभिन्न मभावनाओं पर विचार करते करते कोई ऐसी बात सोचने लगता हूँ जिसमें स्वयं मुझे भी अपनी परनी की उदात्तता समझने में कठिनाई होने लगती है । उन्होंने सीता को अपनी बाँहों में भर लिये । मुझे लगता है सीत ! 'यदि किसी ने तब निश्चित तब आत्मविश्वासी क्या न हो । यदि वह मनुष्य होता उसने जीवन में कभी न-कभी तो दुबल क्षण प्राप्त ही है—जब वह आशंकित होता है असंभव संभावनाओं की कल्पना करता है तथा स्वयं अपने संबंध पर संदेह करता है ।

‘प्रिये ! ऐसे ही क्षणों में तब के लिए सीता तुम्हारे साथ आयी है । सीता ने अपना सिर राम के कंधे पर टिका दिया ।

तो ऐसा ही हो प्रिये ! कल से तुम्हारा नया जीवन आरंभ हो । कल प्रातः से तुम वनवासिनी बदेही बन जाओ । एक स्वतंत्र आत्मनिर्भर व्यक्ति, राम के साधारण जीवन की सगिनी और सहगामिनी ।

सीता ने मस्तक उठाकर दुलार से राम की ओर देखा ।

राम मुग्ध हो उठे ।

सबेरे राम ने लक्ष्मण को जगाया । उठो सौमित्र ! सावधान हो जाओ । मैं और सीता मन्त्रावली पर जा रहे हैं ।

वे दोनों छुटिया से निकल आए । बाहर निकल सीता ने उस

चमत्कारपूर्ण उपा को मन भरकर देखा। उनकी गति चपल तथा उत्फुल्ल थी। व कभी राम के साथ चल रही थी, और कभी राम से दो डग आगे। दोनों की ढाल पर दौड़ने में वैसे भी कोई परिश्रम नहीं था।

सुबह की सैर के लिए ऐसे तो हम जकेले पहले कभी नहीं निकले। सामान्य जन होना भी कितना सुविधाजनक है।' सीता बोली 'ऋतु कितना मोहक है।'

प्रमत्त हो ?"

बहुत।'

तो मदाकिनी से पूछ लो ऋतु कितनी मोहक है। राम बोले 'यहां घाट नहीं है। सभलकर आना। वहीं कहीं नगी अप्रत्याशित रूप से गहरी भी हो सकती है।'

सीता ने राम के पीछे-पीछे जल में प्रवेश किया।

महा और कोई नहीं आया ?

आना निषिद्ध तो नहीं।" राम बोले, यह अयोध्या का राजघाट नहीं है जिस पर आज्ञा द्वारा प्रतिबंध लगाया जा सके। पर किसी के आन की सम्भावना कम ही है। आस-पास आबादी प्रायः नहीं है। जहां आश्रम अवकाश प्राप्त होगा—मदाकिनी उनके पास सही बढ़ती होगी। उनकी आवश्यकता वहीं पूरी होती होगी व यहां नहीं आएंगे।"

अयोध्या में सरयू हमारी होती हुई भी हमारी नहीं थी। मदाकिनी हमारी न होत हुई भी हमारी है। राजनीतिक अधिकारी से प्राकृतिक अधिकार कितना अधिक सहज है।

'अधिकार तो सारा घरती का है।' राम बोले 'स्वयं को घरती की मानान बना लने पर सारे अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।'

सीता की उत्फुल्लता क्रमशः विकसित होती गयी। वे मुक्त रूप से जल में तल्लीन गयीं। मदाकिनी के सहज प्रवाह में तरना कितना अच्छा लग रहा था—न कोई बधन न नियंत्रण, न प्रतिरोध। जो चाहता था धारा के साथ तरती-तरती दूर तक निम्न जाए।

व तभी से तरती हुई, राम के पास से निकल गयी राम। भूखे पकड़ा।'

राम ने सीता को देखा—विजरे व छूटे कभी न घुसा आकाश मिलन ही पय घोस उड़ानें भरनी आरम्भ कर दी थी। उसकी सारी आशवाए मक्का निमूल थीं। सीता का ऐसा उन्नास तो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

उन्होंने अपनी गति बनाई। अगन हो दाग के सीता के समीप था 'पकड़ ?'

सीता ने ढेर सारा पानी उनकी ओर उछाल दिया और घिनघिला कर आगे बढ़ गयीं, अरे सुवराज की मर्मांग को क्या हो गया। साधारण जन के समान अपनी पत्नी के पीछे भाग रहे हैं। "

'अपनी पत्नी के पीछे भागने वाला साधारण जन होता है और दूसरो की पत्नियों के पीछे भागने वाला विशिष्ट जन ? राम हुंसे।

'पम्परा तो यही है।' सीता पितघिलाइ वस भी समय जन कब अपनी पत्नियों के पीछे भागे हैं ?'

पत्नी के पीछे भागना तो पुरुष मात्र की नियति है देवो। बिनापकर रघुवन् म। और तुम तो मेरी प्रिया भी हो।

राम ने भाग बढ़कर भाग छेक लिया लौट चले ? सीमित प्रतीक्षा कर रहे होंगे।'

'चलो। पर मध्या समय फिर आएंगे। तैरना बहुत अच्छा जग रहा है।'

अवश्य।'

किनारे पर आ उन्होंने सूखे वस्त्र पहने।

अपने आश्रम की दिशा के नगर की ओर मुड़ने से पहले सीता ने एक दृष्टि मदाकिनी के जल पर डाली। दूसरे तट पर पानी से लगकर खड़ा वह कुवला अजून वक्ष कितना अच्छा लग रहा था। उसकी डालें प्रवाह के ऊपर तक झुक आयी थी और पत्ते पानी को छू रहे थे। तैरत हुए सीता उसके पास से निकली थी सभी उन्हें इस वक्ष ने आकर्षित किया था।

और उनकी अपनी और के तट पर टिटहरियो का वह जोड़ा किंतु कुछ दूर पर यह क्या था ? कोई मानव आकृति थी। हा स्पष्ट हो गया। घड़ा भरती हुई कोई भील-कन्या थी।

आप चले । मैं अभी आती हूँ ।”

राम अकेले अपने आश्रम की ओर चले । सीता वदचित्त उस भील किशोरी में परिचय करना चाहती थी । वे लीन आश्रम के इतने निकट थे कि सीता की अकली छाड़ने में किसी सनट की सभावना नहीं थी ।

सीता की अपनी ओर आते देख, भील किशोरी रुक गयी । उनके निकट आने पर कुछ ठिठकी फिर जैसे साहस कर हल्के से बोली 'देवि' आपको पहले तो कभी नहीं देखा ।”

सीता मुसकराई 'मैं देवी नहीं दीदी हूँ । समझी ? तुम्हारा क्या नाम है ?'

मैं मुमेधा हूँ ।” किशोरी को प्रगल्भता कुछ सकुचा गयी ।

'मुन्दर नाम है । किसने रखा है तुम्हारा नाम ?

'ऋषि वाल्मीकि ने ।” मुमेधा बोली 'बाबा कहते हैं पहले ऋषि का आश्रम हमारे गाव के बहुत निकट था, तब हम उनके आश्रम में बहुत आया-जाया करते थे । व मुझमें बहुत स्नह करते थे ।”

'ऋषि ने अपना आश्रम क्यों हटा लिया ? सीता ने पूछा ।

राक्षस लोग रोज भगडा करते थे । ऋषि की साधना में विघ्न पड़ना था । ऋषि उत्तर की ओर हट गए ।”

सीता के लिए यह नयी सूचना थी । चकित होकर बोली 'और तुम्हारा गाव ?'

गाव में गडबड हानी रहती है ।' सहसा मुमेधा कुछ भयभीत और व्याकुल हो उठी, दीनी । मुझे पानी ले जाना है । फिर बताऊंगी ।”

वह चल पड़ी किंतु कुछ ही दशा के बाद लौनी आप कहा रहती है ?”

'वह ऊपर टीक वाला आश्रम हमारा है ।” सीता ने इंगित किया 'कब आश्रमी ?'

दोपहर की ।' मुमेधा घटा उठाए भागती चली गयी ।

सीता उससे आकस्मिक भय और व्याकुलता को समझन का प्रयत्न करती हुई नोट आयीं ।

प्रातः कालीन कार्यों से निवृत्त हो लक्ष्मण ने कुल्हाड़ी सभाली, और पिछले दिन लायी गयी लकड़ियों में व्यस्त हो गए।

नायक ! मेरा कत 'य' भी बता दें। सीता बोली।

'भाभी ! जाज आपका और भैया का इस निमाण में कोई काम नहीं है। मरी आर से आप मुक्त है।

तो मैं क्या करूँ ? ' सीता ने जैसे अपने-आपसे प्रश्न किया।

तुम्हारी शस्त्र शिक्षा आरम्भ होगी। राम बाले 'जाओ शस्त्रागार में से एक धनुष एक तूणीर और दो खड्ग ल आओ।'

राम ने धनुष तथा खड्ग का चुनाव सीता पर छोड़ दिया था। सीता शस्त्रागार के भीतर गयी तो उनके मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए—क्या राम यह मानकर चल रहे हैं कि सीता को शस्त्रागार के प्रकारों तथा वर्गों का आरम्भिक ज्ञान है ? अथवा वे ऐसे आरम्भिक ज्ञान का इस प्रशिक्षण के लिए आवश्यक नहीं समझते ?

उन्होंने एक धनुष उठाया, किंतु उठाते ही लगा कि धनुष भारी था, जानने के लिए बहुत देर तक उसे हाथ में उठाए रखना सीता के लिए सम्भव नहीं होगा। यदि वे उस उठाए भी रहती तो अधिकांश बल और ध्यान धनुष का उठाये रखने में ही लगा रहेगा, लक्ष्य-संधान के लिए न तो बल बचगा न बुद्धि। इस प्रकार के भारी धनुष से लक्ष्य-संधान सीखना तो एक विदेशी भाषा में ज्ञान प्राप्त करना है—सारी बुद्धि भाषा को सीखने में हा लग जाएगी विषय तक पहुँचने का तो अवकाश ही नहीं होगा।

एक अपेक्षाकृत हल्का धनुष सीता ने अपने लिए पसंद किया और एक हल्का सा खड्ग। राम के लिए उन्होंने एक भारी खड्ग उठाया, किंतु दूसरे ही क्षण उसे वापस रख दिया। प्रशिक्षण बराबर भार के शस्त्रों से हो, तो अच्छा है।

बाहर जाकर उन्होंने अपने मन में गूँजते प्रश्न राम के सम्मुख रख दिए।

राम मुसकराए शस्त्रों का चुनाव प्रशिक्षण के लिए अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण है सीता । मैंने उनका चुनाव तुम पर छाड़कर देkhना चाहा था कि वहीं तुम गन्त शस्त्रा का चुनाव तो नहीं करती । शस्त्र अपने-आप में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है किन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण शस्त्र का चुनाव होता है । शस्त्र का चुनाव दो दृष्टियों से होना चाहिए—प्रथम शस्त्र-परिचालन की दक्षता तथा द्वितीय शत्रु व शस्त्र का आकार प्रकार । वैसेही ! ऐसे शस्त्रों से युद्ध करने का कोई लाभ नहीं जो अपने आप में श्रेष्ठ तो हो, किन्तु हम उनका परिचालन दक्षता एवं सुविधा से न कर सकें । इसका बहुत अच्छा उदाहरण जनकपुर में रखा हुआ गिव धनुष था । अपने आप में वह शस्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सक्षम था किन्तु यदि सम्राट सीरध्वज उससे युद्ध करने जाते तो कोई लाभ न होता । उतना बड़ा धनुष होत हुए भी वह नि शस्त्र सरीखे ही रहते । ठीक है ?

सीता ने सहमति में निरहिता किया ।

दूसरी बात शत्रु की प्रहार शक्ति की है । राम ने अपनी बात आगे बढ़ाई 'यदि शत्रु के पास धनुष है तो हमारा खटग वन्त काम नहीं आएगा । हम अपने शस्त्र के चुनाव में सावधान रहना चाहिए कि हम उनके प्रहार को रोक भी सकें और अपनी प्रहार शक्ति उससे अधिक भी सिद्ध कर सकें । अब तुम अभ्यास आरम्भ करो ।'

सीता बाण चलाता और राम उसमें हुई त्रुटियाँ समझाकर दूसरा बाण चलाने को कहते । कभी-कभी धनुष व अपने हाथ में ले लेते और स्वयं बाण चलाकर बताते ।

धनुष-बाण के पश्चात् खड्ग की बारी आयी । सीता ने खड्ग पकड़ना, उसे मचालना, बाहु में चालन तथा प्रहार की विभिन्न मुद्राओं का अभ्यास किया ।

राजपुर का शस्त्र शिखा का काय स्वमित हुआ तो लक्ष्मण ने भी अपना हाथ रोक लिया । उनकी अतिशिक्षाला का निर्माण पूरा हो चुका था ।

भोजन के पश्चात् राम अपना आश्रम छोड़, टीले से नीचे उतर आए । वे मन्त्रिणी के तट के साथ-साथ बाम बढ़ते गये । उनका लक्ष्य यहाँ के भूगर्भ को समझना तथा आस-पास के लोगों का परिचय प्राप्त करना था ।

कुलपति की सावधानी और सचेतता से राम प्रभावित हुए। बोल आय कुलपति ! निरापद नहीं है इसीलिए शस्त्र साथ लेकर चलता हूँ। और शस्त्रधारी धनिय किसी भी स्थान को अपन लिए निरापद नहीं मानता। वैसे आपकी इस धारणा का कारण जान सकता हूँ ?

‘यह प्रदेश राक्षसों व आधिपत्य में है ऐसा तो नहीं कहूँगा। कालकाचाय बोल किंतु राक्षस प्रभावित अवश्य है। ऋषि-आश्रम व अतिरिक्त भीला के असंख्य ग्राम भी हैं किंतु इच्छा राक्षसों की ही चलती है। यहाँ दिन प्रतिदिन राक्षस-तंत्र प्रबल होता जा रहा है। तुम्हारे शस्त्र देखकर राक्षस भड़केंगे राम। क्योंकि वे प्रत्यक्ष शस्त्रधारी को अपना शत्रु मानते हैं। तुमसे मिलने जुलन बाल प्रयत्न व्यर्थ पर उनकी बक्र दृष्टि पड़ेगी वरस ! तुम्हारी युवती पत्नी किसी भी प्रकार सुरक्षित नहीं है।

राम अपनी आखी से कालकाचाय को तालत रङ—एक भीरु बुद्धि-जीवी उनके सामने बैठा था।

‘आय शस्त्र की विपत्ति का कारण समझते हैं ?’

‘हा पुत्र ! शस्त्र तुम्हारी रक्षा कम करेगा जोखिमों को आमंत्रित अधिक करेगा। इसीलिए मैं अपने आश्रम में शस्त्र प्रशिक्षण की अनुमति नहीं देता।’

एक व्यक्तिगत प्रश्न पूछना चाहता हूँ। राम ने कालकाचाय की आखा में देखा अथवा तो न मानेंगे ?

कालकाचाय की आखों में क्षण भर के लिए परेशानी झलकी, उ होन स्वयं को नियंत्रित किया पूछो।

यह स्थान निरापद नहीं है तो आय कहीं अन्यत्र क्या नहीं चल जाते ? तपस्वी का जीवन छोड़ नागरिक क्यों नहीं बन जाते ?

कालकाचाय की आखें उदास हो गयी ‘पुत्र ! अनेक कार्य ऐसे होते हैं जिनका दो ठूक कारण नहीं बताया जा सकता। अब तुमसे क्या कहूँ—स्वभाव से तपस्वी हूँ कुछ और हो ही नहीं सकता। तपस्वी नगरी में नहीं बसते और राम ! ज़मीन छोड़ अथवा किसी अपरिचित स्थान में बसने का उद्यम भी जुटा नहीं पाता।’ व सायास मुसकराए बायर नहीं हूँ। भीरु हूँ और अतिरिक्त रूप में सावधान भी।

राम के जाने के पश्चात् लक्ष्मण फिर से अपने निर्माण-काय में जुट गया। गहसूयी का कोई छोटा मोटा काय भी सीता के पास नहीं था। सोच ही रही थी कि व प्रातः प्राप्त की गयी शस्त्र विद्या का अभ्यास करें या लक्ष्मण के न चाहने पर भी उनके निर्माण काय में सहायता करें।

तभी सुमेधा आश्रम की ओर आता दिखायी पड़ी। सीता को सहज सुमेधा का अवस्मात ही यादगुल होकर भाग जाना याद आ गया।

‘सबरे तुम इतनी जल्दी भाग क्यों गयी सुमेधे?’ पाम आन पर सीता ने पूछा। मुझे लगा कि तुम कुछ भयभीत भी थी।’

‘आह दीदी!’ सुमेधा बोली। मुझे स्वामी के लिए जल ले जाना था न। दर हो जाती तो वह मार मारकर मेरी हडिडमा तोड़ देता।’

तुम्हारा पति?

नहीं दीदी! सुमेधा कुछ मञ्जुबित हुई। स्वामी! मेरा स्वामी मेरे पिता का स्वामी इस वन का स्वामी।

सीता बकित थी। ‘क्या कह रही हो सुमेधे? एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का स्वामी कस हो सकता है! कुछ स्थानों पर मित्रिया अपने पति को गुरु स्वामी के स्थान पर स्वामी बहती है। किंतु वह मन्त्रीधन मात्र है। स्नह और प्रेम जताने की विधि है। प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में जन्म लेता है और स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करता है। उसका कोई स्वामी कस हो सकता है। क्या तुम्हारे यहां अभी तक दास प्रथा प्रचलित है?’

‘हां! हां!’ सुमेधा अत्यंत सरल भाव से बोली। ‘ऐसी ही बातें ऋषि वाल्मीकि ने भी हमारे गाथ के कुछ सङ्कोचों में लिखाया था। लड़का ने उन बातों का सच मान लिया था और स्वामी से झगड़ पड़े थे। स्वामी ने उन सब को बाधकर कोठरी में डाल दिया था और यातना दे-देकर एक-एक को मार डाला। बाद में उसने ऋषि के आश्रम के कुछ लोगो के भी हाथ-पर तोड़ दिए थे। अब हमारे ग्राम में इन बातों पर कोई विश्वास नहीं करता। भला सब लाभ समान कैसे हो सकता है—रामस रामस हैं, और भील भील।’

‘तो तुम्हारा स्वामी राक्षस है?’ सीता ने कुछ भापत हुए पूछा।

हा, दीदी ! पहन विरात था, पर अब से धनवान हुआ है राक्षस हो गया है । और अब तिन प्रतिदिन उसका धन भी बढ़ रहा है और बल भी ।'

पर वह इस वन का स्वामी कैसे हो गया ? क्या वन उसने उगाया है या यह घरती उसने बनाई है ? घरती उस पर रहने वालों की सामूहिक संपत्ति है । वन नदिया पर्वत तथा खाने—संपूर्ण समान की संपत्ति होती हैं । शासक जनता की ओर से ही उनका प्रबंध करता है ।

सुमेधा जोर से हस पड़ी, तुम्हारी बात काई नहीं मानेगा दीदी ! कोई भी नहीं । किसी अपनी जान प्यारी नहीं है । किसी अपनी हड्डिया तुड़वानी हैं ।

अच्छा ! तुम लोग इसके दास क्यों हो ? सीता ने बातों की दिशा மாட்டி ।

"मेरे पिता को किसी अपराध के लिए स्वामी ने अधिक दंड दिया था । पिता के पास धन नहीं था । स्वामी ने ही पिता को ऋण दिया । पिता वह ऋण चुका नहीं पाए हैं । इसलिये वे स्वामी के दास हुए उनकी पत्नी होने के कारण मेरी मा और पुत्री होने के कारण मैं उनकी दासी हुई । दासों की मतान भी तो दास ही होती है ।'

सुमेधा अपना गान प्रदर्शित कर प्रगल्भ थी ।

'तुम और तुम्हारे माता पिता—तीनों क्या काम करते हो ?'

जो स्वामी कहें ।' सुमेधा ने बताया पानी लाना । जमीन खोदना । पंख बाटना । खाना पकाना । बतन माजना । स्वामी और उसके परिवार की सेवा करना । जो भा स्वामी कहें ।'

तुम्हारा विवाह होगा ?"

सुमेधा फिर मकुचित हो गयी यह तो स्वामी की इच्छा पर है । वे चाहें मेरा विवाह कर दें । वे चाहें मुझे किसी को दें । वे चाहें मेरा भोग करें । वे चाहें मुझे खा जाए "

सीता हतप्रभ-सी बैठी सुमेधा को देखती रही । यह लड़की कितनी सहजता से यह सब कह रही है । न केवल कह रही है सब-कुछ स्वीकार भी कर रही है । और उसे कही यह बोध नहीं है कि यह गलत है, यह अयाय

है। इसका विरोध हाना चाहिए और यह लड़की महा व जन-मामा-य की प्रतीक है। सीता समझ नहीं पा रहे थी कि सुमेधा को कस समझाए। उससे तक करें उस बल दें उपदेश दें धिक्कारें

अच्छा ! मैं चलू दीदी। सुमेधा उठ खड़ी हुई।

मुनो मुमघा ! ' उसके उठ खड़े होने से सीता चौंक उठी मेरा एक काम करता बहन। मर पास कोई घटा नहीं है। पत्तो के गोना म पानी लान म काफी अमुविधा रहती है। मुझे एक घटा कही स ला दोगी ? तुम्हारे ग्राम म कोई बुभवार है क्या ? "

हा दीदी ! मैं कुभकार को ही तुम्हारे पास भज दूंगी। अपनी इच्छा के अनुसार घटा बनवा लेना। अच्छा दीदी ! "

सुमेधा बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चपलतापूर्वक भाग गयी।

मध्या स पूव राम लौट आए। लक्ष्मण न तब सर अनियोगाला भी बना कर पूरी कर दी थी।

भारी परिश्रम किया है, सौमित्र, तुमने ! " राम बोले ' तनिक भी विश्राम नहीं किया क्या ?

काम करना अच्छा लग रहा है। ' लक्ष्मण बोले, ' विश्राम तो थकान के बाद होता है। थकान तो मुझे अभी हुई ही नहीं।

' तुमने क्या किया प्रिये ? '

सीता क्षण भर कुछ सोचता मोन बंठी रही, फिर धीरे स बोली, ' मैंने कुछ किया या नहीं वह नहीं सकती, पर वह लड़की अनायास ही मेरा जान बहुत बढ़ा गयी है '

सुमेधा के साथ हुई अपनी बातचीत सीता न पूरे बिस्तार से दुहरा दी।

राम गभीर हो गए। लक्ष्मण के चेहरे पर आक्रोश था।

"इस प्रदेश की स्थिति का कुछ कुछ आभास मुझे था," राम चिंतनमय स्वर म बोले ' किंतु स्थिति इतनी दुखद तथा अत्याचारपूर्ण है, ऐसा मैंने नहीं सोचा था। आज मैं भी कुछ आश्रमी के निवासियों से मिलकर आया हू। माग म मिले अनेक पण्डितों से भी बातचीत की है, अब सुमेधा की

बाग भी मुनी है। यह प्रदण सभ्यता के आदिम युग में जो रहा है। समस्त प्रण बना ही भरा पड़ा है। व्यवस्थित राज्य की स्थापना नहीं हुई है, किन्तु स्थान-स्थान पर स्थित जनगण्यता वाला अनेक आधुनिक ग्राम पुरख टोल बग गए हैं। जहाँ कुछ मुझे पता हुआ है उससे अनुमान प्रायः प्रत्येक जाति के लोग यहाँ बग हुए हैं और बसत जा रहे हैं। आयों की अनेक उपजातियों के लोग शहर विरात नाम निपात कोन भीन यश, किन्नर वानर तथा श्वेत जातियों के लोग हैं। किन्तु इन्हीं सब के बीच एक नयी जाति पनप रही है—यह जाति रक्त तथा आकार प्रकार की भिन्नता के अनुसार नहीं है, बल्कि एक चित्त प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति-जाति राक्षसों की है। प्रत्येक जाति के अनेक लोग जैसे-जैसे अर्थ लोग की संपत्ति हड़पकर धनाढ्य बनत जात है—राक्षस प्रवृत्ति में दीक्षित होत जात हैं। उन्हें राक्षस-नाम्राट राक्षस का अभय प्राप्त है। आवश्यकता होने पर उन्हें उगम घन बल सत्ता, सहायक—मग्न कुछ मिल जात है। किन्तु नामासत राक्षस ने इधर सैनिक उत्पात् नहीं किए हैं। इसी घरेली में उसकी सहायता के लिए इतने राक्षस उपजते जा रहे हैं कि उस सत्ता में राक्षस सत्ता की आवश्यकता नहीं है।

य राक्षस इस मपूर्ण वन प्रवेश पर अपना आधिपत्य जमाना चाहत हैं। वे अर्थ लोग के यहाँ आकर बसने के विरोधी नहीं हैं क्योंकि यदि ऐसा होता तो राक्षसों की राक्षस-मना इस समस्त प्रदेश की घेर लेती और अर्थ लोग का प्रवेश निषिद्ध कर देती। ऐसी स्थिति में वे वन उपवन नदिया पर्वत उनके किसी काम में आत। उन्हें बना की काटने भूमि जोतने खानों से धातुएं निकालने नदियों से मछलियाँ पकड़ने नौकाए चलाने अपने घरेलू कामों तथा व्यक्तिगत सेवाओं के लिए दाग चाहिए। भोग के लिए स्त्रियाँ चाहिए नर मांस के लिए पुरुष चाहिए। इन्हीं सब कारणों से वे चाहत हैं कि इस प्रदेश में पहले से बग हुए लोगों की जनमस्या बड़े तथा बाहर से आकर भी विभिन्न जातियों के लोग बसैं। किन्तु वे नहीं चाहत कि यहाँ की प्रजा बुद्धिमानों स्वतन्त्र चित्तक आत्मनिर्भर अधिकारों के प्रति सजग सचेत तथा आत्म रक्षा में समर्थ एवं शक्तिशाली हो। वे चाहत हैं यहाँ की प्रजा बाड़े में पला उनका पशुधन हो जिसका

तोई अधिकार न हो जिमकी कोई अपेक्षा और चिंतन न हो। जिसे वे जेम काम म चाहें जोत दें और जब चाहें उसे मारकर खा जाए। अपनी क्षा म समय शरीर तथा स्वतंत्र रूप म सोचने वाला मस्तिष्क उह अपने लिए खतरा लगता है अतः उसे वे अपना शत्रु मानते हैं। बुद्धिवादी ऋषि उनके सबसे बड़े शत्रु हैं क्योंकि वे लोग न केवल स्वयं शक्तिशाली हैं वरन चिंतनशीलता का राग मक्रामक रूप से फैलाते हैं। उनके मपक म आन वाटे आय लोग भी सोचन लगत हैं जानने लगते हैं मगठन म विश्वास करने लगत हैं, जाति सम्प्रदाय तथा व्यवसाय के नाम पर, परम्पर लडन मरन का स्वीकार न कर समता के आधार पर मानवीय अधिकारों के लिए सघष करने लगत हैं

राम ! क्या राक्षस मधमुच नर माम खाते हैं ?' सीता किक्तव्य विमूढ़ भी लग रही थी या यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मात्र है ?'

'प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तो यह है ही। राम बोले जिन परिस्थितियों म ये मामांय जन की जीन के लिए बाध्य करत हैं उसे उनका रक्त पीना और हडिडया चबाना ही कहा जा सकता है किंतु यह मात्र प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही नहीं है। हेतुकुल जिस आदिम अवस्था से उठा था वहां नर मांस खाने की परंपरा थी। किंतु राक्षसी चिंतन जिस स्वाध-बुद्धि पर चलता है वह अंतिम रूप से अपने व्यक्तिगत सुख की ही चिंता करता है। सुख की अति सत्ता ही बीभत्सता की आर बढ़ती है। य नव राक्षस भी क्रमशः उमी और बल रहे हैं। चाहने नर माम खान की परंपरा की आभिजात्य के घरातल पर प्रतिष्ठित किया है। मदिरा तथा काम सबधों की नग्नता की भी य औरराचित करत जा रहे हैं— ताकि क्रमशः मानवीय सबध समाप्त ही जाए और मनुष्य पूण पशु हो जाए ।'

महसा राम ने दखा—नक्षमण का ध्यान उनकी बातों से हटकर आश्रम की आर आने वाले मार्ग की चटाई पर चढ़ती एक मानव जाति पर लगा हुआ था। नक्षमण की दायी हथेली धनुष पर कम गयी थी और उनका दाया हाथ तूणीर की टोेल रहा था।

धय रखो सीमिश !' राम ने धीरे से कहा 'अभी इतना अधिकार

हुआ कि हम प्रत्यक्ष जागतुक को आशुवा की दृष्टि से देखें।”

उन सीना की दृष्टि श्रमश निवट आती हुई उस जादृति पर लगी हुई। पहचान की सीमा में आत ही सीना न उभे प्राय साथ-साथ पहचाना वह वाल्मीकि आश्रम का मुखर था।

मुखर। इस समय यहाँ सीता चरित थी।

कदाचित् श्रुति ने काइ सदेश भेजा है। लक्ष्मण वीर।

मुखर के निवट आन पर राम ने सहज भावसे हसकर कहा, स्वागत मुखर। आओ बठो। तुम अच्छे समय पर आए। भोजन तो हमारे ही करोगे न? अब आश्रम सौटन का तो समय नहीं रहा।

हाथ जोड़कर मुखर ने सबका अभिवादन किया और अत्यन्त धकी मुद्रा में उनक निवट बठ गया।

उसने बारी-बारी तीनों के भावा को दखा और सङ्कुचित मद्धम स्वर वाला आय। यदि आपको असुविधा न हो तो मैं आज रात आपके आश्रम ही रुकता कहूँगा। मेरी दृष्टि आप पर—किंतु मुझे निश्चित कुछ निवेदन करना है।

नि सकोच नको, मित्र। लक्ष्मण उत्साह के साथ बाल जाद्विर जो दिन भर के परिश्रम से अतिथिगाल बनाई है, उसका कुछ उपयोग तो हो।

राम ने मुसकराकर लक्ष्मण का अनुमोदन कर दिया।

सीता उठ खड़ी हुई मैं भोजन की कुछ व्यवस्था कर। मुखर बहुत से चलकर आया है। थका हुआ है और भूखा भी अवश्य होगा।

आपका अनुमान एकदम सत्य है दीनी। मुखर पहली बार कराया।

जन के पश्चात् वे चारों फिर एक जगह आ बठ।

भद्र राम। मुखर बोला, मैं नहीं जानता कि अपनी बात कहा से कहूँ। इसलिए सारी बात कहूँगा।

निश्चित होकर कहो। राम बोले तनिक भी मकोच मत करो।

चित्रकूट प्रदेश में जनसंख्या विरल है। मुखर ने कहना आरंभ

किया, 'किंतु इससे दक्षिण जन स्थान में जहाँ एक ओर घन वन हैं वहाँ अनेक स्थानों पर घनी जनमय्या पायी जाती है। उससे और आगे बढ़ने पर किष्किंधा में वानरा का प्रसिद्ध राज्य है जिसका सम्राट महाबली वाली है। मैं उसी वानर-जाति का एक सदस्य हूँ। मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि हम अपने आपको वानर क्यों कहते हैं। कुछ तो हमारे शरीर का वर्ण अपेक्षा कृत पीला है और कुछ उस पर पतले लंबे रोम हैं। फिर हमारा जातीय प्रभाव भी 'वानर' ही है। हमारी अनक पड़ोसी जाति या स्वयं की इसी प्रकार अन्य पशुओं के नामों में संबोधित करती है।

'तो उसी वानर जाति का मैं एक सदस्य हूँ। वाली महाबली है, किंतु न तो उसके राज्य की निश्चित सीमा है न नियमित मेला है। वह अपने व्यक्तिगत शोष पर जीने वाला प्राचीन काल के यूथ पति जैसा राजा है। एक प्रकार से अपनी बात का घनी मी है। यदि उसने रावण का अपना मित्र कह दिया तो कह दिया—रावण उसका मित्र है, चाहें रावण के अनेक सहयोगी राक्षस वानरी का जहाँ-तहाँ पीड़ित करते रहें। उन साधारण राक्षसों से बानी नहीं लड़ेगा। असाधारण है रावण किंतु वह उसका मित्र है—अतः युद्ध का प्रयत्न ही नहीं है। परिणामस्वरूप अपने ही घर में वानर जहाँ-तहाँ पीड़ित हो रहे हैं और उनका मामला लंबा के हाट-वाजारा में धुन आम बिरता है।

मुद्गर दक्षिण-पश्चिम में समुद्र-तट पर हमारा गांव है। उस गांव में हमारा घर था। घर में मेरे माता पिता थे बहन भाई थे भाभिया थी भतीजिया भतीजे थे। पशुओं के गांव में बहन का विवाह हुआ था। बहनोई धान-पीन व्यक्ति थे। भाजिया भाजे प्रसन्न थे। कितना सम्मान था मेरे पिता का। वे कवि और संगीतकार थे पर साथ ही कृषक भी थे। 'हान' बना की अपनी आजीविता का साधन नहीं बनाया था। खेती में इतना ज्ञान मिल जाता था कि माँ कुटुंब का पालन सुविधा से हो सका। बना की साधना के कारण मारा समय मेरी विमानी को नहीं दिया जा सका था। ऐसा हाता न बढ़ाचिन्त और अधिक ज्ञान उत्पन्न होता। उस बेचकर व्यापार के नाम पर अनहनीनों की वाध्यता का शोषण कर अधिक लाभ कमाया जाता। घन मचित किया जाता और फिर मचित घन की

दुःशक्ति से कुछ अथवा लोगो का धर्म और धर्म के माध्यम से स्वयं उन लोगो को खरीदा जाता। किंतु, मरे पिता ने इस और कभी ध्यान ही नहीं दिया। अपनी आवश्यकता भर मिल जान से वे सतुष्ट थे और गेय समय में अपनी कला की साधना करते थे। कला के माध्यम से अपने गांव और आस पास के ग्राम के लोगो का मनोरंजन करते थे। किंतु उनकी कला मनोरंजन के साथ लोगो को यह भी बताती थी कि उनके परिवेश में क्या ठीक है, क्या गलत, क्या बुरा है, क्या अधिभार है, क्या अत्याचार। उनकी कला का यह पक्ष गांव के धनकुवर राजसा को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने अपने जनकसंगठना की सहायता से हमारे घर पर आक्रमण किया। मैं वहां नहीं था। कह नहीं सकता कि हमारे कुटुंबियां भी किसका मांस वही भूनकर खाया गया, किसका ग्राम में बिका और किसका लका के हाट में। अब सत्तार में मेरा कोई नहीं है।

मैं वहां से भागा तो संगीत और वाद्य के आकर्षण में प्रहृष्टि बाल्मीकि के आश्रम में आया। किंतु जसा आपने उस दिन देखा, मुझे शस्त्रों का आकर्षण भी खींचता है। अब मैं अपने कुलपति की अनुमति से आपके पास आया हूँ। यदि आप मुझे शस्त्र शिक्षा देना स्वीकार करें तो उतनी अवधि तक मैं आपके आश्रम में, आपके शिष्य के रूप में रहने का इच्छुक हूँ।

मुखर ने अपनी बात समाप्त कर राम की ओर देखा।

राम गंभीर थे मित्र! ऋषि ने तुम्हारे जीवन की घटनाओं का संकेत भर दिया था। विस्तार से सुनकर, तुम्हारे प्रति मरा स्नेह और भी बढ़ा है। मुझे लगता है कि तुम्हें शस्त्र शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है। यदि तुम दो वचन मुझे दो तो मैं तुम्हें सहज शस्त्र शिक्षा दूंगा।

कैसे वचन आयें ?

तुम्हारा शस्त्र-कीशल प्रत्येक दलित का सहज-मुलभ होगा और तुम्हारा शस्त्र केवल गाय के पक्ष में उठेगा।

मैं वचन देता हूँ राम! 'मुखर ने अपने दोनों हाथ जोड़ दिये।

तो मैं तुम्हें कनिष्ठ मित्र के रूप में स्वीकार करता हूँ।'

“आज अतिथिशाला में ही ठहर जाओ मित्र! बल तुम्हारे लिए अलग कुटीर का निर्माण करण।’

लक्ष्मण की प्रसन्नता उनके चेहरे से फूटी पड़ रही थी।

सबेरे राम और सीता नहाकर मदाकिनी से लौट रहे थे। माग में सुमेधा मिली। वह रुकी नहीं। चलत चलते ही कह गयी "दीदी! कुम्भकार को कह दिया है। वह आज आएगा।"

राम ने बल सीता से सुमेधा के विषय में सुना था। उन्होंने ध्यान से उस दंष्ट्रा—उसके मुख मंडल पर कोई विषाद दुःख परित्याप अथवा चिंता नहीं थी जो कि इस भयंकर दमन के कारण स्थायी रूप से होनी चाहिए थी। क्याचित् उस दमन को उसने अपनी जीवन विधि के रूप में अंगीकार कर लिया था उस अपनी नियति मान लिया था। नियति राम को लगा इस गण का साक्षात्कार होत ही, उनके मन में एक भयंकर भ्रमावात उठ खड़ा होता है। किसन कनाया है यह विष सार समाज में? जिस व्यक्ति ने पहली बार इस अवधारणा को कल्पना की थी, उसने भी कभी इसकी घातकता की तीव्रता का ठीक-ठीक अनुमान न लगाया होगा। जिस व्यक्ति जाति या समाज में यह विष एक बार घेर कर लता है उसका मपूर्ण उद्यम समाप्त हो जाता है उसका विद्रोह उसका तेज, उसकी प्रतिनिधिता शक्ति पूर्णतः नष्ट हो जाती है। यह मृत्यु है—जीवन्तता का अन्त। शोषण का कितना बड़ा माध्यम है भाग्य की यह अवधारणा। हमक रहते किसी के मन में व्यवस्था के विरुद्ध असंतोष जन्म नहीं लेगा उनके विरुद्ध आक्रोश नहीं उठेगा व्यक्ति व्यवस्था के विरोध और उसने परिवर्तन तथा सुधार की बात सोच ही नहीं सकता भौतिक विष तो घातक होता ही है किंतु मानसिक विष चित्त का विष, उससे कहीं अधिक घातक होता है

लक्ष्मण और मुखर को वन से लौटने में अधिक देर लगी। लौटते हुए, वे अपने साथ कुछ फल और सब्जियाँ भी लाए थे। लक्ष्मण वन में जाते थे तो उनका ध्यान सब्जियाँ का भार अधिक रहता था। आज उन्हें मुखर के लिए कुछियाँ भी बनानी थीं। उसके परचात आश्रम के चारों ओर बाड़ा भी बनाना था। एक फाटक बनाना था। इधर के लिए भी सब्जियाँ चाहिए

थी। सचदिया की आवश्यकता तो आन बात अनेक दिनों तक बनी रहगी।

लक्ष्मण कुत्तीर निर्माण व काय म लग गए, तब राम ने सीता और मुखर को शस्त्राभ्यास कराना आरम्भ किया। मुखर का शस्त्राभ्यास विषय म कुछ भी बात नहीं था अतः उस आरम्भिक ज्ञान भी दिया जाना था। सीता को बाण-सधान सबधी कुछ बातें बताकर, उनका अभ्यास करने के लिए वह राम न मुखर को शस्त्रों के विषय म सूचनाएँ देने आरम्भ की—उसे सैद्धांतिक पक्ष बताकर ही व्यावहारिक ज्ञान कराया जा सकता था।

सौमित्र सत्सा अपना काम छोड़कर एक अर्ध स्थान पर चल गया, जहाँ स टीन की चढ़ाई अच्छी तरह दिखायी देती थी।

राम ने लक्ष्मण की दया—निश्चित रूप स को ध्यावित टील की चढ़ाई चल्कर उनका आश्रम की ओर जा रहा था। पर अभी शस्त्राभ्यास रोकने का कोई कारण नहीं था। उ हने सीता और मुखर को उनके अभ्यास म लगाए रखा ताकि न उनका ध्यान लक्ष्मण की ओर जाए और न व लक्ष्मण के समान अपना काम छोड़कर उस पगडंडी को ताबन लग।

थोड़ी दूर म एक ध्यावित ऊपर आया। वह वयस नवयुवक था। उसकी कमर मे भगछाल नहीं थी उसने एक सगाटी बांध रखा था। निश्चित रूप से वह बनवासी न होकर ग्रामवासी था। उसका मवलाया-भा गन्ना रंग था। पहले तो वह लक्ष्मण से बातें करना रहा फिर उसका ध्यान शस्त्राभ्यास करत हुए मुखर तथा सीता और निर्देश देते हुए राम की ओर चला गया। वह आश्चर्य विस्फारित नयना स उनको देखता क्षण भर भौंका छटा रहकर लक्ष्मण के साथ उनकी ओर चला।

शस्त्राभ्यास थम गया।

‘भाभी! यह कुम्भकार है। इसे सुमेधा ने भजा है।’ लक्ष्मण न उसका परिचय दिया।

राम ने देखा—कुम्भकार की आँखो म जीवन की चमक थी। मुख की रेखाएँ उसमें कुछ समझदार हान की ओर संबत करती थी। यह व्यक्ति सुमेधा के गाव का था किंतु सुमेधा के समान अपने जीवन से सतुष्ट नहीं था। उसके मुख मडल पर कुछ सम्मान कुछ भय, कुछ जिनासा के मिश्रित भाव थे।

‘आप लोग कौन हैं ?’ वह पहला वाक्य बोला।

सुमधा न केवल अपनी बात कही थी—सीता सोच रही थी—उन लोग के विषय में उसने कुछ भी नहीं पूछा था। उसकी आँखें अपने परिवार की ओर से बढ़ थीं मस्तिष्क साया हुआ था। यह व्यक्ति वैसा नहीं था। वह जागरूक था। उसने अपने विषय में कुछ बताने से पूर्व उनके विषय में जिज्ञासा की थी।

‘मैं राम हूँ। मेरे छोटे भाई हैं—लक्ष्मण। मेरी पत्नी हैं—सीता। और यह है मेरा मित्र मुखर, हमारे आश्रम में शस्त्राभ्यास कर रहा है।

आप लोग यहाँ क्या कर रहे हैं ? कुम्भकार कुछ हकलाता-सा बोला।

लक्ष्मण ने बेहुर पर आवास भवन का, किंतु राम ने उन्हें सबेरे से घात करते हुए कहा हम लोग अपने पिता के आदेश से वन में आए हैं। यहाँ बसे ही वास कर रहे हैं जहाँ साधारण वनवासी निवास करते हैं जहाँ तुम निवास कर रहे हो।”

इस बार कुम्भकार के चेहरे पर भावावगता आया, “जहाँ मैं निवास कर रहा हूँ। एक दिन कुम्भ निर्माण छाँवर एक मूर्ति का निमाण करने लगा था तो तूभरण ने मार-मारकर मेरी खान उधेड़ दी थी। उस दिन उस कुछ वनना का आवश्यकता नहीं होती तो वह अवश्य ही मुझे मारकर मार जाता। और आप लोग तो शस्त्रों का अभ्यास कर रहे हैं—यहाँ तक कि यह महिला भी।

‘शस्त्राभ्यास में तुम्हें क्या आपत्ति है ?’ राम ने पूछा।

‘मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आपत्ति है तूभरण को।’ कुम्भकार अल्बो-जानी बोला, “उसका कहना है कि मेरा दादा कुम्भकार था, बाप कुम्भकार था इसलिए मुझे भी कुम्भकार ही बनना पड़ेगा। मैंने कुछ और वनन का तनिक भी प्रयत्न किया तो वह मुझे आव म धकाकर मार डालेगा। यहाँ तक कि वह मुझे वनन छोड़ मिट्टी के पित्रोत भा नहीं बनाने देगा। और जहाँ तो शस्त्रों का बात है उह रणन का अधिकार केवल राजसा का है।’

क्या ? राजाओं को ऐसा विनिष्ट अधिकार क्यों है जो अन्य लोग

मेरा कुम्भ, नवयुवक । सीता ने उसे टोक दिया ।

‘आपक’ लिए मैं अपनी इच्छा से कुम्भ बनाऊंगा देवि । यही इसी आश्रम में । निश्चिन्त रह ।

वह तेजी से दलान की ओर चल पड़ा ।

बे चारा उस दखने रत्न । वह पेड़ों की ओट में छिप गया ता राम मुने ‘देखा । एक कालकाचाय है कि शस्त्र देखकर सहम गए, और एक यह कुम्भकार है कि अपने बधन तोड़ने के लिए मचल उठा ।

‘यह क्या मात्र वृत्ति का भेद है ?’ सीता ने पूछा ।

कुछ वय का कुछ वृत्ति का । राम बोले ‘कुछ सहे गए अत्याचारों की तीव्रता कुछ मुक्त होने की इच्छा—अनक यार्ते है सीते ।’

‘किंतु सिद्धाश्रम में तो हमारे शस्त्र देखकर कोई भयभीत नहीं हुआ था । तक्षमण उस बाबिल बितन कर रहे थे । वहा का तो बरबाद-बरबाद उठ खड़ा हुआ था । ग्रामीण तथा आश्रमवासी एक साथ सघय करने के लिए जुट आए थे ।

‘वहा की स्थिति भिन्न था ।’ राम बोले ‘श्रुति विश्वामित्र के कारण वहा सजस्विता का इतना दमन नहीं हुआ था । फिर ताडका के बधन जने नामाय का आत्मविश्वास जाग्रत कर दिया था ।

राम के आश्रम के व्यावहारिक दष्टि से दो दल बन गए । प्रातः राम और सीता मदकिनी में नहान चले गए । उनसे लौटते पर तक्षमण और मुखर गए । वाद के समय में तक्षमण आश्रम के निर्माण कार्य में लग रहे और राम सीता तथा मुखर को शस्त्राभ्यास कराने रहे । दोपहर के पश्चात सीमित्र और मुखर निर्माण तथा आश्रम की रक्षा के लिए पीछे रुक गए और राम तथा सीता पड़ोस के आश्रम निवासियों से परिचित होने के लिए चल गए ।

पिछने कुछ दिना से राम का अपना कायक्षेत्र विस्तृत करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था । उ ह लग रहा था आश्रम में बैठकर शस्त्र शिक्षा देने से ही उनका दायित्व पूरा नहीं हो सकता । सिद्धाश्रम क्षेत्र

के ग्रामवासियों के ही समान इस क्षेत्र के ग्रामवासी तो राजसा से आतंकित थे ही साधारण आश्रमवासियों में भी तब नहीं था। कालकाचाय, राम के शस्त्रागार के इस प्रदेश में आ जाने से भयभीत थे। उह राक्षसा की अप्रसन्नता की आशका थी। कुछ अर्थ कुलपतिया की भी यही स्थिति थी। ऐसी स्थिति में राम की शस्त्र शिक्षा क्या करती। कोई उनके पास आए ही नहीं तो वे क्या करेंगे। शस्त्र शिक्षा तो भौतिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए है किंतु उससे पूर्व लोगों के मन को मुक्त करना होगा। उससे लिए उनके आश्रमों में, ग्रामों में यहां तक कि उनके घरों में भी जाना होगा। उह बताना होगा कि उनका जीवन कैसा हो जीवन में उनके क्या-क्या अधिकार हों जन साधारण को समझाने के लिए लक्ष्मण उपयुक्त पात्र नहीं है—उनमें तब के साथ जाग्रोश तथा भ्रंश है। वे तब काम करते हैं व्यर्थ और प्रहार अधिक करते हैं। नहीं! जन-साधारण तक तो राम की ही जाना होगा। उनके हृदय तथा मस्तिष्क को मुक्त करने के पश्चात् वे उह लक्ष्मण को सौंप सकते हैं। लक्ष्मण उन्हें शस्त्र शिक्षा देंगे शस्त्र निर्माण का काम सिखाएंगे संगठन और युद्ध का व्यावहारिक ज्ञान देंगे

बद्ध कुलपति कालकाचाय ने पहली भेंट में इंगित मात्र किया था दूसरी भेंट में स्पष्ट कहा था 'राम! तुम कितने ही वीर क्या न हो, तुम्हारे पास कितने ही शस्त्र क्या न हो, तुम्हारा आचरण कितना ही शुद्ध और ध्यायपूर्ण क्यों न हो तुम एक भयंकर जोखिम में घिर गये हो, तुम अपनी पुत्रती पत्नी के साथ एक ऐसे स्थान पर जा गए हो जहां किसी का प्राण सुरक्षित नहीं है, किसी का सम्मान अक्षत नहीं है। मेरी बात मानो राम! तुम लौट जाओ, और जब तक यहाँ रहो, अत्यन्त सावधान रहो, प्राणपण से अपनी और अपनी पत्नी की रक्षा करो '

कालकाचाय ने जो ठीक समझा, कहा। किंतु वनवास की बात अनेक ऋषियों से हुई थी—विश्वामित्र, भरद्वाज वाल्मीकि किसी ने भी तो उह लौट जाने के लिए नहीं कहा। ये बद्ध कुलपति ही क्या ऐसा कह रहे हैं? क्या उन समय ऋषियों को इस जोखिम का ज्ञान नहीं था, या य कुलपति उन्हें व्यर्थ ही डरा रहे हैं? बात कदाचित् ऐसी नहीं

थी। यह बदाचिह्न अपने-अपने सामर्थ्य और दृष्टि की बात थी। विश्वामित्र भरद्वाज तथा वाल्मीकि ममय ऋषि हैं। व जोखिम उठाने, शत्रु न भिड़ने और सत्य का मूल्य चुकान का अर्थ जानत हैं, और यह बड़ कुत्सपति बालकाचाय मध्यम कोटि के बुद्धिजीवी मात्र हैं। उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि झूठ और अत्याय से टकराए। इस क्षेत्र में तज की अगाना होगा जन-सामाय की समझना होगा। यह काम राम को ही करना हागा। बालकाचाय जैसे लोगो को बताना होगा कि घबराकर अथवा भयभीत होकर भाग जाने से काम नहीं चलगा। आप अत्याचार के सम्मुख स पलायन कर अपनी जान नहीं बचा सकते। वह आपको दूँगा घरेगा और अंत में कुचल डालगा। अत्याचार स छिपा नहीं जा सकता उसका ता सामना ही किया जा सकता है।

अधकार होने से पहले, राम और सीता आश्रम में लौट आए। आश्रम में फन और अहर पर्याप्त था। भोजन की व्यवस्था में कोई परेशानी नहीं थी। भोजन पकाने का काम कोई भी कर सता था अथवा सब मिलकर कुछ-न कुछ कर देते थे। किंतु नियंत्रण तथा निष्पन्न का सर्वाधिकार सीता का था।

धीरे-धीरे आग जलाकर वे लोग उसके चारों ओर भोजन के लिए बैठे। किंतु भोजन आरंभ करने की स्थिति ही नहीं आयी। उससे पूर्व ही आश्रम के बाड़े के फाटक पर किसी के हाथों की चाप सुनाई दी। कोई ऊँचे स्वर में आश्रमवासियों को पुकारकर फाटक खोलने के लिए कह रहा था।

कोई अतिथि होगा। सीता बोली।

‘फिर भी सावधानी आवश्यक है। मुखर ने कहा।

‘तुम दोनों की बात ठीक है।’ राम धीरे से बोले अतिथि ही होगा नहीं तो इस प्रकार पुकारकर फाटक खोलने के लिए नहीं कहता, पर देश काल को देखते हुए सावधानी भी आवश्यक है। सौमित्र और मुखर तुम लोग उत्काण ले जाओ और देखो। मैं और सीता शस्त्रागार के पास है।’

मुखर और सौमित्र ने वसा ही किया। उत्काओ के साथ वे अपने

सस्त्र ल जाना न भूले ।

किंतु उन्हें नौटने में अधिक देर नहीं लगी । वे लोटे तो उनसे साथ सुमेधा कुम्हार तथा एक और अपरिचित वृद्ध थे । राम और सीता न उठकर उनका स्वागत किया । कुम्हार अपनी बात का पक्का निकला था ।

भद्रराम ! मैं आ गया हूँ अपनी जान पर खेलकर, 'कुम्हार बोला अपने साथ सुमेधा तथा उसके पिता भिगुर को भी ल आया हूँ । वह माय लाने के लिए पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा है । मैं दोनों ही ऐमा साहस करने के पक्ष में नहीं थे । इनका विचार था कि तुमरण के अधीन रहकर फिर भी कुछ दिन जीवित रहने की सम्भावना थी, किंतु वहाँ से भागकर, हमने अपने जीवन के समस्त द्वार बंद कर दिए हैं । मैं अपने को मतप्राय ही मान रहा हूँ । अब आप चाहें तो हमारी रक्षा कर, हम जीवन-दान दें, अथवा हम तुमरण को लौटा कर मृत्यु के हाथों सौंप दें ।

राम ने लपलपाती अग्नि के प्रकाश में उनके चेहरे का देखा—कुम्हार ठीक कह रहा था । कुम्हार के मुख मंडल पर जोखिम तथा दुस्ताहस की उत्तेजना थी किंतु भिगुर और सुमेधा के चेहरे मृत्यु की ठनी राख के समान बुझे हुए थे ।

राम ने भिगुर के कंधे पर हाथ रखा 'तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है, वादा ?'

भिगुर ने उनकी ओर देखा पर उनकी दृष्टि अधिक देर टिकी न रह सकी । उसने अपना मुख फेर लिया था । वह अधकार में देख रहा था मैं आपके प्रति अविश्वास की बात कने क्यूँ पर मुझे तुमरण की शक्ति और दुष्टता दोनों पर पूरा विश्वास है । उसके हाथों में कोई भी नहा बचा ।

'तो फिर तुम आ क्या गए ?'

'सुमेधा आ रही थी—मैं क्या करता । मुझे उसमें अधिक प्रिय और कुछ नहीं है । तुमरण के हाथों मेरी आय कोई सत्ता नहीं बची । एक यही गेप है, इसे नहीं छोड़ सकता ।'

और तुम क्यों चली आयी सुमेधा ?' राम ने पूछा ।

सुमेधा कुम्हार की ओर देख रही थी 'मैं कुम्हार से प्रेम करती हूँ ।

यह आ रहा था, इसलिए मैं भी आ गयी । '

‘तुम्हारी मा नहा आयी सुमेधा ?’ सीता न पूछा ।

‘वह किसी भी प्रकार तयार नहीं हुई इसलिए उस छोड़कर आना पड़ा ।

‘अच्छा सुना, बंधुओ ! राम का स्वर कुछ ऊँचा हा गया निम्सदेह तुम लोगो न जोखिम का नाम किया है किंतु इस आश्रम व भीतर प्रवेश करने के पश्चात् तुम्हारा जोखिम समाप्त हो चुका है । तुम्हारी रक्षा का दायित्व मुझ पर है सौमित्र पर है—सक्षम होने पर सीता और मुखर पर भी होगा । रात भर विग्राम करो । बल से तुम्हारी शस्त्र शिक्षा आरम्भ होगी ताकि आश्रम के बाहर भी हमारे निकट न रहने पर भी तुम अपनी तथा अपने साधियों की रक्षा कर सको ।

‘तुम्हारा नाम क्या है मित्र ? तक्षमण न पूछा नाम न जानने के कारण, तुम्हें सम्प्राधित करने में काफी परेशानी हो रही है ।’

‘कुम्भकार ।’

‘यह क्या नाम हुआ ?’

‘जय किसी शत्रु से आज तक मुझे किसी न संबोधित नहीं किया ।’

‘तो आज स तुम्हारा नाम उदघाप होगा मित्र । राम बोल तुमने इस मपूर्ण क्षेत्र में आज से स्वतंत्रता का उदघोष किया है ।

‘कुम्भकार मुसकरा पड़ा ।

‘आजो अब भोजन करें ।’ सीता ने सुमेधा का हाथ पकड़ अपने पास बठाया ‘तुम यहाँ बठा सखि ।’

सुमेधा और उदघाप बठ गए किंतु भिगुर नहीं बठा ।

सब की प्रश्नवाचक दृष्टि उसकी ओर उठ गयी ।

भिगुर के चेहरे पर कुछ इतने मिथित भाव थे कि समझना कठिन था कि वह क्या सोच रहा था—वह प्रेम न भी था और पंडित भी उसके चेहरे पर थढ़ा भी थी और अविश्वास भी, भाग उसके सामने था और उस पर पग भी नहीं उठ रहे थे ।

‘प्रभु ।’

‘मैं प्रभु नहीं हूँ ।’ राम मुसकराए ‘मैं एक साधारण आदमी हूँ ।

तुम मुझे राम कहो, बाबा ।”

“भद्र राम ।” भिगुर और भी मनुचित हो गया “इन वच्चो का अपराध क्षमा करना ये लोग भोजन की इच्छा से आपके साथ बैठ गए हैं । कड़ी भूख ने इनकी बुद्धि अमनुषित कर दी है ।”

काई नहीं समझा कि भिगुर क्या कहना चाह रहा है । क्षण भर सब कुछ अनवबुझा ही रहा । पर तब भिगुर फिर बोला, हम जाति के मील हैं, भद्र । और स्थिति से तुमरन के दास । हम आपके साथ बैठकर ”

राम खिलखिलाकर हस पड़े भोजन परोसो सीत । ’

व भिगुर से संबोधित हुए ‘बाबा’ इस भूल जाओ कि तुम्हें क्या बताया गया है कि तुम क्या हो । याद केवल यह रखो कि तुम एक मनुष्य हो वम ही जम अम मनुष्य है । बड़े छोट, ऊच-नीच दास स्वामी, जाति पाति के मबध मनुष्य निर्मित है, और उनका निर्माण उहान किया है जिह उनसे काई लाभ है । मैं मनुष्यो म मानवीय सबध के अतिरिक्त दूसरा काई सबध नहीं मानता । और इस समय तो तुम राम के आश्रम के सदस्य हो । तुम्हारी जाति वण गोत्र स्थिति—सब कुछ वही है, जा राम की है । बड़ी जोर शात मन से भोजन करा ।”

राम ने भिगुर का हाथ पकड़कर उसे अपने पास बैठा लिया ।

भिगुर बठ गया, कितु सब ने ही लक्ष्य किया कि वह सहज भाव से छा नहीं पा रहा है । जो कुछ उसने खाया भी वह उसकी भूख की दष्टि से बहुत कम था ।

भोजन के पश्चात् उदघोष न अपनी बात कहो, “राम । कल मवेर ही तुमरन को मालूम हो जाएगा कि हम लोग गाव से भाग गए हैं । उसे यह पता लगाते देर नहीं लगेगी कि हम यहा आए हैं । और यह पता लगत ही वह अपने बधु बाधुवो को लेकर सशस्त्र आक्रमण करेगा । हम गाव से भागने और आपको हम आश्रय देने का दंड देना चाहेगा ”

तुम आश्वस्त रही, मित्र ।” लक्ष्मण ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी यह तो समय आन पर देखा जाएगा कि कौन किसको दंड देता है । जब तक तुम्हें तुमरन के आक्रमण का भय हो, अथवा जब तक तुम द्वन्द्व-युद्ध की दष्टि से पूणत समथ न हो जाओ सब तक मेरी कुटिया म रहो,

उसके पश्चात् ही तुम्हारे लिए अलग कुटीर बनाएंगे ।'

मैं भयभीत नहीं हूँ, सौमित्र ! किंतु अपनी असमयता को जानता अवश्य हूँ ।'

जब तक तुम असमय हो उद्घोष ! तब तक हमारी सामर्थ्य पर भरोसा रखो । राम मुसकराए सौमित्र ! सुमेधा और भिगुर के लिए अतिथिशाला में प्रबंध कर दो । उद्घोष तुम्हारे अथवा मुखर के कुटीर में टिक जाएगा । बल इन सबके लिए कुटीर निर्माण तथा शस्त्र शिक्षा ।'

प्रातः राम और सीता उठकर अपनी कुटिया से बाहर आए तो उद्घोष उनके सामने खड़ा था । वह सहज नहीं था उसका सवनाया हुआ गेहूँ आरग इस समय एकदम पीला पड़ गया था ।

राम विस्मित हुए तुम यहाँ कब से खड़े हो, उद्घोष ? जल्दी उठ गए या तुम्हें रात की नींद ही नहीं आयी ?

उद्घोष ने काश उत्तर नहीं दिया । वह बबन कटी कटी आलाप उद्घोष देखा रहा ।

क्या बात है ? राम मुसकराए रात कहीं तुम्हारे सपने तो नहीं हुआ गया ?'

नहीं, बाप ! वह खोद-मस्वर में बाला तुम्हारे सपने तो नहीं हुई, किंतु जगता है कि यहाँ रात का तुम्हारे या उसके साथी आए अवश्य थे । सुमेधा तथा भिगुर अतिथिशाला में नहीं हैं ।'

'क्या ?' सीता के मुख में विस्मय भरा चालाक निक्का ।

उद्घोष ! तुम सौमित्र को बुलाओ ।

राम सीता की माथ लिये हुए अतिथिशाला की ओर बढ़ गए ।

लक्ष्मण मुखर तथा उद्घोष ने भी आनंद में अधिक दूर नहीं गये, किंतु तब तक राम कुटिया का अच्छी प्रकार निरीक्षण कर चुके थे । अतिथिशाला पर आक्रमण, उसे तोड़ने उस पर किसी प्रकार के बल प्रयोग का वहाँ चिह्न नहीं था । रात में किसी भी प्रकार का आलाह्वान नहीं सुना था । मुखर की कुटिया अतिथिशाला से बहुत दूर भी नहीं थी । वह यह मानने के लिए रत्ती भर भी तैयार नहीं था कि बाहर में कोई

जाया हो, सुमेधा और भिगुर को बलात ले गया हो, और मुखर न एक भी शब्द न सुना हो।

‘यह समझ ही नहीं है।’ वह अत्यन्त रोष से बोना ‘मुखर के कान ऐसे नहीं हैं। रात को आश्रम का एक पत्ता भी खडकवा, तो मुखर के कान भनभना उठेंगे।

ता इसका एक ही अर्थ है कि सुमेधा और भिगुर अपनी इच्छा से रात का आश्रम से निकल भागे हैं। उदघोष का स्वर पहल से भी अधिक दीन हो गया।

पर क्यों ?” सीता उस अपन-आप से पूछ रही थी।

‘क्योंकि सुमेधा मुझमें प्रेम नहीं करती। उसे अपनी मा अधिक प्यारी है वह कायर बाप भिगुर प्यारा है। मैं उसे प्यारा नहीं

लक्ष्मण आगे बढ़कर उसे ममाल न लेत तो उदघोष अवश्य ही चक्कर खाकर फिर पड़ता। वह लक्ष्मण का सहारा लेकर पड़ की छाया में बैठ गया। गैर लोग भी उसके आस-पास बैठ गए।

राम सोच रहा था—यदि सुमेधा और भिगुर को बलात ले जाया गया होता तो उसकी चिंता तुरत की जानी चाहिए थी, किंतु परीक्षण से जिस निष्कर्ष पर वह लोग पहुंच रहे थे कदाचित् वही ठीक था। वे पिता पुत्री अपनी इच्छा में आश्रम छोड़कर रात के अंधकार में अपने गांव लौट गए थे। उनकी चिंता का कोई लाभ नहीं। इस समय तो उदघोष की चिंता की जाना चाहिए थी। कदाचित् उसने अपने जीवन का दाव सुमेधा पर लगाया था, और सुमेधा उस छोड़ गयी थी। उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी। यदि इस समय उसे न ममाला गया तो कुछ अघटनीय भी घट सकता है।

राम ने स्नहपूर्वक उदघोष के कंधे पर हाथ रखा और अत्यन्त कामल वाणी में बोला, ‘तुम ऐसा क्यों मानने लगे मित्र! कि सुमेधा तुमसे प्रेम नहीं करती। उसका अपन माता पिता से प्रेम तुम्हारे प्रेम के माग में तो नहीं आता। संभव है कि वह थोड़ा छूट गयी अपनी माता के प्रेम में लौट गयी हो।

उदघोष का वह शरीर जो क्षणभर पहल तक संकषा प्राणहीन लग

रहा था भयकर आक्रोश म तप उठा, 'नहीं यह बात नहीं है। अब तक मैं समझता नहीं था पर आज इस मुमेधा को अच्छी तरह समझ गया हू।

मेरा प्रेम से उस क्या मिलता ? माव छोड़ना पड़ता। इस या उस आश्रम में रहना पड़ता। प्राणा का जोखिम बना रहता। संभव है पीछे गाव में राक्षस उसकी मा की हत्या कर देत। मैं हू क्या ? एक कुम्हार। मैं उम्मे क्या दे सकता था। एक निधन व्यक्ति का प्रेम दे ही क्या सकता है

उदघोष ! सीता ने टोका।

कहने दो सीते !' राम ने कहा।

उदघोष बोलता गया 'मुमेधा ने ठीक किया, वह लौट गयी। अब उसकी मा और भिगुर का कीड़ा कुछ नहीं बढ़ेगा। उसे भी कोई कुछ नहीं बढ़ेगा। राक्षसों की सावजनिक भोग्य होकर रहेगी और उनकी जूठन खाएगी। मरा पता बताकर मेरी हत्या करवाने में उनकी सहायता करेगी तो संभव है जब वे योग मेरा वध कर मुझे खान दें तो मेरे शरीर की एक आध जूठी हड्डी उसकी तरफ भी पकड़ वह पकावट से हाफना हुआ भाव शून्य आखा से बारी-बारी सब की ओर देखता रहा और फिर अपने भीतर डूब गया और मैं क्या-क्या स्वप्न देखता था। मैं सोचता था मैं सुभरण राक्षस का दास नहीं रहूंगा। मैं किसी सुंदर स्थान में एक छोटी सी कुटिया बनाकर रहूंगा। मुमेधा मेरी पत्नी होगी। हमारे छोटे छोटे सुन्दर बच्चे होंगे। हम दोनों मिलकर परिश्रम करेंगे और अपनी गहस्थी चलाएंगे। अवकाश के समय मैं अपने घर के लिए धतन बनाऊंगा उस पर सुंदर-सुंदर स्त्री-पुरुष पशु-पक्षी अंकित करूंगा। अपने बच्चों के लिए छोटे छोटे खिलौने बनाऊंगा। कुछ जय मूर्तियां बनाऊंगा। मैं मूर्तिकार बनूंगा ' उसने फिर बारी-बारी एक एक व्यक्ति के चहरे को देखा और अंत में उसकी आखों राम के मुख मंडल पर टिक गयी। वह बोला तो उसका स्वर अत्यंत हताश था 'मैंने जीवन से बहुत अधिक ता कुछ नहीं चाहा। क्या ईश्वर की इस सृष्टि में मेरा इतना छोटा-सा स्वप्न भी पूरा नहीं हो सकता, राम ?'

राम ने उसे स्नेहभरी आखों से देखा, और फिर उनकी आखा और अधरो से मोहक मुसकान भरने लगी सुनो, उदघोष ! इस सृष्टि में मनुष्य

का बड़े-से-बड़ा स्वप्न पूरा होता है, किंतु मनुष्य की बनाई हुई इस व्यवस्था में नदी के किनारे पड़ी हुई मछली के लिए एक बूद पानी भी नहीं है। तुमरण तथा उसके जैसे सत्तागाली राक्षसों की बनाई हुई इस दुष्ट व्यवस्था में तुम एक दास कुम्भकार पैदा हुए हो और दास कुम्भकार ही मरोगे। इसमें सुमधा ही नहीं सुमधा जसो सारी किशोरियाँ घन और सत्ता मपन्न राक्षसों की भोग्याएँ ही बन सकेंगी। पर स्वप्न देखना प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है। स्वप्न देखने वाला मनुष्य ही जीवन्त मनुष्य होता है। यदि तुम्हारे गाँव में स्वप्न देखने वाला उदघोष जन्म न लेता तो प्रत्येक कृताकार कुम्भकार का जीवन बिताने की बाध्य होता। किंतु अब ऐसा नहीं होगा। तुमने स्वप्न देखा है तुम उस पूरा करने के लिए सघप करो और अपने साथ सपूरा ग्राम का मुक्त करो। प्रत्येक उदघोष और सुमधा का मुक्त करा प्रत्येक भिगुर और उनकी पत्नी को मुक्त करो

पर भिगुर तो मुक्त होना नहीं चाहता। उदघोष बोला।

एसा मत कहा। रास फिर वाल भिगुर हो या सुमेधा अथवा सुमधा की माँ मुक्त सब होना चाहते हैं किंतु पहा उनको बनाया तो जाए बिना स्वतंत्र हो सकते हैं। उनका तन ही नहीं मन भी बंदी है। पढ़न उनका मन को मुक्त करा। उनका साहस दाँ उनको आश्वासन दो। उनका मन मुक्त होगा तो वह स्वप्न दमेगा, मन स्वप्न देखेगा तो तन मुक्त होगा

“और सुमेधा का विषय में भी बड़ा सच मत साचो जो तुमने अभी कहा है” महसा बीच में सीता बोली वह तुम्हीं से प्रेम करती है तभी तो तुम्हारे साथ चली आयी। यदि उनका पिता अभी माहम नहीं जुटा पा रहा उनका माँ का मन जोखिम नहीं उठा पा रहा और वह उन दोनों में प्रेम करती है तो उसके लिए उसे अपराधिनी नहीं ठहराया जा सकता।

‘आप सच कहती हैं देवि। उदघोष के चेहरा का रंग लौट रहा था, क्या सचमुच सुमेधा मुझमें प्रेम करती है? क्या आप शपथपूर्वक यह बान कह सकती हैं?’

‘यद्यपि सुमेधा न मुझमें उस बान की कभी खयाल नहीं की’ सीता

बोली किंतु उसके हाव भाव देखकर मैं शपथपूर्वक कह सकती हूँ कि वह तुमसे ही प्रेम करती है उदघोष ! उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो ।'

उद्यम करो उदघोष ! लक्ष्मण बोले, तुम्हारी प्रिया उस राक्षस के पास बदिनी है । यह मत समझो कि वह अपनी इच्छा से लौट गयी है । लौटाया है उस तुमरण के आतंक ने । तुम उस जानक को नष्ट करके ही, उसे पा सकागे । पराक्रम करो । यह हारकर मत बैठो । मसार उद्यमी और पराक्रमी मनुष्य का है ।

उदघोष उठकर खड़ा हो गया । बदाचित्त आप लाग ही ठीक कहते हैं । मैं हाँ भ्रमित था । मैं सुमया को ही नहीं । सृणुण ग्राम को तुमरण के आतंक से मुक्त करूँगा ।

साधु उदघोष ! साधु ! राम बाल, आज मैं तुम्हारी भी शस्त्र शिक्षा आरम्भ हाँगी ।'

साता और मुखर कुछ-कुछ शस्त्राभ्यास कर चुके थे । वे धनुष मभाव नत थे बाण चला लते थे, और बाण नश्य से बहुत अधिक भटकता भी नहीं था । वे खड्ग को हाथ में मभाव सेत थे शत्रु पर प्रहार कर लत थे और एक आध बार सेत सेते थे । अब उदघोष उनकी टोनी में सम्मिलित हुआ था । वह शस्त्र मसार में एकदम अपरिचित था । उसने धनुष बाण और खड्ग को कभी हाथ में लेकर देखा तक नहीं था । पहल पहल तो वह खड्ग को हाथ में लेकर उसकी धार तथा धनुष की लचक को ही देखता रहा । उसकी पकड़ में दबाव तथा मजाआ में धनुष की प्रत्यक्षा खींचन की वह शक्ति भी नहीं थी जा सीता और मुखर ने अभ्यास से अजित कर ली थी । वस भी उदघोष सामान्यतः अधिक कोमल और भावुक ही था । किंतु उसमें मीखन की उत्कट इच्छा थी और वह परिश्रम के लिए तयार था ।

एक सप्ताह तक उदघोष निरंतर शस्त्राभ्यास में जुटा रहा । राम से निर्देश पाकर वह विधि सीखता और उसके पश्चात् अभ्यास में जुट जाता । कभी कभी आवश्यकता होने पर वह सीता अथवा मुखर से भी सहायता लता । आश्रम में लक्ष्मण के लिए कोई निमाण-काय न होता, और वे कहीं बाहर न गए होते । तो वह उनकी भी सहायता लता । आश्रम के गेय

लोग कोई भी अथ काय कर रहे हान तो भी उत्थाप केवल शम्भाम्याम ही करता ।

सप्ताह भर के अभ्यास में उसकी पशियों में कुछ कठारता आ गयी । उसका राण लक्ष्य तक पहुंचने लग और उस लक्ष्य भेद की आशा बधन गयी ।

मन्या समय बाल्मीकि आश्रम से चेतन आया । वह बहुधा मुखर से मिलन आया करता था । सदा के समान वह राम के समीप आ अभिवादन कर खड़ा हो गया । किंतु उसके पशुवान न उसमें आश्रम का समाचार पूछा न मुखर से मित्रों की उत्सुकता दिखाई ।

राम ने ध्यान से देखा—चेतन गंभीर ही नहीं उदास भी था । उसका चेहरा बता रहा था कि वह अपना दुख छिपाने का नहीं, उसे विनाशित करने का प्रयत्न कर रहा था ।

‘क्या वान है चेतन?’ राम मुसकराए, ‘ठीक तो हा ? यह चेहरा बस सटका रखा है ?’

चेतन ने मिर उठाकर एक बार राम को देखा और फिर से मिर मुका लिया ।

‘क्या वान है मित्र ? लक्ष्मण का स्वर आशक्ति उत्कठा से पूछ था ।

ऋषि ने बार-बार मुखर से मित्रों आने की अनुमति देने में काइ आपत्ति की है ? सीता ने वातावरण हल्का करना चाहा ।

‘नहीं दत्त ।’ चेतन बुदबुदाते-से स्वर में बोला ऋषि ने मुझे एक टु खट मूचना तन के लिए भजा है ।

‘क्या हुआ ?’ राम का स्वर गंभीर किंतु स्थिर था, क्या किसी मनुष्य अभियान की मूचना है ?’

‘नहीं, आय । ऋषि भरद्वाज के आश्रम से मदेश आया है कि अयोध्या में मग्राट दशरथ का देहांत हो गया है ।’

सम की दृष्टि चेतन पर टिक गयी । वाला कोई नहीं ।

वह किसी राक्षस की जाया में चढ़ गयी, तो उसके हृत्थे चढ़ने से नहीं बचेगी। किसी भी दिन वह उससे छिन सकती है, किसी भी दिन

क्या ऐसा नही हो सकता कि राम उनके गाव पर आक्रमण करें? आश्रम में वे केवल पांच व्यक्ति थे सीता समेत। क्या वे तुभरण तथा उसके राक्षस साथियों को जीत सकते हैं? सस्या का देखत हुए तो एमा नहीं लगता किंतु राम और लक्ष्मण का अजेय आत्मविश्वास इसका प्रमाण है। यदि एमा न हाता तो तुभरण का आश्रम पर आक्रमण कर, सबके टुकड़े-टुकड़े कर चुका होता। जो तुभरण उसका कर्म को चित्रित करना सहन नहीं कर सकता या वह उसका ग्राम छोड़, आश्रम में स्वतंत्र रूप से रहना बस सहन कर रहा है? क्या उस अभी तक कुम्हार का गाव में चल जाना मान्य ही नहीं हुआ? कैसे मालूम नहीं हुआ होगा? क्या इतने दिनों तक किसी भी राक्षस को बतन बनवाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी? नहीं ऐमा संभव नहीं है। तुभरण को उसके विषय में अवश्य ही पात हागा किंतु या तो वह आक्रमण कर लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है या फिर वह राम और लक्ष्मण से डरकर चुप बठ गया है।

क्या उने सुमथा तथा भिगुर के गाव से जाने और फिर लौट आने में विषय में भी कुछ पात नहीं हुआ। कदाचित्त नहीं ही हुआ होगा नहीं तो गाव में रहत हुए भी उनका बध न हाता यह असंभव था। जब से सुमथा और भिगुर आश्रम से भागकर गये थे उनसे भट नहीं हुई थी, किंतु राम और सीता ने मदाकिनी आते-जाते दो एक बार सुमथा को देखा था। वह उसी समय जल सेन आती है। किंतु जब वह पहले से बहुत अधिक सावधान हो गयी है। बात करने के लिए स्क्ती नहीं है। आत जान कोई बात हा जाए तो हा जाए। तब से कभी आश्रम में भी नहीं आयी। ऊपर घोष से तो नहीं हा मिली—अच्छा ही है। वह भी इस स्थिति में उससे मिलना नहीं चाहता। भट होने पर पता नहीं वह क्या कर बैठे

सुमथा ठलने पर मुखर न समाचार दिया कि उनमें आश्रम के चारों ओर कई राक्षस घूमते तथा परस्पर कुछ सबेते इत्यादि करते देखे हैं। वे राक्षस ही थे, बनवासी नहीं। ग्रामवासी भी वे नहीं हो सकते थे, क्योंकि इधर किसी

साधारण ग्रामवासी के पास न तो दैते घटकील राजसी वस्त्र थ, न कोई ग्रामवासी मोन के गहन पहनता था और न किसी के पास शस्त्र ही थे। उतना मोटा और उतना भटकीला निश्चित रूप से राशम ही हो सकता था।

सूचना सबके सामन थी। इस बात में अधिक मतभेद नहीं था कि वे लोग आश्रम पर आक्रमण की तयारी कर रहे हैं। किंतु किस समय? यदि खुला आक्रमण करना होता तो दिन के समय करत किंतु उनके हाव भाव बता रहे थे कि वे आक्रमण रात में ही करेंगे।

आधी विजय हमारी हो चुकी। राम प्रसन्न मुद्रा में बोल हम मन्था में बबल पाच हैं। उनकी मन्था बहुत अधिक है फिर भी व छिपकर आक्रमण करना चाहते हैं इसका अर्थ स्पष्ट है कि वे हमसे भयभीत हैं। भयभीत व्यक्ति आधा तो पटन ही हो चुका होता है।

फिर भी, भद्र राम! हम सावधान रहना चाहिए। उदघोष बोला आप तुमरण को नहीं जानते। वह बहुत नीच और दुष्ट है।

लक्ष्मण विनय रूप से प्रसन्न मुद्रा में था, 'जितना भी नीच और दुष्ट है उस आने दो। मुझसे तो उदघोष का कष्ट देखा नहीं जाता। आज तुमरण आ जाए तो तुम्हारा विरह तो समाप्त होगा। बयो बधू! यदि तुमरण का वध हो जाए तो मुमेधा में तुम्हारा विवाह जान में कोई बाधा तो नहीं रह जाएगी न?'

मीता हम पट्टी लक्ष्मण तो समझते हैं कि तुमरण का वध मुमेधा के स्वयंवर की शत है। ऐसा नहीं है देवर! और यदि ऐसा हो तो तुम्हें और अधिक सावधान रहना चाहिए। कहा तुमने तुमरण का वध कर दिया, तो मुमेधा का विवाह उद्घाप के साथ कस होगा?

उद्घाप लजाकर मौन हो गया। मुमेधा की बात बीच में आ जान से, मुद्र की बात वहीं पीछे रह गयी थी।

किंतु राम मभावित आक्रमण के विषय में गंभीरता से साच रहे थे। उन्होंने सिर उठाकर सबका देखा 'जैसे तुमरण का आक्रमण बहुत गंभीर आक्रमण नहीं होगा। उसके पास व किसी यादों के मुद्र-जीवन की क्याति इस सारे क्षण में मैं नहीं सुनो। होगा वह खिलवाड़ ही। फिर भी थोड़ी-

थे, धनुर्धारी तीन चार ही थे। लक्ष्मण मन ही मन उनकी युद्ध-बुद्धि पर मुसकराए।

जब अंतिम राक्षस भी लक्ष्मण के वश स होकर आग बड़ गया तो पीछे स लक्ष्मण ने साधकर राण मारा। बाण अंतिम राक्षस की पीठ म लगा—वह चीखकर भूमि पर गिरा।

चीख सुनकर सारे राक्षस ढलटे। उन्होंने उल्टाए उठा उठाकर प्रहार करने वाले को खोजना आरंभ किया। व समझ गए थे कि आश्रम म कोई जाग रहा था और उन लोगा का जाना अब गुप्त नहीं था। उन्होंने भी रव्य को छिपाने का प्रयत्न छोड़ दिया था। उनका चीत्कार सुनकर आश्रम के वक्षो पर सोए पक्षी तक उड़ गये थ।

राक्षस धनुर्धारी आगे आए। उन्होंने धनुष को उठाकर शत्रु को देखना आरंभ किया, किंतु उमा क्षण बहुत कम अंतराल म उदघोष मुखर तथा सीता के धनुषा न बाण छोड़ दिये।

लक्ष्मण की ओर पनट जान के कारण इस बार फिर बाण राक्षसी की पीठा पर पड़ थे। वे दोनों आर की मार से एकत्र म अव्यवस्थित हा उठे और क्षण भर म ही अपने गन्ध उठाए चीखते हुए आश्रम के फाटक की ओर भाग गये।

वृत्त थोड़े म समय म ही व लोग आश्रम की सीमा से बाहर हो गये। उनके पीछे एक राक्षस चिल्ला चिल्लाकर उह पुकारता लगा रहा। शायद उसका विचार था कि व लोग उसके पुकारने स लौट आणगे, किंतु जब उसका साथी पूरी तरह आश्रम की सीमा के बाहर हा गये और उनके लौटने की कोई सभावना नैप नहीं रह गयी, तो वह भी चीखना होकर जाग बड़ा।

तभी सीमित्र वक्ष से उतरकर धनुष साधे हुए उनके सम्मुख आ खड़े हुए।

शस्त्र फेंको।' उन्होंने आदेश दिया।

राक्षस का चेहरा भय स पीला पड़ गया। खडग उसके हाथ स छूटकर भूमि पर गिर पड़ा। मरी तुमस कोई शत्रुता नहीं है।' वह धिधिया रहा था।

रात के अधकार म तुम इतने सशस्त्र साथियों के साथ आश्रम म आग

लगान और भार काट करने आए। अभी तुम्हारी मुझमें शत्रुता ही नहीं है।" लक्ष्मण कड़ककर बोल लोटो।

राक्षस प्राणहीन ढग से मुड़ा।

उदघोष भी अपने बक्ष से नीचे उतर आया और सीमित्र के साथ साथ चलने लगा किंतु राक्षस उसे पहचानने की स्थिति में नहीं था। भय के कारण उसकी आंखों के सम्मुख पूरी तरह अंधकार छा चुका था। वह किसी को भी नहीं देख रहा था।

‘यही तुभरण है।’ उदघोष ने धीरे में लक्ष्मण को बताया।

लक्ष्मण ने देखा—उदघोष की मुद्रिया भिची हुई थी। उसके चेहर पर घणा और प्रतिहिंसा थी।

आह! "लक्ष्मण मुसकराए, बस इतना ही था इसका माहस और बल। उदघोष! अपने का सयत करो भाई। हम युद्ध बनी पर प्रहार नहीं कर सकते।

तुभरण राम के कुटीर के सम्मुख पहुंचा। सीता और मुखर अपने कुटीरों से निकल आए। राम भी दूसरी ओर से आ गए। उन्होंने देखा उनके सम्मुख भडकीले वस्त्र पहने बहुत सारे मृत्युवान आभूषण धारण किए असाधारण रूप से स्पूलकाय गौर वण का एक व्यक्ति मुह लटकाए खड़ा था। वह भय से कांप रहा था।

तुभरण ने एक बार भी दृष्टि उठाकर नहीं देखा कि उसके सम्मुख कितने व्यक्ति थे, और उनमें कौन-कौन था।

राम ने लक्ष्मण में उसका परिचय पाकर उसे नाम से ही संबोधित किया तुभरण! रात में इस समय इतने सशस्त्र साथियों के साथ हमारे आश्रम का फाटक जलाकर, भीतर घुसने का क्या अर्थ है?

मेरी तुमसे कोई शत्रुता नहीं है "तुभरण फिर पहले वही समान पिधियाया मैं तो मैं तो मुझे क्षमा कर दो।

‘तुम यहाँ क्या करने आए थे? राम का स्वर कठोर हो गया।

‘मैं तुम लोगो को तुमसे मेरी तुभरण दुरी तरह हकला रहा था मैं तो अपने दास कुम्भकार का खोजन आया था। वह मेरे घर में भाग आया है।

राम ने उद्धोष को मकेत लिया। उद्धोष जाकर तुभरण व सम्मुख गड़ा हो गया।

इसे पहचानते हो ?”

तुभरण ने अपनी डरी हुई आँखें उद्धोष पर टिकाई। अस्वीकार म सिर हिलान हुए महसा उनकी आँखों में पहचान उतर आयी, यही है।’

यह मेरे आश्रम का विचार्य है, उद्धोष।’ राम बात यह तुम्हारा दास कसे है ?’

तुभरण ने विकल आँखा से राम को देखा “इसका पिता को मैं अपने बल से जीता था इसलिए वह मेरा दास हुआ। यह उसका पुत्र है इसलिए मेरा दास है।

‘तुम्हें आज इनमें युद्ध में जीता है। राम बात आज मैं तुम उद्धोष व शम हो जाओगे ?’

नहीं। तुभरण भय से बोला नहीं। नहा।।

तुभरण। राम का स्वर दृढ़ था दास प्रया अमानवीय है—चाह यह व्यक्ति की हो समाज की हो या राष्ट्र की। हम उस स्वीकार नहीं करते। तुम बलात किसी का अपने अधीन नहीं रख सकते। उद्धोष स्वतंत्र मनुष्य है। वस तुम्हें अपने बल का गुमान हा तो तुम उद्धोष से ड ड युद्ध कर सकते हो। हो तयार ?

उद्धोष अपना खड्ग मभाते आगे बढ़ा। उसके जीवन में इतने उस्ताह और उल्लास का क्षण पहन कभी नहीं आया था। किंतु तुभरण का चेहरा और भी रक्तहीन हा उठा नहीं।’

राम हस पडे ‘तुम अभी तक गूर हो जब तक दूसरा पक्ष तुमसे दुबल है। दूसरे पक्ष के समर्थ होते ही, तुम कायर ने समान भाग जाओगे। बंदी के प्राण लेना हमारी नतिवृत्ता के विरुद्ध है। इसलिए मैं तुम्हें एक छोटा-सा नड दकर मुक्त करता हू। किंतु फिर कभी तुम आश्रम के आस पास दखे गये, तो तुम्हें मृत्यु-दंड दिया जाएगा।’

राम लक्ष्मण की ओर मुड़े ‘इसके हाथ पीछ पीछ बांध दो। इसका पीछ और छाती पर, लिखकर लगा दा कि यह कायर अघकार में अचेत, दुबल लोगा की हत्याए करता है और समय प्रतिपक्षी को देखकर भय से

बाप उठता है। यह भी लिख दो कि इस उद्धोष की दृढ़ युद्ध की चुनौती स्वीकार करने का माहम नहीं हुआ है। और उद्धोष! तुम इसे पशु क समान हाथकर आश्रम की सीमा से बाहर खेड़ आमा।'

तुभरण का छदककर उद्धोष बापस लौटा ता अकेला नहीं था। उसके साथ बामोकि आश्रम के चार ब्रह्मचारी थे जिनका नेता चेतन था।

चेतन तुम।' मुखर सबसे पहन बोला आओ रात का।

'आवश्यक समाचार है।' चेतन बोला। किंतु यहाँ क्या हो रहा है? आप नाग जाग ही नहीं रहे पयाप्त सक्रिय और स्फूर्त लग रहे हैं। फाग्व भी जना पड़ा है।

यहाँ एक मत्तारजे घटना पटी है। राम बोला वह कहानी तुम्हें सबर सुनाएंगे। तुम समाचार कहा। ऐसा क्या है कि ऋषि न तुम्हें आधी रात का भेज दिया?

'भद्र! अवोध्या का समाचार है।

क्या?

भरत लौट आए हैं। न हान अपने अभिप्रेत का विराप किया है और आपका मनाना बापम अवोध्या ले जाने व सक्तर की घोषणा की है। किंतु

किंतु क्या?" लक्ष्मण बोला।

उन्होंने मना का प्रस्तुत होने का आदेश दिया है। व चतुरगिणी मना न बाप आपका मनाना जायग। चेतन के मुख पर एक चक्र मुमकान था।

घोषा।' लक्ष्मण बोला मनाने का नाम पर मनिव अभियान।'।

अभी चतुरमय नाग सो रहो।' राम बोला 'नेप यानें कन हागी।

राम अपनी कुटिया में चला आया पीछे-पीछे मीना आयीं।

'क्या मोर रहे आप?' मीना उत्तरित हा राम की आर दख रहा थीं।

निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सक्ता।' राम गिर बोली मवान मौमित्र की आगका भी टोका हा सक्ता है और भरत का घायला भा

सत्य हो सकती है।" सहसा वे मुसकराए, 'तुम परेशान मत हो, सात आशका की कोई बात नहीं है। जो आकाश सौमित्र के मन में है वह सुयज्ञ चित्ररथ त्रिजट तथा गृह के मन में भी होगी। भरत की सना आएगी तो मेरे मित्र भी अपने सैनिक-अमनिक यादों साथ लेकर आएंगे। फिर यदि भरत यह समझता है कि वह चित्रकूट में युद्ध करेगा तो मानना पड़ेगा कि वह सैनिक अभियानों में बच्चा है। यहाँ का भूगोल सैनिक अभियानों के उपयुक्त नहीं है। बट्टाहार जायगा वैसे ऐसी आशका होने पर हम उसके पट्टाचने से पूर्व ही उसकी मन स्थिति की सूचना मिल जाएगी।"

आप पूणत आश्वस्त हैं ?'

पूणत ।'

प्रातः एक असामान्य से कोलाहल से राम की नींद टूटी। उपा की सुनहली आभा अभी नहीं फूटी थी। अभी तो आकाश पर से अधिकार की घनी परत में कोई दरक भी नहीं पड़ी थी। पक्षियों का संगीतमय कोलाहल भी शुरुआत नहीं हुआ था।

पर राम की नींद टूट गयी थी। दूर कहीं हल्का सा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था जो क्रमशः आश्रम की ओर बढ़ रहा था।

राम उठकर बैठ गए। सीता को जगाया और कुटिया से बाहर निकल आए।

अगल ही क्षण वे पाँचों बबूब धारण कर कमर में खड्ग बांधे हाथों में धनुष बाण लिये अपने शम्भुशायर और कुटीरो को घेरे सन्नद्ध खड़े थे। चेतन तथा उसके साथी अतिथिगाला के भीतर ही रहे।

आश्रम के जल हुए फाटक में से पहले कोलाहल भीतर आया और उसके बाद एक भीड़।

राम ने अपना धनुष वाला हाथ झुका दिया। यह सबकुछ सबक लिए था—युद्ध नहीं होगा। सबके हाथ थियिल पड़ गए। आन वाली भीड़ थी सना नहीं। वे लोग व्यूह बट्ट नहीं थे। उस सारी भीड़ में शस्त्र भी दो-चार लोगों के पास ही थे, धनुष बाण तो किसी एक के पास भी नहीं था। यह भीड़ लड़न नहीं आ रही थी। उसमें आक्रमण की उग्रता नहीं थी।

उनकी भगिनी पर्याप्त भिन्न थी।

भीड़ के निकट आने पर सब ने आश्चर्य से देखा—भीड़ की अग्रिम पंक्ति में, भाग निश्चयन करत से भिगुर और मुमेधा थे।

“मुमेधा।” उदघोष जैसे अपने आपसे बोला।

भीड़ धम गयी। कोनाहल रुक गया।

मुमेधा आकर उदघोष के माथ खड़ी हो गयी। वह उसके कवच पर हाथ फिराकर स्पष्ट से जान लेना चाहती थी कि वह क्या है।

भिगुर। तुम कैसे आए? राम मुसकराए। तुम तो रात के अंधकार में छिपकर भाग गए थे।

इसीलिए तो रात के अंधकार में छिपकर वापस भी लौटे हैं। लक्ष्मण बोले। सुबह तो हाथ देत आये भिगुर। या अपने नाम का प्रभाव छाड़ नहीं पाओगे?”

भिगुर हँसा। आज वह सारे मकीचो-ग्रथियों से मुक्त लग रहा था। आज वह सिमटा हुआ न होकर, उमुक्त था। भद्र राम। मुझे क्षमा करें। तब मैं तुम्हारे का आनंद अपने मन से निवान नहीं पाया था। तब मैं आपका सामर्थ्य भी नहीं जानता था अब आप पर विश्वास नहीं कर सका। किंतु ”

किंतु क्या बोधा? सीता ने पूछा।

‘किंतु कन प्रातः मे ही राक्षस आपके आश्रम पर आक्रमण करने की तयारी कर रहे थे—ग्राम का प्रत्येक निवासी इस बात का जानता था। प्रत्येक दाम ग्रामवासी की सहानुभूति आपके साथ थी। किंतु हम में से कोई आप तक सूचना पहुँचाने का साहस नहीं कर सका।’ भिगुर क्षण भर के लिए रुका, रात को जब आश्रम पर आक्रमण हुआ तो कुछ ग्रामवासी छिपकर राक्षसों के पीछे-पीछे आए। उन्होंने यहाँ हुई राक्षसों की दुर्गति देखी। उन्होंने देखा कि जो राक्षस ग्रामवासियों के सम्मुख सवशक्तिमान थे जिनके सम्मुख कोई सिर नहीं उठा सकता था वे मात्र पांच शस्त्रधारियों के सम्मुख नहीं टिके। बिना युद्ध किए भाग गए। और फिर तुम्हारे का भी उन्होंने देखा, जो हम में से ही एक पस कामल युवक कुम्हार का दृढ़-मुद्र का ग्राहक नहीं कर सका। गाव में य सारी

सूचनाएँ पढ़ची और हम म स बनक के मन म गचिन तुमरण और राक्षसों का आतक नष्ट हो गया और

और तुम लागी वो प्रात भेमण की गूभी' लक्ष्मण मुमकराए।

वह तो गूभी ही। भिगुर हम रहा या। उसन अपने साथ छत्र युवक को उसकी भुजा से पकड़कर आग लिया यह है धातुक्मी। हमन अपनी लोह की एक छत्र से तुमरण पर प्रहार किया। उसके खड्ग का अपनी छड़ पर सटा और तुमरण को यम के घर पहुँचा दिया। फिर क्या था सार गाव म विप्लव हो गया।

साधु! मित्र! राम लोग क्यों सीमित! यह तो तजस्वी पुरुष है।

अवश्य। लक्ष्मण की आवाज म प्रणसा का भाव था, इसे अब धातुक्मी से शस्त्रधार बन जाना चाहिए।

तुम टीका कह रहे हो।'

बिंतु अज राक्षस कहा गए?' सीता न पूछा।

वे लोग भी तो कुत्त व गमान दुम दबाए हुए गाव म आए थे।' धातुक्मी बोला गाव का विप्लव देखकर उसी प्रकार दुम दबाए हुए बन की ओर भाग गए।

वे लोग अपने मित्र राक्षसा व पास सहायता के लिए गए होंगे उदधोप वाला वे अवश्य लौटकर गाव म आएंगे और फिर पहन से भी अधिक अत्याचार करेंगे।

इसीलिए तो हम सब आपन पास आए है। भिगुर उत्साह के साथ वाला अब हमारे मन म से राक्षसों का भय समाप्त हो गया है। वे लौटेंगे तो हम प्रतिरोध करेंगे। उसके लिए आवश्यक है कि आप हम शस्त्र और शस्त्र शिक्षा दें। हम उनसे युद्ध कर उन्हें भगा दें अथवा मार डालेंगे।'

'आपका प्रस्ताव श्लाघ्य है जाय भिगुर। राम वाले और यही राक्षस समस्या का समाधान भी है। जय लोग को सशस्त्र होना भी चाहिए। इस नयी नयी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आप लोगों की सैनिक शिक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। इन सारे कामों के लिए हम पूरी तरह

स आपकी सहायता करेगा। किंतु उमके साथ एन अन्ध मोर्चे पर भी आप लोगों का उटना होगा। आपका अपने गांव में मानव ममता पर आधन समान अधिकारों वाला समाज बनाया होगा जिसमें उत्पादन के साधनों पर सत्ता समान अधिकार हो। नये समाज की नयी नतिकता स्थापित करनी होगी, अ यथा आपके अपने ग्रामवासियों में से ही गलत व्यवस्था के कारण अनेक राक्षस जन्म लेंगे जो आज आपके मित्र हैं वे कल आपके स्वामी बन जाएंगे। अतः आपका प्रशिक्षण लवा है

ता ?”

झोड के चेहरा पर अनक आश्चर्य था।

तो आप सबका इस आश्रम में रहना व्यावहारिक नहीं है। अब, जब आप अपने गांव के स्वामी स्वयं हैं इस आश्रम में नया ग्राम बनाने की आवश्यकता नहीं है। हमारे पास जितने शस्त्र हैं वे आप सबके लिए पर्याप्त भी नहीं हैं। अतः आपको अपने शस्त्रों का निर्माण भी स्वयं ही करना होगा। आप लोग अपने गांव में लौट जाएं। उत्पाद आपके साथ जाएंगे और शस्त्र निर्माण की व्यवस्था करेंगे। शस्त्रों के कह अनुसार आपके मित्र धातुकर्मी अब शस्त्रकार बनें। वे तथा उनके सहयोगी आपकी धातुओं का शस्त्रों में ढाल देंगे। प्रशिक्षण सहायता निरीक्षण तथा निर्देशन के लिए सौमित्र प्रतिदिन आपके गांव जाएंगे। मित्रों के प्रशिक्षण के लिए आवश्यकतानुसार सीता भी जाएगी। मुखर भी आवश्यकता पड़ने पर जाएंगे और इसके पश्चात् भी आवश्यकता है तो यह आश्रम अपना है—मैं आपकी सहायता के लिए प्रस्तुत हूँ।

राम मौन हो गए। कुछ क्षणों के लिए झोड पर, चमगादड़ के समान अनिश्चय आ टगा, किंतु धीरे धीरे वायुमंडल की छल के समान वह भूमि पर बैठ गया।

ठाक है। उद्गोष न कहा मैं जाऊंगा।

कोई अमुविधा तो नहीं बघुआ ?” राम न पूछा।

“नहीं। आप ठीक कह रहे हैं।” भिगुर बोला हमारा अपने घरों में अपने परिवारों के साथ रहना अधिक सुविधाजनक है। अब लौटिए न। सुमेधा की माँ हमें घर पर फिर मरे साथ नहीं आती।”

चलो मित्रा ! " घातुकर्मों बोला चलो गाव की आर ।

उन लोगो ने हाथ जोड़कर, नमस्कार किया और लौट चल ।

‘जा रही हो सुमधा ?’ सीता बोली ।

हा दीदी ! ‘सुमेधा मुसकराई ‘अबता उदघोष भी गाव लौट रहा है । तुम कब आओगी हमारे गाव दीदी ?’

तरे विवाह पर ।’

घत ! सुमेधा ठिठक्कर खड़ी हो गयी पर फिर गतिमान हो उठी, अब तो मैं प्रतिदिन आऊंगी दीदी ! प्रतिदिन !’

वह भी भीड़ के पीछे भाग गयी ।

सध्या ममय भोजन करने बठे, तो सब न ध्यान लिया कि मुखर अतिरिक्त रूप से चुप था । वह जैसे अपने भीतर किसी उधेड़ बुन में लगा हुआ था ।

क्या बात है मुखर ?’ सीता ने उसे टोका आज भोजन में ध्यान नहीं है । सुमधा और उदघोष के विवाह से तुम्ह अपनी कोई सुमेधा तो याद नहीं आ गयी ?’

नहीं, दादी ! छत्तनी में छने प्रकाश के समान गभीरता में से मुखर की ममकान उभरी, मेरी कोई सुमधा नहीं है । हा मुझे अपना कुटुम्ब याद आ गया ।

राम मुखर के चेहरे की रेखाओं का पटने का प्रयत्न कर रहे थे कुटुम्ब याद आ जाए तो कोई बुराई नहीं, मुखर ! किंतु तुम्हारी याद पीढायुक्त है । इसलिए उसका कारण की चिंता हम भी हाती है ।’

मुखर तनिक खुलकर मुसकराया चिंता की कोई बात नहीं आय । तुमरण की मृत्यु और उदघोष के ग्राम-वधूओं की मुक्ति से मुझमें कुछ अतिरिक्त उत्साह जागा है । मुझे लगता है कि मैं भी अपने गाव लौटकर उसे मुक्त कराऊँ और अपने कुटुम्ब का प्रतिशाध लू ।

लक्ष्मण खुलकर हसे बहुत अच्छे मुखर ! उदघोष का ग्राम ही मुक्त नहीं हुआ तुम्हारा मन भी मुक्त हो गया ।’

राम गभीर ही रहे यह तो प्रसन्नता का विषय है मुखर ! किंतु तुम्हें जान की अनुमति देने से पूर्व हम अनेक बातों पर सोच विचार कर

बना चाहिए ।’

‘किन बातों पर राम ?’

घातुकर्मी के प्रहार से तुभरण की मृत्यु हो गयी तो ग्रामवासी उत्साहित हो उठे और रामसे भयभीत होकर भाग गए । किंतु यदि उस प्रकार से तुभरण बच जाता और उसके छडग के प्रहार से घातुकर्मी मारा जाता तो क्या स्थिति होती ?”

रामसे अधिक क्रूर हो उठत ।” मुखर सिंह उठा ग्रामवासियों का तज पूणत नष्ट हो जाता । इस क्षेत्र में फिर कोई राक्षसों के विरोध का साहस न करता ।

इन परिणामों की कभी उपेक्षा मत करना मुखर । राम सहज हो गए, ‘तुम एकाकी जाकर खर और दूषण के सैनिकों से टकरा जाओगे ता तुम्हारी निश्चित मृत्यु है, और उसका प्रभाव राक्षसों के आत्मबल को बढ़ाने में सहायक होगा । ऐसा कोई काम मत करना मेरे मित्र । ऐसा बनिष्ठान पाप है जिससे अत्याचारिया का आत्मबल बढ़े । उससे तो कहीं अच्छा है कि तुम ऋषियों के समान राक्षसों के प्रतिरोध में, जन सामान्य में आश्रय जगाने के लिए सावजनिक ढंग से आत्मदाह कर लो ।”

‘नहीं, राम । मैं केवल बलिदान नहीं चाहता, मैं तो प्रतिशोध चाहता हूँ । मुखर बाला मेरे मरने का क्या लाभ यदि राक्षसों की सैनिक-शक्ति भी न हो ।’

तो मित्र । अपने आपको तैयार करो । सारे पीड़ितों को तैयार करो ।’ राम ने सहाम कहा ‘अबेला बलिदान कुछ नहीं करेगा ।’ गुरु कर्मों के लिए जागरण संगठन और बलिदान—तीनों की आवश्यकता होती है । नहीं तो, मैं भी कब से जा रावण से टकराया होता और छोटे मोटे तुभरणा का स्वतः समाप्ति हो जाती । किंतु अभी संगठन नहीं है अतः रावण से टकराना मूर्खता होगी । यह मत समझना कि मैं इक्क-दुक्क बलिदान का महत्त्व नहीं मानता । उनका महत्त्व अपने स्थान पर है । उद्धोष के ग्राम की घटना के समान विस्फोट का भी अपना महत्त्व है । ऐसे विस्फोट असफल भी हो जाए तो खाद का काम तो करते ही हैं । किंतु उन विस्फोटों के पीछे पूर्व-योजना नहीं होती—वह तो प्राकृतिक प्रक्रिया है । तुम्हारा

प्रयास उससे भिन्न होगा।”

मुखर की आकृति पर सहमति का भाव था टाक कहत हैं आय।”

भोजन के पश्चात् सब लोग अपने-अपने कार्यों में लग गए। किंतु राम के मन में मुखर से हुई बातचीत अनेक नये प्रश्न जगा गयी थी।

पहले भी उनके मन ने सिद्धाश्रम और कालकाचाय के आश्रम की तुलना की थी। आज फिर कालकाचाय का बिबबार बार उनका मन में उभर रहा था। वे मुखर और उत्थोष से अज्ञान ही उनकी तुलना कर रहे थे। राम को अपने आश्रम में आया देखकर हर बार कालकाचाय के द्वंद्व में अस्मत् हाँ जाते थे। उनमें उत्साह कम और सवाच अधिक होता था। जस वे राम को उस आग के समान मानते थे जो दूर रहकर प्रकाश तो देती है किंतु निकट जाँच पर ताप भी देती है। उनकी सावधानी ध्यान दान योग्य थी। खुनकर न तो कभी उहान गम का स्वागत किया था न उन्हें अपने आश्रम पर निमंत्रित किया था। राम को सदा लगा कि वे ऐसे भीरु सज्जन हैं जो यह तो जानते हैं कि गोपक कौन है वे यह चाहते भी हैं कि कोई उस शोषक का जत कर दे, किंतु यह नहीं चाहत कि उनका अपना नाम कही बीच में आए। वे उस धन के प्रतिनिधि थे जो अपनी समस्त सद्भावनाओं और योग्य बुद्धि के बावजूद दुष्ट का साधन करने के लिए साहस नहीं जुटा पाता है जो सधपस में स्वयं को बचाए रखना चाहता है जो अपना नामन बचाकर शक्ति की आकांक्षा करता है। पर वह शत्रु नहीं है। उस दंग से भी निरंतर सपक बनाए रखना होगा उसका आत्मबल का जगान का प्रयत्न करत रहना होगा। शायद उनका आत्मबल जाग न भी जाग

और फिर मुखर के समान राम को भी अपने कुटुंब का ध्यान हाँ आया। अभी तक अयोध्या में भरत के प्रस्थान का समाचार नहीं था। वहाँ क्या घटित हो रहा था—या कुछ भी घटित नहीं हो रहा था? संभवतः वहाँ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था जिसकी सूचना उस दिन तक तुरंत पहुँचाई जाती। नहीं तो कोई-न कोई उन तक अवश्य पत्रचना। किंतु जब तक निश्चित समाचार मिल नहीं जाना तब तक राम आग नहीं बर सकत। उन्हें यही रुकना होगा।

रात गए बनी देर तक राम भविष्य के विषय में सोचत रहे।

कुटिया के द्वार पर एक पड़ की छाया में सीता छोटा मोटा घरेलू काम निय बठी थी। उनके पास ही बठी सुमेधा तक्ली पर सूत कात रही थी। बीच बीच में बात भी हो जाती थी और फिर दोनों का ध्यान अपने-अपने काम की ओर चला जाता था।

बापहर तक का अपना काम समाप्त कर सुमेधा हाथा को उलभाए रखन का कोई काम लेकर प्रायः सीता के पास आ बैठती और वन-ग्राम के अनेक समाचार दे जाती। उदघाप बहुत व्यस्त था—कभी शम्भु-निमाण कभी प्रणिक्षण कभी अभ्यास कभी खेतों में काम कभी गांव के बाजार में कभी भूति निमाण कभी कुम्भ सुमेधा भी अपने ढंग से व्यस्त था किंतु अपनी सारी व्यस्तता में भी सीता के पास जाने का समय वह निराल ही लता, सिवाय उन दिनों के जिन दिनों सीता का उनके ग्राम जाना होता था।

इस तरह भी बापू व्यस्त ही रहता था। वन में इधर कद मूल फल अथवा अहर का लाना तो निरन्तर ही, कुटीरा को दंड करन बाड़े की मरम्मत तथा अन्य कामों के लिए लकड़ी की अनिरिक्त आवश्यकता भी रहती थी। अनेक कारणों से वन के विभिन्न आश्रमा तथा अनेक ग्रामों में भी जाना पड़ता था। सम-वयस्क युवकों से उनका संपर्क स्थापित हो गया था। उनके प्रभाव-क्षेत्र में आश्रमों के ब्रह्मचारी भी थे और ग्रामवासी

युवक भी। लक्ष्मण उनके नेता बन उन्हें शस्त्रों का अभ्यास कराया करते थे। दोपहर के भोजन के पश्चात् प्रायः लक्ष्मण इसी शिक्षण के लिए चले जाया करते थे।

राम ने सीता का शस्त्राभ्यास करा दिया था—मुखर को सक्षम बना दिया था और अब सुमेधा भी दोपहर को सीता के पास आ जाती थी। उमन उदघोष से थोड़ा-बहुत शस्त्र-परिचालन भी सीख लिया था। राम भी अपने परिवेश पर नज़रपात करने के लिए चल जाया करते थे।

किंतु अपने आश्रम से अधिक दूर वे नहीं जाते थे। सीता एक सीमा तक ही अपनी सहायता कर सकती थी। आवश्यकता होने पर सहायता के लिए मुखर भी बहा था, किंतु शस्त्रागार अपनी रसा में स्वयं सक्षम नहीं था। राम जयवा लक्ष्मण म से एक का आश्रम के समीप ही वहीं बने रहना आवश्यक था।

जाज भी सुमेधा को, सीता के पास आया देख, व थोड़ी देर के लिए कालकाचाय से मिलन चल गए थे।

सहसा सीता ने आश्रम के बाड़े के फाटक के खुलने का शब्द सुना। उन्होंने विस्मय से गदन घुमाकर उस आर देखा—इतनी जल्दी तो न राम के आने की आशा थी न लक्ष्मण की।

आगतुक कोई अन्य ही था—सीता के लिए पूणत अपरिचित। आरंभिक दिना में इस प्रकार किसी अपरिचित को समीप आत देखकर सीता बुरी तरह चौंक उठती थी। किंतु अब कुछ कुछ अभ्यास हो गया था। इस वन में भी घोज खोज कर दूर और पास के गेग, राम को मित्र के लिए आते थे। राम थे ही ऐसे—किसी भी व्यक्ति के लिए सहज सुनभ खुन तथा ईमानदार। कोई भी व्यक्ति आकर उनसे अपनी समस्याएँ कह परामश और यदि आवश्यक हो तो सहायता प्राप्त कर सकता था।

कदाचित् आगतुक भी कोई ऐसा ही व्यक्ति रहा होगा।

आगतुक स्थिर पगा से अब सीता और सुमेधा की आर बट रहा था। सीता ने देखा—वह कोई स्थानीय व्यक्ति नहीं लगता था। वह ऊँचा लंबा और स्वस्थ युवक था। वय चालीस-बयालीस के आस पास रहा होगा।

रग उमका गोरा था, सिर पर लव-लव पीत केश थे। आखें कुछ नीली थी और उसन राजसी बेगमूपा धारण कर रखी थी। सीता के चान के अनुसार इस पुरुष की उत्तर कुरु के उस पार का वामी होना चाहिए था। इतनी दूर से यह राजपुरुष यहाँ क्या करने आया है ?

वह सीता तथा सुमेधा से उचित दूरी बनाए शिष्ट भाव से खड़ा हो गया 'क्या आप राम का आश्रम यही है ?'

उसका स्वर सुनकर सीता चौंक उठी। कसा ककश स्वर था इस पुरुष का—एकदम बर्नल कौव का—मा। और आखें भी तो बसी ही थी—छोटी-छांगी लीखी जीम गाल। कौआ एकदम कौआ—सीता न सोचा—मनुष्य के शरीर म कौवे की आरमा। उसके शब्द पर्याप्त शिष्ट थे, किंतु उसके चेहरे का भाव वैसा नहीं था

सुमेधा उसे देखकर अपन आप म सिमट गया।

सीता न अपन आश्रमवन का आह्वान कर निर्भीक स्वर म कहा, आप ठीक स्थान पर आए हैं किंतु राम इस समय आश्रम म उपस्थित नहीं हैं।'

आप लक्ष्मण ?

वे भी कही गए हुए हैं।' सीता बोली आप अतिथिशाला म ठहरें वे लोग गीघ्र हो आ आएंगे।

आगतुव के चेहरे की रही-मही शिष्टता भी धुन गयी। उसके मन के भाव निरावत होकर उमके चेहर पर प्रकट हुए।

राम से मुझे कोई काम नहीं है। मैं तो तुम्हारे लिए ही आया हूँ तुमसे।

सुमेधा आशका म पीनी पड़ गयी।

सीता ने साहज नहीं छाँका, कौन है तू अमर ? तू नहीं जानता राम और सीमित्र की तनिक-सी भी मूषना मिन गयी तो तेरा मुँह रुट रुट स पूषक हा धरती पर सोट जाणगा।'

पर आगतुव जम कुछ भी नहीं मुन रहा था।

सुमेधा। सीता धीरे स बानी धरग ला। मैं इस दुष्ट को देखती हूँ।

मुमेधा गस्नागार के भीतर घस गयी।

आगतुक ने उस देखा। कुछ मोचकर मुसकराया 'तुम्हारी सखा समझदार है सीता। वह जानती है वह कब जोर कहा अवाधित है।

वह सधे पगा से आग बट रहा था।

'तुम्हारी बुद्धि की बचिहारी। किंतु तुम एक जाआ। सीता ने आदेश दिया 'नहीं तो तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ जाएगा कि तुम कब जोर कहा अवाधित हो।

'शुभ लक्षणे।' आगतुक के चेहर पर बीभत्स मुसकान उभरी 'अपने विषय में मैं अच्छी तरह जानता हूँ, तुम्हें ही अपना मूल्य पता नहीं। तुम्हें क्या मालूम मैंने ससार में कहा कहा तुम्हारे रूप की चर्चा सुनी है, और मैं कितनी दूर से तुम्हें पान के लिए आया हूँ।'

मीन हो दुष्ट। सीता के भरपूर हाथ का चाटा आगतुक के मुख पर पड़ा।

क्षण भर के लिए आगतुक हतप्रभ रह गया वह इस प्रकार के प्रहार के लिए तयार नहीं था। किंतु दूसरे ही क्षण वह सीता पर झपट पड़ा। उसने सीता को अपनी भजाआ में बाँध लिया था। उसकी जकड़ में निरपाय सीता छूटने के लिए तटप रही थी।

तभी मुमेधा ने पीछे से आगतुक की पीठ में खड्ग अड़ा दिया।

सीता उसकी पकड़ में से निकल गयी। वह पीछे की ओर पलटा।

तब तक सीता मुमेधा से दूसरा खड्ग ले चुकी थी और वह प्रहार के लिए मननद्ध थी।

आगतुक ने भी अपना लंबा खण्ड काप से निकाल लिया।

'सीता। समझ कर दो जयवा प्राणों से आआगा। वह अलग त क्रूर निखाइ पन रहा था।

'दुष्ट। तू भी देख जिसके प्राण पखी को भारी हो रहे हैं। सीता बोली 'मुमेधा। मुखर का बुला ला।'

तभी लौटकर राम बाड़े के फाटक पर पहुँच। वह कालकाचाय से हुई दातचीत पर विचार करते हुए आत्मनीन-से चने आ रहे थे। अभ्यस्त हाथ बाँचे का फाटक खोलने के लिए आगे बढ़े तो ध्यान आया कि फाटक तो

सूना है। दृष्टि उठाकर देखा तो चौंक उठे—मुमगा भागी हुई, वदाचित्त मुन्धर की कुटिया की ओर जा रही थी। सीता खडग लिय हुए द्वन्द्व-युद्ध के लिए तत्पर थी और एक राजमी पुष्प गंगा खडग लिय सीता पर प्रहार करने जा रहा था।

राम की शिराजी का रक्त एकदम उपन पड़ा—कौन है यह दुस्माहमी राज पुष्प! वह उनकी पत्नी पर प्रहार करने जा रहा था। सीता कितनी ही साहसी और मक्षम क्या न हा, वदाचित्त एक दश और अभ्यस्त थोड़ा का सामना अभी नहीं कर सकती। राम का तनिक भी झिलव हो गया होता तो महा कोई दुधटना घट गयी होती। तुमरण व वध व बाद में राम जैसे आगका रहिन हा गये थे किंतु मह स्थान उतना सुरक्षित नहीं था।

राम अपना खडग तग्न कर भपटे और बूझकर सीता और उस पुष्प व मध्य जा खड़े हुए। सीता और आगतुक दानो ही चौंक पड़े।

सीता का सारा भय और ममस्त आगाराए क्षणाश में विलुप्त हो गयीं। उनका राम आ गये और राम समार व किसी भी यादों को दृढ़ की चुनीती द सकत थे।

व महज और शांत हो गयी।

सीता न देखा राम का क्षाम भी समाप्त हा चुका था। जात्म-विश्वासी राम निश्चित मुद्रा में खडग लिय खड़े थे जम उनके सामने खगधारी थोड़ा न हा, कोई चूहा खा हो चूहा नहीं कीया। साधारण कीया, जिस तुष्काकर डराकर भगा दिया जाए।

आगतुक राम का देखकर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ था। अपने दुष्कृत्य व लिए वह रचमान भी सज्जित नहीं था। उसने अपनी ओर से राम पर जोरदार आक्रमण किया। पर राम उससे जस खडग युद्ध नहीं कर रहे थे, खेन कर रहे थे। उन्होंने खडग को लाठी के समान जोर से चलाया। आगतुक का खग उसके हाथ से निकल हवा में उड़ता हुआ दूर जा गिरा।

यह ता एकदम ही कीया निकला। किसी को अनावधान पाकर भपट पड़ने में ही उसका बल था। सीता मुमकरा पड़ी।

आगतुक राम का सामर्थ्य पहचान भय में पीला पड़ गया। वह उलट-

कर भागा

राम ने खट्ग से प्रहार नहीं किया। लपककर उसका भाग में टांग अड़ा दी। आगतुक घड़ाम से पथ्वी पर आ गिरा।

राम ने आग बत्कर उसका कंठ पर अपना पर जमा दिया।

सीता 'आओ इसकी बीरता देखो।' उ हाने पुकारा।

तब तक मुखर भी हाथ में धनुष बाण लिये मुमघा के साथ भागता हुआ आ पहुँचा। राम को आगतुक के कंठ पर पग धरे देख के दोनों ही सहज हो गये और तजी से चलते हुए पास आकर गहुर गये।

सीता राम के पास पहुँच गयी थी।

राम अपना पग त्रमश दया रहे थ।

आगतुक के चहरे पर भय की स्थिति पर अब शांति थी। उसकी आँखें पाँडा और अपमान से लाल हो रही थीं। तुम मुझे जानते नहीं हो राम। तभी यह दुस्साहस कर रहे हो। मैं तुम्हें दंड दितवाऊंगा।'

'अच्छा।' इस क्षण में चौर भी दंड लिखाने की धमकी देत हैं।' राम मुसकराए। तुम्हें लज्जा तो तनिक भी नहीं आयी दुष्ट। कोई बिगैय चीज नगल हो। किससे दंड दितवाओगे ?

ब्रह्मा से।' आगतुक के चहरे पर दुश्चरित्र समृद्धि खुल खिली थी।

राम मुसकराए। ब्रह्मा का भय लिखा रहे हा भद्र पुरुष। क्या ब्रह्मा तुम जैसे दुष्टों की रक्षा करने फिरते हैं ? फिर तो मुझे लगता है कि किसी दिन मुझे स्वयं ब्रह्मा से भी निवटना पड़ेगा।'

उन्होंने अपना पर कुछ और दबाया।

जानते हो।' आगतुक पीछा जोर क्रोध के मिश्रित स्वर में बोला 'तुम जा मेरा अपमान कर रहे हो उससे लिए तुम्हें कभी क्षमा नहीं किया जाएगा। तुम्हें क्याचित मालूम नहीं कि मैं इंद्र का पुत्र जयत हूँ।

इंद्र का पुत्र।' राम को स्मृति के सारे सतु एक साथ ही भनभना उठे। तुम बाप-बेटा एक ही नाम करत फिरते हो दुष्टों। मेरे मन से अहत्या पर हुए अत्याचार की छाया अभी मिटी नहीं और तुम आ गये। दुष्ट सत्ताधारी के सपने विलासी पुत्र। मैंने इंद्र को सम्मुख पाकर उसकी हत्या का प्रण किया था—वह तो मेरे सामने नहीं आया। आज तुम जाय

हा। बोलो, तुम्हें क्या दंड दिया जाए ?'

राम का खड्ग जयत के वक्ष पर जा लगा।

जयत को पसीना आ गया। उसका स्वर काप गया, पर वह अपना संपूर्ण साहस बटोरकर निभयता का अभिनय करता हुआ बोला, 'तुम ब्रह्मा से नहीं डरते ? तुम इन्द्र से नहीं डरते ?'

'मैं किसी दुष्ट अथवा दुष्टता के संरक्षक से नहीं डरता।' राम बोले, 'मैं ऐसे लोगों से घणा करता हूँ। बड़े बड़े नाम लेकर मुझे मत डराओ। मत्ताधारियों और उनके पुत्रों के अत्याचारों की कथा सुनकर मेरे मन में घणा की आग घघकन लगती है। मैं दुष्टता का समूल नाश करने की वचनबद्ध हूँ—चाहे वे दुष्ट कितने ही सबल सत्तामय अथवा धनवान हों।'

राम के पाव का दबाव सन्तप्त जा रहा था और खड्ग की नोक जयत को बुरी तरह चुभने लगी थी। उसका निभयता का अभिनय चल नहीं पाया। उसने चेहरे का साहस, राम की अडिगता का ताप पाकर हिम के समान गल गया।

उसके चेहरे पर दीनता आ गयी। स्वर घिघियाते लगा मुझे क्षमा करो, राम ! मैं तुम्हारे चरण छूकर तुमसे जीवन की भीख मांगता हूँ।

उसने दोनों हाथों से राम का पाव पकड़ लिया। आँखों से अश्रु बहने लग और होठ रोने के लिए फल गये।

राम ने अपना पैर उससे बच साँझा लिया, 'इतने ही वीर थे तुम इन्द्र-पुत्र जयत ! सीता पर प्रहार करते हुए कदाचित् तुम्हें अपना कीमल बच पाद नहीं रहा।'।

'मुझे क्षमा करो, राम !' जयत ने भूमि से उठकर राम के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मुझे प्राणों की भीख दो। मुझे अभय दान दो।

'थोड़ी देर पहले तो तू देवी सीता की शरण में आया था दुष्ट !' सुमेधा ने धृणा से पथ्वी पर धूँक दिया।

राम मुसकराए, 'मनुष्य मेरे आदेशों में बाधने की कुटिलता मत करो, पापी पिता के पापी पुत्र ! शत्रिय शरण में आय व्यक्ति की रक्षा अवश्य

करता है किंतु मैं तुम जस नीच का शरण याचना को एक पडयन मानता हूँ। अभय नहीं दूंगा चाह प्राणान्न द द। दड तुम्ह अवश्य मिनेगा। मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूंगा पर जग भग अवश्य कहूंगा।'

जग भग ! ' जयत की घिग्घी बघ गयी।

हा ! अग भग ! ' राम बाल सीता पर दुष्ट दण्डि डालन के कारण तुम्हारी एक आख फोट दू अववा प्रहार करने के कारण एक हाथ काट डालू ? '

मुझे लमा करा राम ! ' जयत रोता हुआ राम के चरणों से लिपट गया मैं पिताजी स कहकर तुम जो चाहोग दिलवा दूंगा—रान धन '

विलव मत करो। राम बाल, मेरी बात का उत्तर दो। विलव तुम्हारे लिए हितकर नहीं होगा। लक्ष्मण आ गया ना मर निषेध पर भी व तुम्हारी हत्या कर डालेंगे।

लक्ष्मण ! जयत क्षण भर के लिए जड़हा गया पर फिर जम जाग कर रोता हुआ बाता मरा हाथ मत काटो। मरा हाथ मत

ता ल ! ' राम ने अपने तूणीर म से तीमे फन्क का एक धाण निकाला।

जयत ने मुख ऊपर उठाकर राम की ओर दखा ही था कि चीख मार कर पथ्थी पर उलट गया। वह जान ही नहीं पाया कि राम ने किस कोशल म धाण के फन्क से उसकी बायो आख बोध दी थी।

घते जाओ ! ' राम ने आदेश दिया।

जयत सरपट भागता हुआ आश्रम की सीमा से निकल गया।

राम ने मुड़कर सीता को दखा। सीता के कंधे स बहता हुआ रक्त उनके वक्ष पर आ गया था।

सीत ! यह क्या है प्रिय ?

सीता ने लापरवाही स बधा भन्क दिया कौआ चाब मार गया।'

राम के मन म जयन का वक्श स्वर तथा छाटो गोल तीखी आखें बौध गयी। वे हस पडे ठीक कहती हा प्रिय ! ' व मुडे सुमधा ! सीता क धाव का उपचार कर दो रेवि ! और मुखर ! तुम जाओ मित्र ! अब कोई आगका नहीं।

पात्रक की दब करने की ध्वनि सुनकर राम मुड़े। लक्ष्मण कंधे पर धनुष टांगे मस्त से कुछ गुनगुनाते चले आ रहे थे। उनके साथ चेतन तथा वाल्मीकि आश्रम के दो ब्रह्मचारी और थे।

यहां कुछ हुआ है, भैया ?' उन्होंने सब लोगों पर जिनासापूण दृष्टि डाली।

'कुछ विशेष नहीं। एक घूँट कीआ आया था। हुश्वार भगा गया।' राम मुसकराए और तुम सुनाओ, चेतन ! क्या समाचार लाए ?'

चेतन झुमकराया 'आय ! यह न मान लें कि मैं केवल समाचार ही लाता हूँ, कभी कभी वैसे भी आपसे मिलन की इच्छा होती है।'

किंतु आज मैं समाचार लेकर ही आया हूँ।' लक्ष्मण बोले। 'ओ !'

क्या समाचार है ?' राम ने पूछा।

'भरत अयोध्या से चले चुके हैं। मदेशवाहक के चलने तक व शृगवरपुर तक पहुंच चुके थे और निषादराज गुह के अतिथि थे। उनके साथ अयोध्या की सेना के साथ साथ भत्री-मडल राजगुरु तथा आपकी चारों माताएं भी आ रही हैं। अगले दिन उनके साथ गुह भी अपनी सेना समेत प्रस्थान करने वाले थे।'

समाचार तो बुरा नहीं। राम बोले, 'यदि माताएं भत्री मडल, राजगुरु तथा गुह भी साथ हैं तो भरत का प्रयाजन सैनिक अभियान नहीं हो सकता।'

पर भैया यह न भूलें कि भरत बकसी का पुत्र है।' लक्ष्मण का स्वर नागा था।

राम मुसकराए यह बात भी मेरे ध्यान में है।

किंतु राम ! चेतन बोला 'ऋषि भरद्वाज और कुनपति वाल्मीकि दूमरी आश्रम में पीड़ित हैं।

वह क्या ?' सीता ने पूछा।

यदि भरत सबमुच मनाने आ रहे हों और राम भाई की बात मानकर लौटेंगे ?'

राम हस पड़े ऋषि से कह देना आग का मुक्त हो जाए ।'

सीता अपनी कुटिया से निरलकर टीले की ढाल की ओर आयी ।'

पूरी ढाल हरी भरी हो गयी थी । पिछन कई महीना के कठिन परिश्रम से यह भूमि गंतो में बदली जा चुकी थी । गंत भी कैसे जस समतल भूमि को उठाकर खड़ा कर दिया गया ही । सीता ने अपने हाथों से इस ढाल का खादा-नोटा था मन्दाकिनी से पानी आनाकर उस सींचा था । पटल ता पानी वहीं टहरता ही वहीं था मन्दाकिनी की धारा में पुन मिनन के लिए किसी बिस्ती के समान भागता चला जाता था । सीता ने बड़े धैर्य और परिश्रम से क्यारिया बनायी थी और पानी का रोखने का प्रबंध किया था । समय मिलने पर राम और लक्ष्मण भी उनकी सहायता कर लिया करते थे । मुखर तथा मुग्ध भी यथामभव महेयोग किया करते थे । शिंतु मूल रूप से यह सीता का ही कार्य था ।

सीता ने अपने परिश्रम के फल फल का बड़ी सृष्टि से देखा, किंतु एक आश्चर्य भी था उनके मन में । जाने चिगकूट की मिट्टी में कोई ऐसी बात थी या मन्दाकिनी के जल में ही कोई ऐसी विरोधता थी—फलने को तो सब कुछ फलता था किंतु जिस वन के साथ वन फलता था न कोई अथ मन्जी फलती थी न फल न फूल ।

क्या बात है, सीता ? राम जाकर उनके साथ खड़े हो गए अपना वन-परावार देख रही हो ।

सीता मुसकराई 'यहां ती स्थिति यह है कि आम के वन पर भी वन ही फलेंगे ।'

फिर सीता पर अधिक परिश्रम क्या करना ।" राम मुसकराए 'आओ तनिक नाव सेने का अभ्यास हो जाए ।'

राम नीचे उतरते चले गये जाकर मन्दाकिनी के तट पर रहे । खड़े में वही नाव उठाने खोजती और सीता की प्रतीक्षा करने लगे ।

सीता का शस्त्राभ्यास काफी आगे बढ़ गया था । राम नये-नये शस्त्रों के साथ अथ प्रकार के शारीरिक व्यायाम भी जोड़ते जा रहे थे । तरन और नाव चलाने का साधारण ज्ञान सीता को पहले से ही था किंतु राम

अब उह अकन वही नौका मेन उसकी गति बढान किसी भागती हुई नाव का पीछा करन इत्यादि का अभ्यास करा रहे थे ।

सीता नाव म बठी ती राम ने चप्पू उह धमा दिए चलाओ ।

सीता ने चप्पू थाम लिये । नाव चल पडी ।

‘आप नौका प्रशिक्षण पर इतना बल दत है ।’ सीता बोली पश्चात्-रोहण इत्यादि का भी तो अभ्यास करना चाहिए । पिछल मप्ताह जब वषा म भीगत चट्टानो पर फिमलत हम चित्रकूट की विभिन्न चोटिया पर घूमन फिरे थे ता कितना जान द जाया था ।’

नौका प्रशिक्षण आनन्द के लिए नहीं है बरि ।’ राम मुसकराए शत्रु स वचन के त्रिण किमी अत्यत बीहड स्थिति म निकन भागन के लिए सुम्हारे पास एक ही भाग है—मदाकिनी । तुम्ह इंसस पूरी तरह परिचित हाना चाहिए ।

आपका जगता है कि हम अब भी यहा सुरक्षित नहीं है ?’ सीता ने राम को आश्चर्य मे देखा हम यहा आए दस मास हा चुके हैं । मुझे ता आस-पाम शांति लगती है । कभी-कभार जयत जैसा कोई दुष्ट आ जाए ।’

भली कही जयत की ’ राम मुसकराए उसके परिवारकी ती पीठिया स यही परंपरा है । पर मैं दम्य रहा हू कि यहा नित नये रावण, इन्द्र और जयत पत्ता हो रहे हैं । मैंने सुना है कि जयत कई दिना से इस क्षेत्र म घूम रहा था और विभिन्न आश्रमो और ग्रामो म दुष्टता दिखाने का प्रयत्न कर चुका था ।’

हा । आज सुमश्र भी कुछ ऐसे ही समाचार लायी थी ।

‘पर मैं कुछ और ही सोच रहा हू सीते ।’ राम गभीर हो गय भरत मर्मे म आ रहा है । कह नहीं सकता कट किस करवट बैठेगा । मभावना कम दीगती है पर यदि भरत के मन म खाट हुआ ती हम उसका तो सामना करना ही हागा यहा व दमित रागस भी हमारे विरुद्ध उठ सके हाने । इन समय मरा समस्त ध्यान उम आर मणा हुआ है । जाने क्या हा । भरत क्या कर जोर जननी प्रतिनिधा यहा क्या हा

आप ठीक कहत है राम । सीता दूर गितित्र को देख रही थी ‘हम प्रत्येक स्थिति म त्रिण तैयार रहना चाहिए ।’

सध्या का झुटपुटा क्रमशः गहराता जा रहा था। मारा वन प्रातः शांत होता जा रहा था। आश्रमा से बाहर गये हुए लोग आश्रमों में लौटत आ रहे थे। थोड़ी देर में पूर्ण अधिकार होते ही वन में पूर्ण शांति भी हाजिर होगी। आश्रमों के बाड़ों के फाटक बंद हो जाएंगे और लोग अपनी कुत्रियों में दीपक के निकट अथवा कुटियों के द्वार पर अग्नि के पास बैठ होंगे।

ब्रह्मचारी अश्विन तजी से पग बटाता हुआ अपने आश्रम की ओर चला जा रहा था। आज वन में विलंब हो गया था। कहीं ऐसा न हो कि वह वन प्रातर में ही हो और पहले ही बाड़ का फाटक बंद हो जाए। एक बार फाटक बंद हो जाए तो उसे खुलवाने में पर्याप्त कठिनाई हो जानी है। भीतर बाल लोग जब तक कोई ऐसा प्रमाण प्राप्त नहीं कर लेते कि आगतुक आश्रमवासी ही है अथवा उसके बहाने कोई और ता भीतर नहीं घुस आएगा, अथवा आस पास कोई राक्षस या हिंस्र पशु तो नहीं है—तब तक फाटक नहीं खोलत। और इस सारी प्रक्रिया में इतना विलंब और कालाहल होता है कि प्रत्येक आश्रमवासी को यह मालूम हो जाता है कि अमुक व्यक्ति विलंब से आया है तथा उसके कारण सबको अशुविधा हुई है।

जल्दी-जल्दी चलने के कारण अश्विन की सास फूल गयी थी और शरीर पसाने से भाग गया था। संतोष यही था कि अधिक देर नहीं हुई।

वह ममय से आश्रम में आ पहुँचा था अभी पाटकबंद नहीं हुआ था।

आश्रम की भीमा में प्रवेश करते ही उसकी गति धीमी पड़ गयी। तब उस अनुभव हुआ कि वह बहुत दूर से असाधारण तेजी से चलता हुआ आया है और उसने अपने शरीर को बहुत अधिक थका डाला है। आसन मकट के कारण उसका ध्यान अब तक इस ओर नहीं था उसके मानसिक तनाव ने उस शारीरिक कष्ट के प्रति सजग होने ही नहीं दिया था। किंतु अब उसका शरीर में अधिक काय क्षमता नहीं थी। न तो वह तेजी से चल सकता था और न सिर पर रखा लकड़ियों का बोझ ही अधिक ढो सकता था। पर अब वह आश्रम में प्रवेश कर चुका था किसी-न किसी प्रकार कुटिया तक भी पहुँच ही जाएगा।

वह घिसटता हुआ अपनी कुटिया तक आया। भिड़ा हुआ द्वार खाला और मिर का बोझ धरती पर पटककर सुस्ताने बैठ गया।

कुटिया के भीतर पूरी तरह अंधेरा था किंतु धकावट के कारण दीपक जलाने का उद्यम वह कर नहीं पा रहा था। तब तब साम लता वह चुपचाप बठा रहा। धाँडा मुस्ता लगा तो फिर उठकर दीपक जलाएगा।

क्रमशः साँस स्थिर हुई, आँखें भी अंधकार में देखने की अभ्यस्त होनी गयी। उसने उठकर कुटिया के कोने में रखा दीपक जलाया और घूमा।

दीपक के प्रकाश में दूसरे कोने में खड़े एक विराट शरीर पर उसकी आँखें जड़ होकर जम गयी। सारे शरीर का रक्त उसके भस्तिष्क की ओर दौड़ रहा था और हाय-माव ठंडे पड़ जा रहे थे। उसे लगा वह चक्कर खाकर गिर पड़ेगा। दीवार का सहारा लेकर वह भूमि पर बैठ गया।

उस विराट आकार ने राक्षस के हाथ में एक भयंकर परशु था और वह हम रहा था।

राक्षस धीरे में पास चला आया यदि तुमने चिल्लाने का प्रयत्न किया तो याद रखना यह परशु बहुत धारदार है। मैं बहुत निता में नर-माम भी नहीं खाया।

अश्विन फटी फटी आँखों में चुपचाप उस राक्षस को देखता रहा।

‘यह धनुष यहाँ कस आया?’ राक्षस ने कुटिया की छत में टंगा

हुआ धनुष उतार लिया।

अश्विन न कोई उत्तर नहीं दिया।

बोलता क्यों नहीं ? राक्षस न तीखी आवाज म डाटा और दाए पर की एक भरपूर ठोकर बड़े दृढ़ अश्विन के बगल में मारी।

अश्विन कराहता हुआ, पथ्वी पर उलट गया।

बोल।

अश्विन ने अपने होठों का जीभ स गीला किया और बोला मैं बनाया है।

किसने सिखाया ?”

लक्ष्मण ने।’

क्यों बनाया ?

आत्म रक्षा के लिए।

आत्म रक्षा ! राक्षस की आँखें लाल हो गयी जिससे करेगा अपनी रक्षा ? हमसे ? हमारा विरोध करेगा ? हमसे मृदु करेगा ?

अश्विन कुछ नहीं बाला।

राक्षस ने एक करारा चाटा उसके गाल पर लगाया बोल ! जिससे करेगा आत्म रक्षा ?

अश्विन के मुख से रक्त बहने लगा। उस बोलना पडा ‘व य पशुजो से।’

राक्षस हसा तरे पाम लोह फन बाल बाण भी हैं ?

नहीं।

लक्ष्मण ने दिए नहीं ?

‘अभी मैं लक्ष्य भेद में मक्षम नहीं हूँ। मरा प्रशिक्षण पूरा नहीं हुआ।’

कितने लोग सीख रहे हैं ?” राक्षस ने पूछा।

वीर।

‘मि हाथ से बाण पकड़ते हैं ?’ राक्षस हम रहा था।

‘दाए हाथ से।

राक्षस आगे बढ़ा। उसने अपना परशु उठाया और जोरदार प्रहार

किया। परशु सचमुच धारदार था। अश्विन की दाहिनी भुजा गरीर से कटकर पथक जा गिरी।

अश्विन एक कराह के माथ पथ्वी पर साट गया। उसका बघे स निरतर रक्त बहता जा रहा था।

राक्स न छत्र से घनुष उतारा और अश्विन की बटी हुई बाह उठायी, तम्हारा घनुष ले जा रहा हूँ आत्म रक्षा के लिए और बाह ले जा रहा हूँ अपने भोजन के लिए।”

अश्विन कुछ नहीं बोला। वह सनातूय हो चुका था।

सकल्य मुनि प्रातः स्नान के लिए कुटिया में बाहर निकले। किवाड़ भिड़ाए और भुङ्ग।

उपा होने में अभी बाड़ा बिलब था, किन्तु यदाकिनी तक जाने में उह कुछ समय लगा। फिर हवन के समय तक उह सोप्ता भी था। उहोंने तभी से पग बढ़ाए।

उनका तेजी से उठा हुआ पग किसी चीज में अटक और अपने ही जोर में आगे बढ़ता हुआ उनका शरीर पथ्वी पर आ रहा। असावधानी में इस प्रकार गिर पड़ने से माथा एक पत्थर से जा टकराया और रक्त बहने लगा। हथेलियाँ में ककटिया और काटे एक साथ चुभे थे। घुटने भी छिन गये थे। तब की नोक पर भी पर्याप्त जलन थी।

किसी प्रकार अपने शरीर की समालोचन उठे जोर गिरने का कारण खोजने के लिए दृष्टि घुमाई—सामने दो राक्षस एक मोटी सी रस्सी को लपट रहे थे।

पहले भी कई बार मुनि के साथ ऐसी दुष्घटनाएँ हो चुकी थीं। यह राक्षस का धेनू था उनकी इच्छा थी उनकी आवश्यकता थी अथवा उनका रोग था। धन, शारीरिक बल एवं समर्थन, जोर प्रायः मनुष्य मरम्भण उह इतना उच्छ खन और मन्त्र बना दिया था कि उनसे किसी प्रकार के शिष्ट अथवा संस्कृत व्यवहार की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी। वे निरीह लोगो को अकारण भी परेशान कर सकते थे और सकारण भी। उनसे कुछ पूछना पथ था। अपनी पीडा और अपमान को पी जाना

ही मुनि के लिए एकमात्र उपाय था।

‘क्यों, आज हवन शवन नहीं करोगे?’ एक राक्षस ने पूछा।

मुनि ने उम्र शोध से देखा, और फिर स्वयं की सहज वनात हुए वीन नहान जा रहा हूँ। जाकर करूँगा।’

‘नहीं! पहले हवन करा।’ दूसरा राक्षस बोला नहाना तो बाद में भी हो सकता है।

‘नहीं! ऐसा संभव नहीं है।’ मुनि ने उत्तर दिया।

‘संभव तो हम बना देंगे।’

दूसरा राक्षस आगे बढ़ आया। उसने मुनि की जोर का धक्का दिया। मुनि पथ्वी पर लाट गये। उसने मुनि की दाहिनी टांग पकड़ी और धमीटता हुआ कुटिया में ले आया। हवन-कुंड के पास मुनि का पटककर बोला चल आग जला।

मुनि की नगी पीठ भूमि पर रगड़ खाती बगड़ पत्थरों पर घिसटती आयी थी। वह लहलुहान हो गयी थी और बुरी तरह जल रही थी।

रक्त स्नात मुनि हवन नहीं करता। मुनि बोले।

‘करता है वे। राक्षस ने मुनि की गदन में पजा फमाकर ठला करता है या मैं करूँ तरा हवन।’

मुनि समझ गए कि निस्तार नहीं है। अपनी शारीरिक और मानसिक पीड़ा से नडत ध उठे और उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की।

एक राक्षस ने मुक और लुबा उठाकर अग्नि में भाक दिया।

क्या कर रहे हो?’ मुनि ने शोध से उनकी ओर देखा।

हवन।’ वे दोनों हस पडे।

मुनि आखों से अग्नि-वर्षा करते हवन कुंड के पास बडे रह।

‘अब बता। एक राक्षस मुनि के पास आ, अपने जूत से उनके शरार को कोचता हुआ बोला तू किसी आश्रम में क्यों नहीं रहता। यहा कुटिया क्यों बनाइ?’

यह कुटिया मेरे दादा ने बनाई थी मैं तब से यही रहता हूँ।’ मुनि पीडित स्वर में बोले।

तू गधा है मुनि नहीं।’ दूसरा राक्षस हसा, ‘तुमसे पूछा जा रहा

है यहाँ क्यों रहता है किमो आश्रम में क्या नहीं जा सकता ?

पर आज क्यों पूछा जा रहा है ? मुनि हठ पर उतर आए थे ।

‘वक्तव्य मत कर ।’ राजा ने मुनि के पैर पर ठाकर मारी जो पूछते हैं बता । तुमने यहाँ राम न भेजा है ?”

राम तो यहाँ अब आए हैं ।” गवस्य मुनि ने उत्तर दिया, मर तो बाप-माँ भी यही जन्म थे ।

‘राम ने तब कोई मन्त्र नहीं है ?”

है क्या नही ?”

क्या मन्त्र है ?

वे हमारे मित्र हैं । व सज्जन है “यायो हं धीर है

तू राम का इस दोष की मूखनाएँ नहीं देता ? हमारे विरुद्ध मड़काता नही है ? हमसे हमारे अधिकार नहीं छीनना चाहता ?

मुनि की पीड़ा उनकी आत्मा का दर्शन नहीं कर सकी व तजामय स्वर में बोले “यह वन प्रातः है । यहाँ किसी का राज्य नहीं है । तुम्हारा कौन-सा अधिकार है यहाँ— निरीह प्राणियों के दर्शन का, उनके शोषण का उनका रक्तपात का पराई स्त्रियों में बलात्कार का ? ’

वक्तव्य मत कर । एक राजा ने खड्ग उठाया बोटी बोटी काट पानी में सजाकर ल जाऊंगा । तुम जस प्राणी है किसलिए ? आज हमारा आहार उठकर हमसे विवाद करता है । और तब स्त्री तो हम समीप उठाकर न गये थे कि तू वही मे कोई और कोमलांगी शोडपी मुनि-व्याध्याह कर राख और हम उसे भी उठा ल जाए । पर तू ऐसा गया निकला कि शोडपी छोड़ कोई खसूट भी नहीं लाया ।

नीच ! कुछ ता सज्जा कर ।’ मुनि मोन नहीं रहे हम भी मनुष्य हैं चतुर प्राणी । हम भी जीवन का सम्मानपूर्वक जीवन का पूरा अधिकार है । संसार में सब मनुष्य समान है

व्यथ है । एक राजा ने हसा यह अब हम प्राणियों की समता का सिद्धांत पढ़ाएगा । इसमें विवाद करने से अच्छा है कि इसकी वे दोनों टाँगें काट दी जाए जा हमने हमारी इच्छा के विरुद्ध प्रयास है ।’

मुनि भय में मूक हो गए । यहाँ तक का कोई काम नहीं था, और

शारीरिक शक्ति उनमें थी नहीं

एक राक्षस ने उनके कंधे पकड़ उन्हें भूमि पर लेटा दिया। दूसरे ने उनकी टांग सीधी की और उन पर बैठ गया। उसने अपना परशु उठाकर सघ हाथ का वार किया जिस कोई वक्ष की छाया पर बैठ उसका टूटा है।

मुनि ने एक भयंकर चीरकार किया और बहोश हो गए।

‘मर गया?’ एक राक्षस ने पूछा।

नहीं। सनातनूय हुआ होगा। दूसरा बोला।

‘यम इतनी जल्दी मर जाते हैं कि दूसरी बार इनके शरीर का मांस हम नहीं मिलता।’ पहला बोला।

चिता मन करी। दूसरा बोला अभी बहुत है।’

कानकाचाय के आश्रम के ब्रह्मचारी दैनिक आवश्यकताओं के लिए घन में लकड़ियाँ काट रहे थे।

‘इन दिनों वन का रूप कुछ बदल गया है। जय ने कुल्हाड़ी का प्रहार करते हुए कहा। पहले तो वन ऐसा नहीं था।

हा। आनंद ने उत्तर दिया अयोध्या की सना के आ जाने से भीड़ भाड़ इतनी हो गयी है कि क्या कहें। फिर राम के आश्रम के पास तो रोक टोक बहुत अधिक है। इधर न जाओ उधर न जाओ। यह मनिका के लिए आरक्षित है यह सेनापतिया के लिए। इधर राज माताएँ गयी हैं उत्तर राज गुरु गए हैं। इन लोगों ने तो वन को भी, राजकीय मन्त्रि अनुशासन में बाध दिया है।

‘भई मैं तो और बात सोचता हूँ।’ त्रिलोचन वाला, यह इतनी बड़ी सना कुछ दिन और यदि अभी वन में पड़ी रही तो हमारे लिए फल प्राप्त करना भी कठिन हो जाएगा।’

कुल्हाड़ी चलावा, भैया।” आनंद बोला सना अधिक दिन यहाँ नहीं रहेगी। मैं सुना है कि भरत आज लौट रहे हैं। वस पहले ही विवाह हो चका है। माय में कहीं सोटती हुई सेना में घिर गए या किसी

ठीक कहने हा मित्र । जल्दी जल्दी काम कर लेना चाहिए ।'

जय ने कुल्हाड़ी उठाई, ता वह उठी-की-उठी रह गयी । उसे नीचे लाना, जय को याद ही नहीं रहा । उसके मित्र ने उसकी विचित्र अवस्था को देखा तो उनकी दृष्टि भी उसी ओर घूम गयी जिधर वह देख रहा था ।

वे सब के-मव स्तब्ध खड़े रह गए । दम्मा के बीच जहा कहीं भी थोड़ा सा स्थान था वहीं न जाने कब कोई न-कोई राक्षस आकर खड़ा हो गया था । राक्षसों ने उह वस्ताकार घेर लिया था और उन लोग का अवरोध पर्याप्त दृढ़ लग रहा था । राक्षसों के हाथ में शस्त्र थे और वे सब-के-सब प्रहार-मुद्रा में दिखाई पड़ रहे थे ।

सहसा ब्रह्मचारियों में से किसी ने चीख मारी और वह भागा । कोई नहा समझ पाया कि कौन चीखा और कौन भागा । सब जैसे एक साथ ही भाग । पता नहीं चला कि पहल भटक म ब्रह्मचारी राक्षसों के घेरे को तोड़कर भाग या राक्षसों ने उह घेरा तोड़न दिया । दूसरी बार भी कुछ बचे हुए ब्रह्मचारी घेरे में से निकल गए किन्तु तीसरी बार राक्षसों ने वह अवसर नहीं आने दिया । उन्होंने अपने खड्ग सीधे कर लिये थे अब भागने का प्रयत्न सीधे-सीधे उनके खड्ग की धार पर दौड़ने की बात थी ।

कुल्हाड़िया फेंक दो । एक राक्षस ने आदेश दिया ।

जय ने कुल्हाड़ी भूमि पर फेंक दी और दृष्टि उठाकर देखा—उसके साथ-साथ उसके अपने ही मित्र आनंद त्रिनाचन कुबलय और शशांक भी राक्षसों के घेरे में बंदी हो गए थे । उनमें से अकेले भागने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया था और साथ मित्र-व भग्न की योजना वे बना नहीं पाए थे । अपनी कुल्हाड़िया वे फेंक चुके थे और भयभीत दृष्टि से राक्षसों का दृष्ट रहे थे ।

राक्षसों से भिड़त की बात जय ने कई बार सुनी थी किन्तु अधिनागत व अकेले-दुकेने व्यक्ति का पकड़त ये वह भी अधेर-मवर । इस प्रकार दिन-रहाते इतने अधिक आश्रमवासियों पर आक्रमण की बात उसने पहल नहीं सुनी थी । हा मनिव अभिमानों की बात और थी, किन्तु जिज्ञासु-क्षेत्र में मनिव अभिमानों की बात भी कम ही

प्रत्येक आश्रम का दूसरे आश्रम से संबंध है। तुम लोगों ने राम को राक्षसों का विरोध करने के लिए यहाँ बुलाया है। और जब राम असमर्थ दीखा तो भरत को उनकी मना सहित बुला लिया है। वह रक्षा मेरे पास अधिक समय नहीं है। मुझे यह सूचना मिलनी चाहिए कि भरत को बुलाने के लिए वीर उत्तरदायी है और भरत को याजना क्या है ?

हम मानूम नहीं

राक्षस प्रमुख ने उस वाक्य पूरा करने नहीं दिया— मीन मुन लिया। पर मुझे अपने प्रश्न का उत्तर चाहिए।

हम कुछ भी ज्ञात नहीं।' तब दीखी आवाज में बोला।

नहीं ?

नहीं।

तुम ब्रह्मचारी ?' राक्षस प्रमुख आनन्द से संबोधित हुआ।

मुझे भी ज्ञात नहीं। आनन्द हीन हाकर बोला हममें से किसी का भी ज्ञात नहीं।

राक्षस प्रमुख ने लविश्वासा में मुँह फेर लिया तुम ?

नहीं।

तुम ?

नहीं।

तुम ?

नहीं।

इन्हें गिन गिनकर सी कीड़े लगाओ।' राक्षस प्रमुख ने अपने कशाधारियों को आदेश दिया, 'तब तक लोह शस्त्रावाह भी तप आएगी। यदि वे लोग सतोपजनक उत्तर न दें तो उन्हें सप्त शलाकाओं से दामो। ध्यान रहे य मरने न पाए। य धरोहर है। इनके शरीरों का अच्छी तरह चिह्नित कर इन्हें इनके आश्रम के निकट फेंक आओ। य स्वयं अपने कुलपति को बताएंगे कि यदि उहाँ बाहर से कोई सैनिक सहायता मगवाकर हमारा विरोध करने का प्रयत्न किया तो हमारी ओर से लड़ने के लिए ललाधिपति रावण की सेना आएगी और इनमें से एक एक की यहाँ अवस्था कर ली जाएगी।'

कालकाचाय चितित मुद्रा में सिर झुकाए बैठे थे। आश्रम के सारे तपस्वी तथा आचाय उनके सामने बैठे उनके बोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रत्येक चहर पर चिंता थी। कबल जय, आनन्द, त्रिनाचन कुवलय और शशाक—गण ब्रह्मचारियों के हटकर कुलपति से कुछ निकट प्रमुखता से बैठे हुए थे। उनकी भगिमा चिंता की नहीं यातना और अपमानित क्रोध की थी। उत्तरीया के नीचे, उनके शरीर विभिन्न प्रकार की ओषधियाँ और पट्टियों में लिपटे हुए थे। इस प्रकार बैठने में भी वे कम कष्ट का अनुभव नहीं कर रहे थे गुरु का दीर्घ मौन उन्हें और भी पीड़ित कर रहा था।

अतः कालकाचाय ने सिर उठाया तपस्विगण! यह मैं समझें कि मैं टुपटना में मेरा मन दुःखी नहीं है। मेरे शरीर पर रागमात्र न लगाघात नहीं किया मेरी स्तब्धता को उनकी तप्त शलाकाओं ने दग्ध नहीं किया किन्तु मैं कुलपति के मन के घावों की कल्पना करें जिसके एक नहीं पाँच पाँच ब्रह्मचारियों ने इतनी पीड़ा पायी है। उनके शरीर पर पड़ा प्रत्येक काड़ा मेरे हृदय पर पड़ा है। प्रत्येक शलाका ने मेरी आत्मा को दग्ध किया है। किन्तु आकाश के अमृतलित क्षणों में काँइ उग्र क्रम करने में बदल हम पीड़ा आत्मविश्लेषण करना चाहिए

आय कुलपति! कैसा विश्लेषण?

जय को अपना ही स्वर काफी उच्छ्वसल लगा। आज तक उसने कुलपति के सम्मुख कभी ऊँचे स्वर में भी बात नहीं की थी और आज वह प्रतिवाचन करना चाह रहा था। उसके मन में कुलपति की सारी श्रद्धा समाप्त हो गयी थी। उसे लग रहा था यदि कुलपति इसी ढंग में सावध और दालन रहें तो वह अमर्यादित हो उठेगा—उस कुलपति का विराध करना पड़ेगा—सम्भवतः उनका आश्रम छोड़ना पड़े। वह कालकाचाय का अब अपना गुरु नहीं मान सकता।

आत्म विश्लेषण आवश्यक है तपस्विगण! कालकाचाय ने कुलपति के स्वर में कहा 'वर्तमान परिस्थितियों और उसकी कारणों का जानना और समझने की भाँ आवश्यकता है और अतः मैं उसका समाधान दूँगा की भी।'।

आपका क्या समाधान है ?" इस बार शशाङ्क बोला। उसका भी स्वर जय के स्वर से कम उच्च खल नहीं था।

ठहरो, बत्स ! भरी बात सुनो। कालकाचाय अपना उम्मीदुबल स्वर में बोल 'राम के इस प्रदेश में आने से पहले भी हम यहाँ रहते थे और यहाँ राक्षस बस्तियाँ और शिविर भी यहीं थे। ऐसा नहीं था कि तब राक्षस हम परेशान नहीं करते थे। किन्तु जब से राम यहाँ आए हैं स्थिति काफी बदल गयी है। राम और लक्ष्मण शत्रुिय योद्धा हैं। उनके पास भयंकर अस्त्र-शस्त्र है। उन शस्त्री की उड़ान स्वयं तक ही सीमित नहीं रखा है। उनका प्रयत्न यही रहा है कि जहाँ तक सम्भव हो लोग स्थान-स्थान पर राक्षसी अत्याचारों का विरोध करें। उस विरोध का माध्यम 'अस्त्र' है। उड़ने वाले इच्छुक व्यक्ति को शस्त्रों के निर्माण और परिचालन की शिक्षा दी है। इससे अनेक स्थानों पर राक्षसों का सफल विरोध हुआ है और अनेक ग्रामों में से राक्षसों का आधिपत्य समाप्त हो गया है। इससे राक्षस राम से ही नहीं समस्त आश्रमों से नाराज हो उठे हैं। राम के आश्रम का वे कुछ बिगाड़ नहीं सकते—अपना क्रोध गैर आश्रमों पर उतारते हैं।

कालकाचाय ने स्वर तपस्विनी पर दृष्टि डाली। उन्हें लगा कि जय तथा उसके धायल साधियों की आँखों में उत्सुकता का भाव नहीं था। निश्चित रूप से वे अपने कुलपति के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे।

कुलपति ने अपनी बात आगे बढ़ाई 'राम ने पहले दिन से हम से संपर्क स्थापित कर रखा है। राम ने सदा चाहा है कि मैं भी अपने आश्रम में शस्त्राभ्यास कराऊँ। हमारा आश्रम उनका आश्रम से निवृत्त है। वे हमारी पूरी सहायता के लिए प्रस्तुत थे। किन्तु मैं पहले दिन से यह जानता था कि शस्त्र रखने का अर्थ है राक्षसों से बचकर पालना। राम हमारी सहायता तो कर सकते हैं पर हमारी रक्षा नहीं कर सकते'

आपने क्या चाहा कि वे आपको रक्षा करें आय कुलपति ?' त्रिलोचन बीच में ही चिल्लाकर बोला।

धन्य न छोड़ो बत्स त्रिलोचन ! ' कालकाचाय का स्वर और भी दुबल हो गया मुझे अपनी बात कहने दो, फिर मैं तुम्हारी बात भी

मुनूगा ।' और व अपनी बात आगे बढ़ा ले गए 'मैं न कभी नहीं चाहा कि राम हमारी रक्षा करें । मैंने यहाँ विद्याभ्यास के लिए आश्रम स्थापित किया था मुझ शिविर नहीं बनाया था । राम क्षत्रिय हैं । मेरी प्रवृत्ति क्षत्रिय-प्रवृत्ति नहीं है । मैं नहीं चाहता था कि नाम्न निर्माण और शास्त्राभ्यास से मैं राक्षसों के क्रोध और विरोध को आमंत्रित करूँ । और मैं देख रहा हूँ कि मैं भूल नहीं कर रहा था । जिस जिस आश्रम में राम के शस्त्र-दर्शन का प्रवेश हुआ वहीं-वही राक्षसों के क्रोध की उल्का गिरी । और अब भरत की मेना आयी है । उसका लिए भी रामस हमें ही दोषी मानत हैं । यदि हम राम के इतने निकट न होते तो रामस हमारे ही आश्रम के ब्रह्मचारियों का पकड़कर न ले जाते । मुझ लगता है, राम एक प्रचंड अग्नि है—अग्नि पवित्र हा सही—किंतु उसका निकटव ताप भी होता है । अभी तो भरत की मना और रामसों में कहीं भिड़त नहीं हुई । यदि हो गयी तो राक्षस अयोध्या की प्रशिक्षित सेना का तो विरोध कर नहीं पाएँ उनका कुटिल मोक्ष फिर हम पर हा प्रहार करेगा । इसलिए मेरा विचार है कि यह स्थान अब सुरक्षित नहीं रहा । हम यहाँ से हटकर राम से दूर चले जाना चाहिए । "

आय कुलपति । जय उठकर खड़ा हो गया । उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और स्वर नाथ से काप रहा था, आपन दूसरों का मन मुना ही नहीं और अपना निणय दे दिया । यह आश्रम की रीति के अनुकूल नहीं है ।'

कालकाचाय में आश्रम के कुलपति का तज नहीं जागा । वे सहम गए । "ह जय का तमतमाया चेहरा जमे डरा गया था ।

'यह निणय नहीं है मेरा प्रस्ताव है बल्कि मेरी निजी राय । तुम लाग अपने विचार व्यक्त करने में पूणत स्वतंत्र हो ।

तो फिर मेरा प्रस्ताव मुनें आय कुलपति ।' जय ने आज एक बार भी कालकाचाय को गुरखर बहकर संबोधित नहीं किया था, जमे वह उनके गुग्त्व को भूतकर बबल उनके आधिकारिक पद की ही देख पा रहा था, शपाक विनाचन आनंद बुवनय तथा मेरा—हम पाचों का मत है कि हम लडें या न लडें रामस हमसे लडेंगे । हम नि शस्त्र हो ता भी मरेंगे

सशस्त्र हा तो भी मरग। विक्ल्प हमारे हाथ में नहीं है। इसलिए यदि मरना ही है तो सशस्त्र होकर मरें—बदाचित्त तब मरना अनिवाय न रहे। इसलिए हम तत्काल राम के आश्रम पर चल। उनसे मिलकर सारी स्थिति स्पष्ट करें। उनसे शस्त्र तथा युद्ध विद्या की सहायता तथा सहयोग मांगें और आत्म रक्षा में समर्थ होकर न केवल गौरव और स्वाभिमान के साथ जीवित रहें बल्कि राक्षसों से अपने अपमान का बदला भी लें। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो राम लक्ष्मण सीता तथा उनके अन्य आश्रमवासियों को अपने साथ रहने के लिए आमंत्रित करें। माहम अपना आश्रम उनके आश्रम में विलीन कर दें और यदि किसी भी कारणों से यह सम्भव न हो तो दोनों आश्रमों की भौतिक दूरी तो समाप्त कर ही दें।

“हम इस प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन करते हैं। जय के धायल मित्र पूरे जोर से धिल्लाए।

“नहीं।” कालकाचाय का स्वर भय तथा जावश से कपित होन के कारण चीत्कार बन गया। ‘मत्तभद तथा व्यक्तिगत विचार-स्वातंत्र्य का समयक होने पर भी मैं इस प्रकार के आत्मयाती प्रस्तावों पर विचार करने की अनुमति नहीं दे सकता। मेरे मस्तिष्क में यह बात पूर्णतः स्पष्ट है कि हम युद्ध-यथमायी नहीं हैं और राम की मूल वृत्ति क्षान वृत्ति है। वह जहाँ रहें वहाँ आस पास शस्त्र-व्यापार चलता ही रहेगा। कल की जिस घटना से तुम लोग इतने उन्मेजित और क्षुब्ध हो उठे हो, मुझे लगता है वह तो भविष्य का आभास मात्र है। तुम लोग स्वयं मोचो कल जब अयोध्या की इतनी बड़ी और शक्तिशाली सेना की छावनी यहाँ से उखड़ ही रही थी अर्थात् सेना अभी यही विद्यमान थी तब भी राक्षस इतना दुस्साहस कर गये। भविष्य में, जब कोई सेना आम-पाम नहीं होगी तब राक्षसों का माहम और कितना बढ़ जाएगा। भविष्य की उन भयंकर दुःघटनाओं से अपना बचाव करने के लिए ही मैंने यह निश्चय किया है तपस्विगण ! कि हम यहाँ से हटकर अश्व मुनि के आश्रम के निकट जायेंगे। राम राक्षसों की निरंतर उत्तेजना का कारण है। हम उसके निकट रहकर सदा-सदा के लिए राक्षसों के क्रोध में पान नहीं बनना चाहते।”

और सहसा कुलपति का स्वर ऊँचा हो गया इस विषय में वाद विवाद

को अनुमति मैं नहीं दूंगा। यह मेरा अंतिम निश्चय है और आश्रमवासियां कें दिए जाना है। इस आज्ञा की अवहलना का दंड आश्रम से स्थायी निष्काशन होगा।”

ता हम स्वयं को इसी क्षण से आश्रम से निष्काशित समझत हैं। आनन्द इस सारे बातानाम में पहली बार बोला था। उसका चेहरा दड और महज था। स्पष्ट था कि उसने यह बात आवेश में नहीं कही थी—यह उसका सुनिश्चित मन था।

अथ कुवलय गंगाक और त्रिलोचन भी उसका निणय के समर्थन में उठकर, उसका पीछे खड़े हो गये थे।

कालकाचाय का आवेश क्षुप्त हो गया। उन्हें जैसे अपने आवेश का यह परिणाम तात नहीं था, अथवा वे घटनाओं को यह भीड़ नहीं दमा चाहत थे। वे आश्चर्यजनक रूप से बदने हुए कोमल और स्नेहयुक्त स्वर में बोले। मैं यह कभी नहीं चाहूंगा यत्न। कि मेरा कोई शिष्य किसी मतभेद के कारण मेरा आश्रम छोड़कर चला जाए। यह वैसा ही है जस कोई पुत्र पिता का घर छोड़ दे। और तुम पाचा ही मुझे बहुत प्रिय हो। मैं किसी भी रूप में तुमसे विलग होता नहीं चाहूंगा। मेरी बात समझने का प्रयत्न करो यत्न। मैं अग्नि की स्वयं में दूर रखने का प्रयत्न कर रहा हू ताकि उसका प्रकाश तो हम मिने किंतु उसका ताप हमें दग्ध न करे। और तुम चाहत हो कि मैं अग्नि को अपनी कुटिया में ले आऊ ताकि मेरा आश्रम जलकर भस्म हो जाए।”

कालकाचाय की कोमलता ने आवेश पर ठंडे छोटे डाल दिए थे। किसी आर में कोई प्रत्युत्तर नहीं आया जैसे सब कुछ शांत हो चुका हो।

पर तभी कुवलय उठकर अपने ठहरा हुआ मद स्वर में बोला आय कुलपति। आपका और हमारा दृष्टिकाण पर्याप्त भिन्न है यह स्पष्ट हो चुका है। किंतु मतभेद का अर्थ अनिवार्य विरोध नहीं होता। आप हम आश्रम से निष्काशित नहीं करना चाहत और न ही यह हमारी इच्छा है कि हम आपसे दंडित होकर अथवा आपसे झगड़कर आश्रम से पयक हो। इसलिए गुस्वर। एक निवदन है। आप चाह तो आश्रम को अश्व मुनि के आश्रम की ओर से जान की तैयारी करें किंतु साथ ही हमें यह अनुमति दें...

कि हम राम भद्र से मिलकर इस विषय में उनका मत जानने का प्रयत्न करें। यदि वे सहमत हो गये तो हम पांचा आपकी अनुमति से उनका आश्रम की सदस्यता स्वीकार करना चाहेंगे। और यदि हम ग्रहण करने को वे तैयार नहीं हुए तो हम पूरवत आपने शिष्य है—अत आश्रम का अनुशासन में बड़े आपके साम आएंगे।

कालकाचाय का म्नापविक तनाव ढीला पड़ा। कुवलय ठीक कह रहा था—वे राम के पास जाना चाह तो जाए इसमें क्या सबट है। वन राक्षसों का विरोध चाहत हैं न राम का और न अपने शिष्यों का।

ठीक है बरस। तुमने बिलकुल ठीक कहा। तुम लोग आज ही राम से मिलने चल जाओ। भरत की सलाह लीट चुकी है अत राम से मिलने में कोई बाधा भी नहीं है। बल प्रात मुझे अपने और राम का निश्चय की सूचना दो। हमारा प्रस्थान बल मध्याह्न तक रका रहेगा।'

अपनी कुटिया का बाहर अपराह्न की घूष में राम और सीता कुछ अलसाए से बैठे थे। दोनों ही पिछले दो-तीन दिनों में घटी घटनाओं में ऊब डूब रहे थे। बात प्राय कोई भी नहीं कर रहा था।

"भया! कुलपति कालकाचाय ने आश्रम के ब्रह्मचारी आए हैं।'

राम ने सिर उठाकर देखा। आगे आगे जय था। इस राम ने कई बार कालकाचाय के आश्रम में देखा था। आत-जाते कभी-कभार कुछ बातें भी हुई थी। जय ने कई बार धनुष बाण तथा अय शस्त्रों में रुचि भी दिखाई थी। अय ब्रह्मचारियों का चेहरे भी कुछ परिचित में थे किन्तु राम उन्हें ठीक-ठीक पहचानते नहीं थे।

जाओ! बैठो, मित्र। राम ने मुखर द्वारा लाए गए आसनो की ओर संकेत किया।

आय। ये भील-कला के आसन आपके यहां कैसे? 'कुवलय ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

ये आमन मैंने और सुमेधा ने मिलकर बनाए हैं।' सीता बोली 'सुमेधा भील-कला ही है। मैंने उसी से यह विद्या पायी है। तुम्हें भील-कला वाले आसन पर बैठने में कोई आपत्ति तो नहीं ब्रह्मचारी।' बदही

मुमकराई 'इधर जाति विभाजन पर बल कुछ अधिक ही है।'

'नहीं दधि।' कुचलय भँप गया मैंने तो केवल जिनासावश पूछ लिया। आश्रमो में इस प्रकार के आसन सामान्य बात नहीं है।'

'बठो, मित्र।' राम पुनः बाल मेरी भी जिनासा है—तुम पावो ही पायल प्रतीत होते हो। औपघ और पट्टिया अभी गीली ही हैं। यह क्या है मित्र! मगया अथवा राक्षसों से मुठभेड़?

हम इसी मद्भय में आपसे मिलने आए हैं राम। 'जय बोला आने में कुछ विलम्ब अवश्य हुआ। बल अयोध्या की सेना लौट रही थी अतः आप तक पहुँचने के लिए मार्ग मिलना कठिन था और आज अपने कुलपति से विचार विमर्श में विलम्ब हो गया।'

ठीक कहते हो, ब्रह्मचारी।' राम गंभीर हो गया 'कदाचित् इसी कारण पिछले तीन दिनों से मैं सारे चित्रकूट में कटककर अपने आश्रम में सीमित हो गया था। इस बीच इस आश्रम में बहुत कुछ घटित हुआ है मित्र।'

यहाँ ही नहीं, आय। इस नारे प्रदेश में बहुत कुछ घटित हुआ है। शशाङ्क का स्वर कुछ तीखा था 'वही किसी का सिर कटा कहो किसी का पाव। कहीं आग लगा जोर वही हम जसों को घेरकर बंदी किया गया और राक्षस वस्तुतया में से जाकर वशा के आधानों से आहत और तप्त शनोकाजी में दग्ध किया गया।'

क्या लाभ अयोध्या की इतनी बड़ी सेना का।' राम जैसे अपने-आपमें कह रहे थे 'जिसने जन सामान्य को सुरक्षा देने के स्थान पर अमुरन्धित कर दिया।

किसने बंदी किया?' लक्ष्मण की उग्रता प्रकट होने लगी थी।

राक्षसों ने।

क्या? मुखर ने पूछा।

वही बताने के लिए हम उपस्थित हुए हैं।' जय बोला।

कहो मित्र! मैं सुन रहा हूँ।' राम उसके चेहरे की ओर देख रहे थे।

जुते बैसा को हाकनेवाले गाड़ीवानी आल्यादि पर अतिम बाग निरीक्षण करती दृष्टि डाली। व यवस्था से सन्तुष्ट थ। आकृति पर आश्वस्ति क चिह्न एकदम स्पष्ट थे और साथ ही किसी विचट विपत्ति से मुक्त हा जाने का आह्लाद भी था।

उ होने मुडकर इन सारी तयारियाँ स जलग एक जार हटकर खडे हुए राम की ओर दखा—राम सीता तथा लक्ष्मण साथ साथ खडे थ और उनके पीछे जय तथा उसके चारो मित्र खडे थे। कुनपति का चेहरा कुछ विकृत हुआ जैसे मुख का स्वाद कडवा गया हो। किंतु उ होन तत्काल स्वय को सभाल लिया। वे सायास मुसकराए और सहज होन का भरसक प्रयत्न करते नए चलकर उन लीला के समीप जाए।

बत्स राम। अब हम विदा दो। कुनपति अत्यंत औपचारिक स्वर में बोले बड़ी इच्छा थी कि हम यहां साथ साथ रहत जयवा तुम हमारे साथ जयव मुनि क आश्रम में चलत। किंतु तात। शायद यह संभव नहीं है। पर जाते जाते भी मैं तुम्हे एक परामश दूंगा। यद्यपि तुम वीर और साहसी हो युद्ध विद्या में कुशल हो—फिर भी यह स्थान ऐसा नहीं है जहां तुम अपनी युवती पत्नी के साथ सुरक्षित रह सको। बत्स। तुम भी इन लागों को लेकर किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाओ। उ होने एककर राम के पीछ खडे तपस्वियों को देखा और मेरे इन ब्रह्मचारियों की रक्षा करना। भगवान तुम्हारा भला करें।

राम ने शांत भाव से कुलपति की बात सुनी और हल्के से मुसकरा दिए। लक्ष्मण ने एक बार उहड़ आखी से कुलपति का ताका और वितण्णा से मुख मोड़ लिया।

राम और सीता ने झुककर, कुलपति के चरण छुए और अंग लोला को मांग देने के लिए एक ओर हट गए।

लक्ष्मण ने अब तक स्वय को सभाल लिया था। पूरा गमीरता का अभिनय करत हुए बोले ऋषिवर। हम भी आपके साथ चलकर जयव मुनि के आश्रम में रहने की बड़ी इच्छा थी पर हम जा नहीं पाएंग हमारी असमर्थता को क्षमा करें। हम नहीं चाहत कि हम आपके साथ-साथ लगे फिर और आप अपने छक्का स अपना मामान भी न उतार पाए।

इससे पूर्व कि राम आगे बढ़कर लक्ष्मण से कुछ कहते, बालकाचायक
मका कठ से हस पड़े। राम कुछ विस्मय से देखा—कुत्रपति का कठ
है नहीं, मन भी उमकन था। लक्ष्मण ने अपने इस वाक्य में न केवल अपने
मन की कह दी थी, बरन कुत्रपति के मन की गतानि भी धा डानी थी।

गुप्त अच्छी बात कही तुमने वरस सोमित्र। हमी के पश्चात्
कुत्रपति अत्यन्त निमल हो आए थे। उनकी आकृति की औपचारिकता भी
बिनीन हो गयी थी, और वे सहज हो गए थे। तुमने न कहा होता तो
क्याचित मैं भी मच न बोल पाता। पुत्र। मेरा विश्वास करो। तुम लोगों
का सम्मान हम सब तपस्वियों के लिए अत्यन्त आनन्ददायक है। यह हमारी
आर्थिक इच्छा है पुत्र। कि तुम हमारे साथ रहा। किंतु लक्ष्मण। सारे
मनुष्यों की प्रकृति एक समान नहीं होती। हम लोग स्वयं अपने आप में
आयुष्यपूर्ण आचरण करने वाले हैं। हम बिना किसी जीव को कष्ट दिए
मानवता के मुख के लिए जान विनाश करना तथा सृष्टि के विकास के
लिए प्रयत्नशील हैं। अतः मन में हम आया के समर्थक और अयाय के
विरोधी हैं। इस दृष्टि से हम तुम्हारे सहयोगी हैं। किंतु पुत्र। अपने जन्म
जान स्वभाव राजसिक धृति के अभाव तथा समय के सब प्रशिक्षण के
कारण हम लोग तुम्हारे समान सघपशील नहीं हैं। अतः आया के विरोध
के लिए सक्रिय अवसर उपस्थित होते ही, हम लोग प्रायः उस स्थान से हट
जाते हैं। हम अपनी सीमाएं पहचानते हैं। ऐसा नहीं है, पुत्र। कि मैं नहीं
चाहता कि मैं भी तुम्हारे ही समान गन्धधारण कर राक्षसों का हनन
करू। किंतु मैं अपनी तथा इन तपस्वियों की भौतिक प्रकृति का क्या करूँ ?
हम अपना विरोधी न समझें। तुम्हारे साथ न रह सकने का अर्थ कदापि
यह नहीं है कि हम राक्षसों के मित्र हैं। हम तुम्हारे अक्षम तथा भौतिक मित्र
नहीं जा सघप करने का साहस नहीं बटार पा रहे। सोमित्र। हमारे प्रति
मन में क्रोध न रख करुणा और त्याग का भाव धारण करो।”

कुत्रपति मौन हो गए। उनका स्वच्छ मन उनकी पारदर्शी आत्मा में
से भाव रहा था। कोई भी देख सकता था कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व में
कहीं कोई दुराव तो नहीं था। उन्होंने बाणी के माध्यम से अपना मन सहज
ही सब के सम्मुख रख दिया था।

लक्ष्मण कुछ मधुचित्त हुए—शायद उन्हें निश्छल और निमग्न वृद्ध स एभी कटु बातें नहीं कहना चाहिए थीं।

'आय कुलपति !' राम ने आगे बढ़कर बात मभात्र ली 'लक्ष्मण की बात का सुरा न मानें। हम दोनों एक-दूसरे का पक्ष समझते हैं। ऋषिवर ! हम क्षत्रिया का शस्त्र धारण करना तभी साधक होगा जब आप जैसे निष्पाप तपस्वी गुरुवर हम अपना स्नेह द सकेंगे—और हम पाप के नाम पर आपका अभय द सकेंगे। कुलपति महज मन से अपनी यात्रा पर जाए। इस अलगाव से किसी के मन में वैमनस्य न रहेगा।'

कुलपति ने धीरे धीरे अपनी भीगी आँखें ऊपर उठाई और राम के चहरे पर टिका दी, राम ! मेरे इन ब्रह्मचारियों का ध्यान रखना। ये पाचो तेजस्वी हैं। आशा है ये मेरे पाप की क्षतिभूति करेंगे।'

कुलपति ने उन लोगों की ओर दगे बिना मुख मोड़ लिया और धीरे धीरे चलत हुए, अपने छबड़ पर जा बैठ। बैठत ही उन्होंने गाड़ीवानों को मकेत किया चलो।'

राम स्पष्ट देख रहे थे कुलपति का मन उनके कम का विरोध कर रहा था। व उन्मत्त था। विवक किन्ना भी प्रेरित करे—अपनी प्रकृति के विपरीत काय करना कठिन होता है। मन की भीरता तन की कोमलता और सधप के प्रति अतत्परता व्यक्ति को क्या बना देती है। ऐसा क्या हो गया है इन लोगों में, जो सत् पक्ष को जानत हुए भी उसका समर्थन नहीं कर पाते उससे पक्ष में पड़े नहीं हो पाते। किस बात से डरते हैं—कष्ट से ? पर कष्ट तो य उठा ही रहे है। अपमान से ? इस प्रकार अपनी इच्छा के विरुद्ध, किसी के भय से अपना स्थान छोड़कर कहीं और भटकने के लिए चल पड़ना क्या अपमानजनक नहीं है। यह सन्निक दृष्टि से योजनाबद्ध प्रत्यावर्तन नहीं है कि इस रण-नीति या रण-नीशल मान लिया जाए। यह तो रण ही नहीं है। जब कभी सधप का अवसर प्रस्तुत होगा—य तीव्र इसी प्रकार पीछे हट जाएंगे। इ हे कहीं भी सत्य नहीं मिलना वही 'याय' नहीं मिलेगा, वही अधिकार नहीं मिलेगा। सत्य और 'याय' के सधप से भागना, स्वयं सत्य और 'याय' से दूर भागना है।

राम की दृष्टि बहिमुखी हुई—जय तथा उसके साथी कुछ उन्मत्त लग

रहये। लक्ष्मण की मुद्रा अभी भी कुछ उग्र थी। सीता सहज हो चुकी थी।

‘आओ चरें।’ राम ने अपना धनुष उठा लिया ‘उदघोष तथा उमके माधी हमारी प्रतीक्षा कर रह होंगे। आश्रम पहुँचकर उह शस्त्रागार की रक्षा के दायित्व से मुक्त करना है।’

अपन-अपने विचारा म लीए सब लोग आश्रम की ओर बढ़े। कोई किसी स बात नहीं कर रहा था। केवल यात्रिक रूप से आग पीछे चलने जा रह थे।

आत्मलीन राम के मन म पिछले तीन दिन की घटनाओं की स्मृतियां—कितना आकस्मिक था सब-कुछ। जिसन घटनाओं के इस रूप की कल्पना की होगी। अयाध्या म घटित घटनाओं के विषय म राम उत्सुक थ। मन मे अनेक आगकाए थीं। जस-जैस भरत क निकट आन के समाचार मित्रने जा रहे थे जिनासाआ की भीट भी बन्ती गयी थी।

तीन दिन पहल ब-य-गुआ म सहसा भगदड मच गयी। चित्रकूट पर चारा ओर स धूल ही धूल उडने लगी। निकट के विभिन्न आश्रमा से सूचनाए मिली कि भरत की सेना आ पहुँची है। लक्ष्मण न क्वच कस दिया और अनक दियास्त्री स सज्जित हो गए। उहने आश्रम के पिछले माग मे मुखर को उदघोष के ग्राम की ओर लोडा दिया कि वह विभिन्न ग्रामा तथा आश्रमा म स सशस्त्र युवका की एकत्रित कर शीघ्रातिशोघ्र पहुँच।

“ सशस्त्र युवक-सगठना न तनिक भी विलंब नही किया। उदघोष न इतन युवक एकत्रित कर लिए थे कि ये आश्रम की अच्छी तरह व्यूह-बनी कर सकने थे। किंतु युद्ध की आवश्यकता नही पडी। भरत की मेना आश्रम स दूर ही रुक गयी थी। निकट आते ही भग्न राम के चरणों पर गिर पडे थे।

राम अपनी कुटिया के द्वार पर आकर रुक गये।

‘आश्रम क नय मदस्यो के रहने की क्या व्यवस्था होगी मौमित्र ?’

‘हम तुरत निर्माण-कार्य आरभ कर देने हैं भैया।’ लक्ष्मण बान

‘किंतु आज का रात उदघोष की कुटिया तथा अतिथिशांता से ही काम चनाना होगा।’

हम ग क्या तात्पर्य है लक्ष्मण ? राम मुसकराए, कही तुम इन लागो को तो निर्माण-काय म नही लगाना चाहत ? व आहत है। उह अभी शारीरिक श्रम नही करना चाहिए।'

नही, आय।' जय बोला, हम इतने जक्षम नही है कि आय सौमित्र की कोई सहायता न कर सकें। रामसो न हमारी हडिडया न तोडन की कृपा अवश्य दिखाई है।

नही ! कुटीर निर्माण काय में और मुखर कर लेंगे। लक्ष्मण मुसकराए इह केवल मनारजनाथ हमारा हाथ धरना होगा।

अच्छा ! जाओ।

लक्ष्मण इत्यादि को भेज, राम सीता क साथ कुटिया क भीतर आए। सीता बिना कुछ कह भोजन की व्यवस्था म लग गयी और राम की चितन प्रक्रिया फिर चल पड़ी—भरत न आत ही अपना अभिप्राय कहा। वे राम, लक्ष्मण तथा सीता को अयोध्या लौटा ले जाना चाहत थे। वे नही चाहत थे कि अयोध्या के राज-परिवार की परस्पर अविश्वास की परंपरा और जागे लडे, और भरत के राज्य को युधोजित के जातक का विस्तार माना जाए। वे नही चाहते थ कि अयोध्या म फिर कोई दुस्वप्नो और आगवाओ से पीडित होकर बसे प्राण त्यागे जसे सम्राट दशरथ ने त्यागे थे।

'भरत अयोध्या जोर मियिला क राज परिवार मन्त्रि परिषद पुरोहित बग, प्रमुख प्रजाजन सनापति सनिक परिषद तथा सेना की अनेक टुकडिया लेकर उह लिवाने आये थे। वे तत्काल राम का राज्याभिषेक करना चाहते थ। किंतु एक बात के लिए भरत एकदम सजग नही थ। भरत के साथ-साथ भरद्वाज वाल्मीकि तथा अनेक ऋषि भी आए थे। तो ऋषि आ नही पाए थे—राम जानते थ—उनके चर आश्रम के चारो ओर मडरा रहे थे। वे भयभीत थे कही राम भरत की बात न मान लें। जब संपूर्ण राजवंश एक स्वर म कह रहा था कि राम अयोध्या लौट चलें—एक भी ऋषि इस इच्छा का समर्थन नही कर रहा था।

अत म भरत को निराश लौट जाना पडा। अयोध्या से लामो गयी राजसो खडाऊआ की वे राम के चरणों से छुआ भर सके, उह पहना नही

मैंने ।

‘ किंतु इन तीन दिनो में जब वे अपने पारिवारिक मनामालिय को दूर कर रहे थे—दम वन में कितना कुछ कल्पित और भयंकर घट गया था । यदि राम राजकीय मयादाआ में घिरकर जन सामा य से दूर न हो गए हात तो कदाचित् राजस वह सब नहीं कर सकत जो उन्होंने किया ।

भविष्य में राम को ध्यान रखना होगा कि व किसी भी कारण से जन सामा य के लिए अनुपयुक्त हो जाए नहीं तो उन जैसे जन नेता और उन विनासी गामका में क्या भेद रह जाएगा जो अपनी मुख-भुविधाओं के बंदी होकर जनता की अशुविधाओं को अनदेखा कर जाते हैं

राम ने कुटिया से बाहर आकर देखा—सदमण मुखर तथा पांचा ब्रह्मचारियों के माथ लकड़ियों के गटठरी के माथ वन से लौट रहे थे । सदमण और मुखर के कंधों पर अधिक बोझ था किंतु ब्रह्मचारियों ने भी कुछ न कुछ उठा ही रखा था । राम उन्हें टोले का चढ़ाव चढ़ते हुए माफ-माफ दख रहे थे । वे सानो उल्लास में भरे प्रसन्नतापूर्वक बातें करते हुए ऊपर आ रहे थे । उनमें से किसी को भी ऐसा नहीं लग रहा था कि अभी थोड़ी दूर पूर्व ही उनके आश्रम के कुलपति अपनी गिण्ट मडली और अन्य तपस्वियों के साथ रामको स भयभीत हो यह स्थान छोड़कर चले गए हैं और पीछे छूटे वे लोग जो रामसा के जवड़ा के बीच बैठे हैं ।

तभी सदमण ने कुछ कहा और शेष सब लोग उमुक्त अटटहाम कर उठे ।

भोजन के पश्चात् व लोग कुटिया के बाहर तनिक खुले स्थान में जा बैठे ।

य आश्व मुनि कीर्तन ३ ‘ राम न बात आरम की ‘ जिनके पास कुलपति अपने श्रृणुपुत्र को लेकर गए हैं ? ’

जब कुछ आगे घिसक आया आय मेरी स्पष्टवादिता को दमा करें । अभी थोड़े-से ही समय में मैं आश्व सदमण की संगति में सीखा ३ कि तजम्बी पुष्प न तो स्पष्ट बहने में मकोच करता है और न स्पष्ट बात का घुरा मानता है ।

बाकी जय ! मकोच न करा । ’ राम मुगकराए ।

‘मधप का आरम्भ उस व्यक्ति से होना चाहिए मित्रो ! जो अत्याचार का सीधा सामना कर रहा है। जिन लोगों ने उस अत्याचार के विषय में सुना मात्र है, उनसे प्रत्यक्ष संपर्क होने का अवसर नहीं पाया, उनके मन में दाह नहीं है—अतः प्रकाश भी नहीं है। वे लोग ऐसे मधप को मानसिक सहानुभूति दे सकते हैं उसमें सक्रिय योग नहीं दे सकते।’

‘तो भया ! मधप का आरम्भ जश्व मुनि के आश्रम में नहीं जनस्थान में ही हो सकता है।

‘तो जनस्थान की आरंभ तो।’ सीता मुसकराई।

दवि ! आप शशाक न जाश्चय से सीता को देखा।

य शक्ति रूपा नारी है मित्रो ! राम मुसकराए तुम लोग अभी सीता का नहीं पहचानते।’

‘तो हम सब का जनस्थान जाना निश्चित रहा।’ जय के स्वर में उत्साह था।

‘नहीं जय ! राम गंभीर स्वर में बोले जनस्थान में याय का युद्ध वहीं के निवासी लड़ेगे। तुम चित्रकूट में ही रहोगे।’

‘ता यह सारा वार्तालाप

मेरी बात सुना।’ राम बोले हम अर्थात् मुझ सीता तथा लक्ष्मण को अतत दडक धन में ही जाना है—ऐसा अयोध्या से चलते समय ही निश्चित था। मुखर का अपना घर दक्षिण की ओर है अतः वह भी हमारे साथ जाना चाहेगा। हम लोग यहाँ इमलिए रुके हुए थे कि हम अपनी अनुपस्थिति में घटित अयोध्या के समाचार मिल सकें। भरत की नीति स्पष्ट हो सके, और हम आगे की योजना तय कर सकें। यह कार्य अत्र पूर्ण हो चुका है अतः हमारा चित्रकूट छोड़ दक्षिण की ओर जाना निश्चित है।

‘किंतु आय !’ कुवलय ने कुछ कहना चाहा।

‘धन रखो कुवलय !’ राम मुसकराए तुम लोगों को भ्रमधार में छोड़कर नहीं जाऊंगा। हमारा जाना निश्चित अवश्य है किंतु जान से पूर्व हम कुछ प्रवचन करना है। राक्षसी आनक इस क्षेत्र में अभी पर्याप्त मात्रा में है। पर इतना नहीं कि मैं यहाँ से हिल न सकूँ। उदघाप के रूप में

